

श्रीमद्भगवद्गीतासु ।

Ms. No. 1

॥ अथ कठोपनिषत्प्रस्तावः ॥

इयं कठोपनिषद्व्यजुर्वेदीय कठशाखान्तर्गता,
कठइति ऋषिविशेषस्य नामधेयम् । तेन प्रोक्त-
मित्यर्थे समुत्पन्नस्य तद्धितप्रत्ययस्य कठचरका-
ल्लुगिति लुक् । कठेन प्रोक्ता कठा शाखा तद-
न्तर्गतोपनिषदपि कठा । अधुना पूर्ण कठशाखा
त्वप्रचरिता तस्या उपनिषद्भागमात्रमुपलभ्य-
ते । सर्वासामुपनिषदां प्रयोजनं दुःखबहुलः सं-
सारो हेयोऽभयं निर्मलं निर्विकारं शुद्धं शान्तमा-
नन्दमयं ब्रह्म मुमुक्षुभिः प्राप्यमिति सर्वतन्त्र
सिद्धान्तः । तदेवात्रापि विज्ञेयम् । तत्राख्यायि-
कया ब्रह्मविद्योपदेशो जिज्ञासुदाढ्याय विद्या-
स्तुतये च । एतां ब्रह्मविद्यामुपास्यैव सिद्धा ब्र-
ह्मर्षयोऽपि, परं धाम जग्मुः । ब्रह्मजिज्ञासुरेवा-
धिकारी, विषयः प्रत्यगात्मभूतं परं ब्रह्मैव, आ-
त्यन्तिकी संसारदुःखनिवृत्तिरेव प्रयोजनम् एत-
दुक्तप्रयोजनेन साध्यसाधनभावो ग्रन्थस्य स-
म्बन्ध इत्यनुबन्धचतुष्टयम् । सिद्धान्तं सिद्धसंब-
न्धं श्रोतुं श्रोता प्रवर्तते । शाखादौ तेन वक्तव्यः
संबन्धः सप्रयोजनः ॥ १ ॥

अस्यामुपनिषदि शिष्याचार्यसंवादः प्रारम्भात्प्रकृतः । पुरा वाजेनावदानेन श्रवः कीर्त्तिरस्य स वाजश्रवा नाम कश्चिदुपिरासीत् तस्यापत्यं पुत्रो वाजश्रवस्तस्य वाजश्रवस्तस्य नचिकेनाः पुत्र आसीत् स च पूर्वजन्मानुभूतसंस्कारवानात्मज्ञानोत्सुक आसीत् कथं चित्कुट्टे न तस्य नचिकेतसः पित्रा समृत्यवे दत्तो यजमानो देवस्य ब्रह्मनिष्ठस्याचार्यस्य समीपं गतवान् यत्नेन चारुमै सुपात्राय ब्रह्मविद्योपदिष्टा । विशेषस्तत्र नत्र वक्ष्यते ॥

भाषार्थ—यह कठोपनिषद् यजुर्वेदकी कठशाखाके अन्तर्गत मानी जाती है कठ नाम ऋषि विशेषका है कठ ऋषिकी कही उपनिषद् भी कठ कहाती है । आज कल कठशाखा संपूर्ण नहीं मिलती किन्तु उपनिषद् भाग मात्र प्रचरित है । सब उपनिषदोंका मुख्य प्रयोजन यही है कि सुमुखु जन दुःखरूप संसारसे वैराग्यको प्राप्त होकर निर्भय निर्मल निर्विकार शुद्ध शान्त और आनन्द स्वरूप ब्रह्मको प्राप्त हों । यहां इतिहासके संग ब्रह्मविद्याका उपदेश इस लिये है कि ज्ञान को इच्छा रखने वालोंको मूढ़ज्ञान हो और ब्रह्मविद्याकी उत्तमता विदित हो जिससे ठीक २ ठीक हो क्योंकि पूर्वज नचिकेता आदि संस्कारी महात्माओं ने भी जिन ब्रह्मज्ञानके लिये जंझर के बड़े २ राव्यादि सुखोंको भी दणमान तुच्छ मज्जकके त्याग दिया और ब्रह्मज्ञानको सर्वोपरि संसर्गके सभी के लिये प्रयत्न किया, वाजश्रव जो नचिकेता के पिता थे उन्होंने संसारको तुच्छ मानकर ही सर्ववेदसं यज्ञ किया जिसमें सर्वस्व दक्षिणामें देकर संन्यासी हुए इससे ब्रह्मविद्या

की प्रशंसा निकलती और जिज्ञासु के हृदयमें ज्ञानकी पुष्टि होती है इसी ब्रह्मविद्याका सेवन करके ब्रह्मर्षि लोग जो हमारे पूर्वज बृद्ध हुए वे परमधाम को प्राप्त होते आये हैं ॥

ब्रह्मका जिज्ञासु ही अधिकारी है, सबके घट २ में अन्तर्यामी ब्रह्मही इस ग्रन्थका विषय है, संसारके अपार दुःख की अत्यन्त निवृत्ति होना ही प्रयोजन है इस प्रयोजन और ग्रन्थका साध्यसाधनभाव संबन्ध है अर्थात् प्रयोजन साध्य और ग्रन्थ साधन है । अधिकारी विषय प्रयोजन और संबन्ध ये ही चारों अनुबन्ध चतुष्टय कहाते हैं । जिसका प्रयोजन तथा संबन्ध ठीक सिद्ध होता है उसी विषयको ओता वा अध्येता पढ़ना सुनना चाहते हैं । इस लिये प्रत्येक शास्त्र के आदिमें प्रयोजन संहित ग्रन्थका सम्बन्ध कहना चाहिये ॥

इस उपनिषद् में आचार्य और शिष्यका संवाद प्रारम्भ से रक्खा है । पहिले समयमें बाँज नाम अन्न अधिक दान करने से जिनकी विशेष कीर्ति हुई इससे उनका वाजश्रवा नाम हुआ उन वाजश्रवा ऋषिके पुत्र वाजश्रवस थे उनका पुत्र नचिकेता हुआ । वह नचिकेता पूर्वजन्मके शुद्ध संस्कार और वासनाओंके अनुसार आत्मज्ञानकी विशेष उत्कण्ठा वात्स्यावस्थासे ही रखता था उसके पिता वाजश्रवस वक्ष्यमाण प्रकारसे क्रुद्ध हो गये और पुत्रको मृत्युके लिये दे दिया नचिकेता उन ब्रह्मज्ञानी यमराज मृत्यु आचार्यके पास पहुँच गया और यमराजदेव ने इस सुपात्र नचिकेताके लिये ब्रह्मविद्या का उपदेश किया यही विषय इस उपनिषद् में है इसकी विशेष व्याख्या क्रमसे की जाती है ॥

इति कठोपनिषत्प्रस्तावः समाप्तः ॥

श्री महागंगाधिपतये नमः

ओं-नमो भगवते वैवस्वता
ह्यविद्याचार्याय नचिकेतसे च ॥

॥ अथ कठोपनिषद्भाष्यारम्भः ॥
उशन् (ह) वै वाजश्रवसः सर्ववेदसं ददौ
तस्य ह नचिकेता नाम पुत्र (आस) ॥ १ ॥

अन्वयः—(ह, वै) भूतपूर्वस्य वृत्तस्य स्मर-
णार्थं निपातौ। अयमितिहासो जिज्ञासुभिः स्म-
र्तव्य इत्यर्थः। (उशन्) मुक्तिफलं कामयमानः
(वाजश्रवसः) वाजश्रवसोऽपत्यं वाजश्रवसः (सर्व
वेदसम्), सर्वं च तद्वेदो धनमस्मिन्निति समासः।
एवंभूतं वस्तुसमूहम् धनम् (ददौ) दत्तवान्।
सर्वमेधनामकयज्ञं कृतवान् तस्मिन् सर्वं स्वस्य
धनं दक्षिणायां दातव्यमिति विधीयते तथैव कृत-
वान्। (तस्य) यज मानस्य वाजश्रवसस्य (ह)
प्रसिद्धः (नचिकेताः) इति (नाम) नामकः
(पुत्रः) आत्मजः (आस) बभूव ॥ १ ॥

भाषार्थः—(ह, वै) ये दोनों श्रव्य पहिले बीते हुए
वृत्तान्तका स्मरण कराने के लिये हैं, अर्थात् यह जताया है
कि ज्ञानी लोगोंको इस इतिहासका स्मरण करना वा रखना
चाहिये (उशन्) संसारकी सब व्याधि वा उपद्रवोंसे छूटने
की इच्छा रखता हुआ (वाजश्रवसः) वाजश्रवसनामक ऋषि

he thought
 he is a strong believer in the
 (सर्ववेदसन्) अपने सब धनादि पदार्थको (देता) देता
 हुआ अर्थात् सर्वमेध विद्वज्जित नामक यज्ञ किया जिन समय
 मनस्य संन्यास धारण करे वह सत्य सर्वमेध नामक यज्ञ करे
 उस यज्ञमें सब पदार्थको ऋत्विगादि उपान्तोंके अर्घ्य दे देना

चाहिये, यदि पुत्रादि हों तो यथायोग्य उनको भी दे दिया
 जाय किन्तु शरीरसे भिन्न संन्यास लेने वालेका संबंध किसी
 पदार्थसे न रहे कि मेरा अमुक पदार्थ वह है वा वहां है,
 और न अन्य कोई कहे कि यह पदार्थ अमुक संन्यासीका
 है इसी प्रकार नचिकेताके पिताने सर्ववेदमयज्ञ किया (तस्य)
 उस यज्ञकर्ता ऋषिका (ह) प्रसिद्ध तेजस्वी (नचिकेताः)
 इत् (नाम) नामवाल्मी (पुत्रः) पुत्र (आस) या ॥ १ ॥

तथैह कुमारं सन्तं दक्षिणासु नीयमा-
 नासु श्रद्धां विवेश सोऽमन्यत ॥ २ ॥

अन्वयः—(कुमारम्) अप्राप्तयौवनं प्रथमत्र-
 यसं बालम् (सन्तम्) (तम्) नचिकेतसम् (नीय-
 मानासु) ऋत्विग्भ्यो विद्वद्भ्यो सदस्येभ्यः सुपा-
 त्रेभ्यो यथाभागम् (दक्षिणासु) दक्षिणार्थासु गोषु
 विभज्यमानासु (श्रद्धा) आश्रितकी मत्तिः पितु-
 हितार्थप्रयोजिका (आविवेश) किमिदं कर्म मम
 पित्रा क्रियतइति विचारवती बुद्धिरासीत् (सः)
 नचिकेताः (अमन्यत) विचारितवान् किं तदा-
 हाग्रे ॥ २ ॥

भा०—(कुमारम्) युवावस्थाको न प्राप्त हुए अर्थात् १५ वर्ष
 के भीतर अवस्था वाले (सन्तम्) वर्तमान कुमार दासकें उस
 नचिकेता को (नीयमानासु) विद्वान् सदस्यशालामें दिद्यमान
 सुपात्रों तथा ऋत्विज् ब्राह्मणोंके लिये यथा योग्य (दक्षिणासु)

दक्षिणार्थं गौओंका विभाग करते समय (श्रद्धा) आस्तिकता
रूप पिता का हित करने वाली (आविवेश) मेरा पिता
यह क्या कर्म करता है ऐसी विचार युक्त धर्मानुकूल बुद्धि
होती हुई (सः) वह नचिकेता जो (अमन्यत) मानता हुआ सो
आगे कहते हैं अर्थात् पिता अन्य पदार्थोंका दान कर्त्ता २
जब गौओं का दान करने लगा तब पुत्रके चित्तमें विचार
हुआ ॥ २ ॥

पीतोदका जग्धतृणा दुग्धदोहा निरिन्द्रि-
याः । अनन्दा नाम ते लोकास्तान्स गच्छ-
ति ता ददत् ॥ ३ ॥

अन्वयः=सदसि पितृद्देशेनाह नचिकेताः
(पीतोदकाः) पूर्वस्मिन् मध्यमे क्यसि पीतमुदकं
याभिस्ताः पीतोदकाः, नेदानीं पातुं समर्था इत्यर्थः
(जग्धतृणाः) जग्धानि भक्षितानि तृणानि या-
भिस्ता जग्धतृणाः, नेदानीं चर्वणसमर्था इत्यर्थः ।
(दुग्धदोहाः) दुग्धो दोहः क्षीरं यासां ताः (निरि-
न्द्रियाः) प्रजननासमर्थाः, जीर्णा अतिवृद्धाः । ताः
एवमुक्तप्रकारका गा यो यजमानः (ददत्) अ-
ददत्=अहंभावआर्षः । ऋत्विग्भ्यो दक्षिणा बुद्ध-
ध्या ददाति (सः) ये (ते) (अनन्दाः) आनन्दरहि-
ता असमृद्धाः सुखभोगसाधनहीना लोकाः, स्था-
नविशेषाः (नाम) प्रसिद्धाः सन्ति तान् दुःखसा-
धनयुक्तान् (गच्छति) प्राप्नोति । अर्थादेवं भूतानां

(४)

गवा दक्षिणार्थेन दानेन दाता सुखं न लभतेऽन-
पुत्रमपि पित्रापि न सुपु कृतमिति ध्वनितोर्थः ॥३॥

भा०—सभामें जहां कि यज्ञके कर्त्ता वा देखने वाले आदि
उपस्थित थे वहां नचिकेता पिताकी ओर संकेत करके बोला
कि (पीतोदकाः) पहिली दूसरी अवस्था में जिन्होंने जल
पिया अब अतिबहु होने से नहीं पी सकतीं (दुग्धदोहाः)
पहिले घास आदि खा चुकीं अब दांतों वा डाढ़ों के न रहने
से चारा भी नहीं खा सकतीं (दुग्धदोहाः) जब दूध देने
योग्य थीं तब दूध दुहा गया अब दूध नहीं दे सकतीं (नि-
रिन्द्रियाः) अब वच्चा देनेकी योग्यता वा शक्ति भी इन्द्रिय
[उपस्थ] में नहीं (ताः) इस उक्त प्रकारकी गौयें जो यज्ञ
मान ऋत्विज् आदि उपान्तोंको दक्षिणा ब्रुद्धिसे (ददत्) देता
है (सः) वह (ते) जो वे (अनन्दाः) कुछ भोगकी सामग्री
से रहित (लोकाः) स्थान विशेष (नाम) प्रसिद्ध हैं (तान्
उन दुःख साधन युक्त लोकोंको (गच्छति) प्राप्त होता है ।
अर्थात् ऐसी गौओंको दक्षिणार्थ देने से दाता सुख को नहीं
प्राप्त होता इसी से मेरे पिताने भी अच्छा न किया जो ऐसी
गौयें दक्षिणामें दें । दान दक्षिणामें दुग्धसे हरी भरी ज्वान
गौयें देना ही पुण्यकारक है यह अभिप्राय है ॥ ३ ॥

स होवाच पितरं ततः कस्मै मां दास्य-
सीति । द्वितीयं (तृतीयं) होवाच मृत्यवे
त्वा ददामीति ॥ ४ ॥

अ०—नचिकेतसा च प्रादुर्भूतजन्मान्तरीय-
संस्कारेण विदुषा सतैवमालोचितं यज्ञफलनाश-
कमिदं दक्षिणादानं पितुरनिष्टजनकं पुत्राम्नी

नरकाद् दुःखविशेषात् त्रातुं जायमानेन मया
 पुत्रेण सता पितुरिदमनिष्टमात्मप्रदानेनापि वा-
 रणीयमिति मत्वा पितुः सान्निध्यंगत्वेत्थमवदत्।
 (सः, ह) स एव नचिकेताः पुनः (पितरम्) वाजश्र-
 वसमभिमुखीकृत्य (उवाच) हे (तत) तात पितः
 [छान्दसं ह्रस्वत्वम्] माम्) (कस्मै) ऋत्वि-
 ग्विशेषाय दक्षिणार्थे (दास्यसीति) इत्येवमुवा-
 च । एवमुक्तेऽपि पिता बालबुद्धिरयमज्ञइति म-
 त्वा किञ्चिदपि नाह । अतएव नचिकेताः द्वि-
 तीयम्) द्विवारम् (तृतीयम्) त्रिवारम् (ह)
 (उवाच) कस्मै मां दास्यसि कस्मै मां दास्य-
 सीति ततः पिताऽपि नाऽयं बालइति मत्वा क्रु-
 द्धः सन् (इति) उवाच (त्वा) त्वाम् (मृत्यवे)
 यमराजदेवाय (ददामि) वर्त्तमानसामीप्ये
 भविष्यति लट् दास्यामीत्यर्थः ॥

मा०=प्रकट हुये हैं जन्मान्तरीय संस्कार जिसके ऐसे वि-
 द्वाङ् नचिकेता बालकने शोचा कि यह शास्त्रविरुद्ध गौश्रीं
 का दक्षिणादान यज्ञफलका नाशक पिताका अनिष्टकारक है
 और पुत्र नास दुःख विशेष नरकसे पिताकी रक्षा करे वही
 ठीक पुत्र होता है मैं पिताकी रक्षाके लिये ही उत्पन्न हुआ
 हूँ मुझको अपना शरीर देकर भी पिताको इस अनिष्टसे ब-
 चाना चाहिये ऐसा विचार कर पिताके समीप जाकर इस
 प्रकार बोला कि- (सः, ह) वही नचिकेता फिर (पितरम्)
 अपने पिता वाजश्रवा ऋषिसे (उवाच) बोला कि हे (तत)
 तात पिता ! (माम्) मुझे (कस्मै) किस ऋत्विज् विशेषकी

*The middle most that means have the middle word
Then my father said that he would give me 15
I had no more money to give me 15
दक्षिणाय (दास्यासि) दोग । इस प्रकार कहनेपर भी पिता*

ने जाना कि यह अज्ञानी बालक है यों ही बकता है इस
कारण कुछ उत्तर न दिया तब नचिकेता (द्वितीयम्) दो-
बार (तृतीयम्) तीनवार (ह, उवाच) बोला कि मुझे कि-
सको दोगे ? इत्यादि तब पिता भी यह समझके कि यह
बालक नहीं क्रोधपूर्वक बोला (सृत्यवे) सृत्यके लिये (त्वा)

तुझे (ददामि) दूंगा ॥ ४ ॥ *Na che keta!
many words middle most*

प्रत्ये बहूनामसि प्रथमा बहूनामसि मध्यमः ।
which by the way किंस्वित्यस्य कर्तव्यं यन्मयाद्यं करि-
will accomplish ष्यति ॥ ५ ॥

अ०=पितुर्वचो निशम्य नचिकेता एकान्ते
परिदेवयाञ्चकार अहं (बहूनाम्) शिष्याणां म-
ध्ये (प्रथमः) मुख्यउत्तमकक्षाम् (एमि) प्रा-
प्नोमि (बहूनाम्) बालानां मध्ये (मध्यमः)
मध्यमीयां कक्षाम् (एमि) प्राप्नोमि । न केषां
चिदपेक्षयाऽधमोऽस्मीति तदेवमुत्कृष्टगुणमपि पु-
त्रं कथं जनक उक्तवान् सृत्यवे त्वा ददामीति, र-
हसि क्लेशाविष्टश्चिन्तयामास (यमस्य) सृत्योः
(किंस्वित्) (कर्तव्यम्) कार्यमस्ति (यत्)
(मया) साधनभूतेन (करिष्यति) साधयिष्य-
ति मम पितेति शेषः (अद्य) मम पित्रा प्रयो-
जनमनालोच्यैव क्रोधाविष्टेनोक्तम् । तथापि त-
त्पितुर्वचो व्यर्थं माभूदिति मत्वा पितुः संदेश-
मागत्य शोकाविष्टं पितरमुवाच । पिता चानालो-

चय क्रांन्धेन सहस्रं वोक्तवान् मृत्यवे त्वा ददामी-
ति तेन पुत्रविद्योगदुःखेन शोकाविष्टः संपन्नः ॥ ५ ॥

भा०=पिताका वचन सुनकर नचिकेता कहता हुआ कि
मैं (वहूनाम्) बहुत शिष्योंमें (प्रथमः) मुख्य उत्तम कक्षा
की (एमि) प्राप्त हूँ (वहूनाम्) बहुत बालकोंमें (मध्यमः)
मध्यम कक्षाकी (एमि) प्राप्त हूँ किन्तु किन्हींकी अपेक्षा
मैं निकृष्ट नहीं हूँ फिर ऐसे उत्तम गुण युक्त पुत्रसे पिताने ऐसा
क्यों कहा कि तुम्हें मृत्युको दूंगा इस प्रकार एकान्तमें क्लेश
पूर्वक चिन्ता करने लगा (यमस्य) जिसकी मृत्यु भी कहते
हैं उस यमराजका (किंश्चित्) क्या (कर्त्तव्यम्) करने योग्य
काम मेरे बिना पड़ा है (यत्) जो (मया) मुझसे पिता
(करिष्यति) करावेगा (अद्य) आज मेरे पिताने कुछ प्रयो-
जन न विचारके ग्रीष्मतामें क्रोधपूर्वक कह दिया। तो भी पिता
का वचन व्यर्थ सिद्धा न हो ऐसा मानकर पिता के समीप
जाके शोक युक्त पितासे बोला। पिताने बिना शोचें विचारे
क्रोधमें सहसा कह दिया था कि मृत्युके लिये तुम्हें दूंगा, जब
शोचा कि यह मैंने क्या कह डाला तब पुत्रके विद्योगसे होने
वाले दुःखका स्मरण करके शोक करने लगा ॥ ५ ॥

अनुपश्य यथा पृथु प्रतिपश्य तथापर ।
सस्यमिव मृत्युः पच्यत सस्यमिवाजायत
पुनः ॥ ६ ॥

अ०=उक्तप्रकारेण शोकाविष्ट जनकमाली-
क्य नचिकेता आह नहि भवादृशो धर्मज्ञः शोकं
कर्त्तुमर्हति (पूर्वं) पूर्वं जाताः पितृपितामहा-
दयो वृद्धा धर्मज्ञाः (यथा) येन प्रकारेणाचरणं

कृतवन्तस्तथा त्वम् (अनुपश्य) तेषामनुकूल-
 माचरणं विचारय (तथा) तथैव (अपरे) व-
 र्तमाना धर्मात्मानः सज्जनाः (प्रतिपश्य) प्र-
 तिज्ञापालनं यथा कुर्वन्ति तथैव त्वमपि कुरु नैव
 तेषु सत्यवादिषु स्वमुखान्निस्सृतस्य वचसा मृपा
 करणमासीदस्ति वा ततो विरुद्धकरणमसताम-
 धर्मात्मनां कृत्यम् । नहि प्रतिज्ञां विहाय कश्चि-
 दमरो भवति कुतः (मर्त्यः) मरणधर्मा प्राणी
 (सस्यमिव) क्षेत्रोत्पन्नो यवादिरिव (पच्यते)
 जीर्णो भवति वृद्धत्वमापन्नः प्राणान् जहाति
 (पुनः) मृत्वा (सस्यमिव) (आजायते) प्रादु-
 र्भवति । अनित्यानि शरीराणि मुहुर्मुहुस्तपद्य-
 न्ते विनश्यन्ति च तदर्थमपि प्रतिज्ञापालनरूपो-
 नित्यो धर्मः सत्याचरणलक्षणो मनुष्येण न हात-
 व्योऽतो मां प्रेषय मृत्यवे इति तात्पर्यम् ॥ ६ ॥

भा०—उक्त प्रकारसे पिताकी शोकातुर देखकर नचिकेता
 बोला कि आप जैसे धर्मज्ञ लोग शोक नहीं करते हैं (पूर्व)
 पहिले हुए आपके पिता पितामहादि बाप दादे धर्मात्मा
 वृद्ध [बुजुर्गे] लोग (यथा) जिस प्रकारसे आचरण करते
 आये हैं (तथा) वैसा आप भी (अनुपश्य) उसकी अनुसार
 विचार करो वैसे ही (अपरे) वर्तमान धर्मात्मा सज्जन
 लोग (प्रतिपश्य) प्रतिज्ञा का पालन जैसे करते हैं वैसे आप
 भी करो सत्यवादी लोगोंमें मुखसे निकले वचनकी कोई
 सिध्दा नहीं करता था वा न करता है । प्रतिज्ञासे विरुद्ध

*consume the whole house, so a Brahman
nature destroys all (the) happiness of a house,
if he is not received when he comes as a*

कर वा प्रतिज्ञाको छोड़कर कोई अमर नहीं होता क्योंकि
(मर्त्यः) मनुष्य (सस्यमिव) खेत में उत्पन्न हुए जौ आदिके
समान (पच्यते) जीर्ण होता अर्थात् वृद्धावस्थाको प्राप्त होकर
मरता है (पुनः) मरकर (सस्यमिव) खेतीके समान (आ-
जायते) उत्पन्न होता अर्थात् अनित्य शरीर बार २ उत्पन्न
और नष्ट होते हैं उस शरीरके लिये भी प्रतिज्ञा पालन सत्या-
चरण युक्त नित्य धर्मका मनुष्यको त्यागन करना चाहिये इस
से मुझे मृत्युके पास भेजो, अपनी प्रतिज्ञा सत्य करो यह अ-
भिप्राय है ॥ ६ ॥ *acharya's in the house*

his this peace offering to the Brahman
वैश्वानरः प्रविशत्यतिथिब्राह्मणा गृहान् ।
तस्यैतां शान्तिं कुर्वन्ति हर वैवस्वतोद-
कम् ॥ ७ ॥ *with*

अ०=एवं नचिकेतसोक्तः पितासहवृत्तमनु
सृत्य नचिकेतसं मृत्युसन्निधौ प्रेषयामास तस्य
यमस्य सहम प्राप्य नचिकेतास्तिस्रो रात्रीरवा-
त्सीत्, तदानीमेव यमश्च कार्यार्थं प्रदेशान्तरं गत-
वान् यमस्य भार्यादिभिः सत्कारायोक्तोपि न-
चिकेता न किमपि भोजनादिसत्कारं लब्धवान्
पित्राहं मृत्यवे प्रेषितः सचेदानीं स्वगृहे नास्ति
यदा तं प्राप्स्यामि तदा यत्स वक्ष्यति तत्करि-
ष्यामीत्येवं पितुर्वचः सत्यं भविष्यति । इत्यालो-
च्य नचिकेता निराहार एव त्रीणि दिनानि यम
सहमन्युवास । ततस्तृतीयदिवस आगते यमे
भार्यादय ऊचुः=हे (वैवस्वत) विवस्वतः पुत्र !

तव (गृहान्) (वैश्वानरः) अग्निरित्र तेजस्वी
 ब्रह्मवर्चस्वी (अतिथिः) सत्कारार्हः (ब्राह्मणः)
 ब्रह्मवंशजः (प्रविशति) प्रविष्टोऽस्ति (तस्य)
 एवंभूतस्यातिथेः (एताम्) सत्काररूपाम् (शा-
 न्तिम्) प्रसन्नताम् (कुर्वन्ति) धर्मज्ञाः सज्जना
 इति शेषः । अतस्त्वम् (उदकम्) उपलक्षणमे-
 तदन्यपूजासामग्र्याः (हर) प्रापय । तृणानि
 भूमिरुदकं वाक्चतुर्थीच सूनृता । एतान्यपि
 सतां गेहे नोच्छिद्यन्ते कदाचन ॥ इति मनुव-
 चनादपि सिद्धाऽतिथिपूजा ॥७॥

भा०—इस पूर्वोक्त प्रकार नचिकेताके कहने पर श्रेष्ठ लोगों
 के वर्त्तावके अनुसार पिता अपने पुत्रको मृत्युके समीप भेज-
 ता हुआ, यमराजके घरमें नचिकेता जाकर तीन दिन पड़ा रहा,
 यमराज कहीं प्रदेशान्तरको चले गये थे यमराजके स्त्री आदि
 के कहनेपर भी नचिकेताने भोजनादि कुछ नहीं किया न
 जल पिया किन्तु यह विचार किया कि मुझको पिताने मृ-
 त्युके पास भेजा है वे इस समय घरपर नहीं हैं जब उनसे
 मेल होगा तब जो कुछ वे कहेंगे सो करूंगा इस प्रकार करने
 से ही पिताका वचन सत्य होगा ऐसा विचार करके नचि-
 केता तीन दिन उपवास कर यमराजके घरमें रहा । इसके
 पश्चात् जब यमराज आये तब उनकी स्त्री आदि बोलीं कि हे
 (वैवस्वत !) विवस्वान्के पुत्र ! आपके (गृहान्) घरमें (वै-
 श्वानरः) अग्निके समान कान्तियुक्त ब्रह्म तेजधारी (अतिथिः)
 सत्कार करने योग्य अभ्यागत (ब्राह्मणः) विद्या तपसे युक्त
 ब्राह्मण वंशमें उत्पन्न ब्रह्मचारी (प्रविशति) आया हुआ है
 (तस्य) इस उक्त प्रकारके अभ्यागतकी (एताम्) सत्कार

पूर्वक धर्मात्मा सज्जनलोग (शान्तिम्) शान्ति (कुर्वन्ति) करते हैं । इस लिये आप (उदकम्) जलआदि सत्कार की सामग्री को (हर) प्राप्त कीजिये अर्थात् जल आदि से न-चिकेता की पूजा कीजिये । धर्मनाम्न मनुस्मृति में भी कहा है कि आसन, स्थान, जल, और प्रियवाणी धोलना यह स-त्कार की सामग्री अभ्यागत के लिये सदा सज्जनों के घर में उपस्थित रहती है ॥ ७ ॥

^{Hope & expectation} आशाप्रतीक्षे ^{meeting for good association} सङ्गतं ^{children + call} सूनृताञ्चेष्टा-
^{to a man} पूर्त्ते ^{for which} पुत्रपशूञ्च ^{where without heat} सर्वान् । एतदवदुक्ते
^{in house} पुरुषस्याल्पमेधसो यस्यानश्नन्वसात् ब्रा-
ह्मणा गृहे ॥ ८ ॥

अ०-भार्यादयो यमराजमन्यदप्यूचुः (आ-
शाप्रतीक्षे) इष्टस्य विषयस्योत्कण्ठापूर्वकं या प्रा-
र्थना साऽऽशा, अविज्ञातस्य वस्तुनः प्राप्त्यर्थं प्र-
तीक्षणं प्रतीक्षा ते (सङ्गतम्) ^{सत्संयोगजं फलं} सत्सङ्गतिजं फ-
लम् (सूनृताम्) सकरुणां वाचम् (च) तस्या-
वाचो निमित्तम् (इष्टापूर्त्ते) इष्टं यज्ञादिश्रौत-
कर्मजन्यं फलं, पूर्त्ते वापीकूपतडागदेवतायतना-
रामानाथपालनधर्मप्रचारादिस्मार्त्तकर्मजन्यं फ-
लम् (सर्वान्) (पुत्रपशूञ्च) पुत्राञ्च पशूञ्च
(अल्पमेधसः) अल्पमतेः (यस्य) (पुरुषस्य)
(ब्राह्मणः) ब्रह्मधर्मस्थोऽतिथिः (अनश्नन्)

अभुञ्जानः (गृहे) (वसति) तस्य पुरुषस्य (एतत्) पूर्वोक्तं सर्वमाशादिजन्यफलम् (वृङ्क्ते) वर्जयति नाशयति त्यक्तं नष्टं वा भवति । असोऽतिथिसत्कारोऽवश्यं करणीयो नतु कदापि सोऽतिथिरुपेक्षणीय इति ॥ ८ ॥

भाषार्थः—स्त्री आदि यमराज से और भी बोले कि (यस्य) जिस (पुरुषस्य) पुरुष के (गृहे) घरमें (अनशनम्) भोजनादि सत्कार को न प्राप्त हुआ (ब्राह्मणः) ब्राह्मणमें में स्थितं अस्यागत (वसति) वास करता है उस (असपमेधसः) निर्बुद्धि गृहस्थ के (आशाप्रतीक्षे) अभीष्ट विषय की प्रार्थना पूर्वक प्राप्तिकी उत्कण्ठा रूप आशा और अज्ञात वस्तुकी प्राप्ति की प्रतीक्षा (सङ्गतम्) सत्संगति से होने वाला फल (सूनृताम्) दया पूर्वक वाणी (च) और उस वाणी का निमित्त अद्वादि (इष्टापूर्ते) अग्निहोत्रादि श्रौत कर्मका फल और बापी कूप तड़ाग-ताल देवमन्दिर निर्माण, देवप्रतिमा स्थापन वांग वगीचा अनाथों का पालन और धर्म का प्रचार आदि धर्मशास्त्र संबन्धी कर्म का फल (पुत्रपशूश्च) पुत्र और पशुओं को (सर्वान्) (एतत्) इस पूर्वोक्त आशादि के सब फलको सत्कार न किया हुआ अतिथि (वृङ्क्ते) नष्ट करता है अर्थात् अतिथि गृहस्थ के घर से सत्कार न पावे तो उस गृहस्थ को पाप लगजाता है इस लिये अतिथि का सत्कार अवश्य करना चाहिये किन्तु उस अतिथि की उपेक्षा कभी न करे ॥ ८ ॥

^{there night} ^{as, dwell, since any winter} ^{the Brahman a guest worshipful} ^{the 0 Brahmin} ^{he himself for these words a choice}
 तिस्रो रात्रयि देवात्सीर्गृहे मऽनशनन्व-
 ह्यन्नातिथिनमस्यः । नमस्तस्तु वह्नन्स्वार्ति-
 मेऽस्तु तस्मात्प्राप्तिं त्वीनं वरान् वृणीष्व ॥ ९ ॥

अ० यमराजो भाय्यादीनां वचः श्रुत्वा
 नचिकेतसमभिमुखीकृत्योवाच हे (ब्रह्मन्)
ब्रह्मधर्मस्थ त्वम् (अतिथिः) अनियतागमन-
 तिथिः सत्कारार्होऽतएव (नमस्यः) नमस्क-
 र्तुं योग्यः (ते) तुभ्यम् (नमः) (अस्तु)
 (मे) मम तव कृपातः (स्वस्ति) कल्याणम्
 (अस्तु) प्रसीद ममापराधं क्षमस्वेति भावः ।
 प्रार्थनानन्तरमधिकप्रसादनायान्यदाह । हे (ब्र-
 ह्मन्) (यत्) यतस्त्वम् (मे) मम (गृहे)
 (तिस्रः) (रात्रौ) (अनश्नन्) अभुञ्जानः
 (अवात्सीः) (तस्मात्) कारणात् (प्रति)
प्रतिदिवसमेकैकम् (त्रीन्) (वरान्) सन्नोऽभि-
 लषितान् कामान् (वृणीष्व) याचस्व ॥६॥

भाषार्थः—यमराज स्त्रीआदिके कथन को सुनकर नचि-
 केताके पास जाकर बोले कि हे (ब्रह्मन्) ब्रह्मधर्ममें स्थित
 नचिकेतः तुम (अतिथिः) जिसके आगमनकी कोई तिथि
 नियत नहीं ऐसे सत्कारके योग्य अभ्यागत हो इसीसे (नमस्यः)
 नमस्कार करने योग्य हो (ते) तुम्हारे लिये मेरा (नमः)
 नमस्कार (अस्तु) प्राप्त हो तुम्हारी कृपासे (मे) मेरा
 (स्वस्ति) कल्याण हो अर्थात् प्रसन्न होकर मेरा अपराध क्षमा
 करो । प्रार्थना करने पश्चात् अधिक प्रसन्न करनेके लिये और
 बोले कि हे (ब्रह्मन्) शुद्ध ब्राह्मण कुलोत्पन्न पुरुष (यत्) जिस
 कारण (मे) मेरे (गृहे) घरमें (तिस्रः) (रात्रौ) तीन
 रात (अनश्नन्) बिना भोजनादि किये (अवात्सीः) तुम
 रहे हो (तस्मात्) इस लिये (प्रति) प्रत्येक रात्रिके (त्रीन्)

तीन (वरान्) अभीष्ट (विषयोंकी कामनाओंकी (वृणोष्व)
मागिये जिससे मैं उरिण होजाऊं ॥ ९ ॥

शान्तसंकल्पः सुमना यथा स्याद्वातम-
न्युगोतमा मांभिमृत्यो । त्वत्प्रसृष्टमांभिव-
देत्प्रतीतएतत् त्रयाणां प्रथमं वरं वृणो ॥ १० ॥

अ०=यमेनैवमुक्ते नचिकेता आह हे (मृत्यो)
सर्वस्य मारक ! (गौतमः) गौतमवंशस्थो-मम
पिता (शान्तसंकल्पः) शान्तः संकल्पो यमं
प्राप्य किन्तु मम सुतः करिष्यतीति संशयरूपो
मानसव्यापारो यस्य सः (सुमनाः) प्रसन्नचित्तः
(वीतमन्युः) वीतो विगतो मन्युः शोकःक्रोधोवाऽ-
स्य सः (मा, अभि) मां प्रति (स्यात्) भवेत् ।
अर्धाद्भवताऽन्तर्यामिणा वरदानेन पितुर्मन-
स्येवं संकल्पः कार्यो येन मम पिता मध्ये जातां
क्रोधवृत्तिं विहाय भूतपूर्वया प्रेमवृत्त्या मया
सह वर्त्तत (त्वत्प्रसृष्टम्) त्वया प्रेषितम् (मा)
माम् (अभि) अभिलक्ष्य (प्रतीतः) स एवायं
नचिकेता इति प्रत्यभिजानन् (वदेत्) कुश-
लादिकं पृच्छेदपि नतु मौनः स्यात् (एतत्)
(त्रयाणाम्) मध्ये (प्रथमम्) मुख्यम् (वरम्)
अभीष्टम् (वृणे) याचे, एकस्मिन्याचिते वरे बुद्धि-
प्राजलयाकृच्चिकेता कतिपया वरा याचिताः
पुनरहं पितुः सदेशं गच्छेयं, पिता प्रसीदेत्प्रती-

याच्च, अयं च संदेहो न स्याद्यद्यमलोकं गतास्ते-
नैव देहेन न पुनरावर्तन्ते । जन्मान्तरीयतपो-
बलेन नचिकेताः संदेहो यमलोकं गत्वा पुनस्त-
थैवागतो यमवरदानेन ॥ १० ॥

भाषार्थः—यमराजके ऐसा कहने पर नचिकेता यमराजसे
बोला कि हे (सृत्यो) सबको मारने वाले यमराज । (गीतमः)
गीतम वंशी मेरा पिता (शान्तसंकल्पः) यमकी प्राप्त होकर
मेरा पुत्र क्या करेगा ? ऐसा संदेह रूप मानसिक विचार
जिसका शुद्ध शान्त होजावे (शुभनाः) ऊपरी आकृतिसे
भी प्रसन्न चित्त (वीतमन्युः) जिसका शोक वा क्रोध जाता रहा
हो ऐसा (मा, अभि) मेरे प्रति (स्यात्) होजावे अर्थात्
आप अन्तर्यामी होनेसे वरदान द्वारा मेरे पिता के मनमें
ऐसा संकल्प कीजिये कि जिससे मेरा पिता बीचके हुए
क्रोधादिकोंकी छोड़के पहिले समयके तुल्य प्रेमसे मेरे साथ
वर्त्त (त्वत्प्रसृष्टम्) आपके भेजे हुए (मास्) मुझकी (अभि)
देखकर (प्रतीतः) यह वही मेरा पुत्र नचिकेता है ऐसा जा-
नते हुए (वदेत्) कुशल बोनादि पूछे किन्तु मुझे देखकर
जीन न होजावे (एतत्) यह (त्रयाणां) तीनमें से (प्र-
थमम्) मुख्य (वरम्) अभीष्टवर (वृत्ते) सांगता हूँ । इस एक
वरमें नचिकेता ने कई बातें मांगलीं यह बुद्धिकी तीव्रता है।
मैं अपने पिताके पास फिर पहुंच जाऊँ, पिता मुझपर प्रसन्न
हो, मुझे पहचानले अर्थात् पिताके मनमें यह संदेह न रहे
कि यमलोकमें गये फिर उसी शरीरसे लौटकर जहाँ आसकते।
जन्मान्तरीय तथा ऐहिक तपोबलके प्रभावसे नचिकेता को
यह शक्ति हुई कि वह शरीर सहित यमलोकमें जाकर यम
के वरदान से फिर उसी देह से पिता के पास आसका इ-
त्यादि ॥ १० ॥

यथा पुरस्ताद भविता प्रतीत औद्दालकिराहणमत्प्रसृष्टः । सुखं रात्रीः शयिता वीतमन्युस्त्वा ददृशिवान् मृत्युमुखात्प्रमुक्तम् ११

अ०—आद्यवरयाचने नचिकेतोवचः श्रुत्वा यम उवाच (औद्दालकिः) उद्दालकः—स्वार्थं तद्वितः (आहणः) अहणस्यापत्यम्—वाजश्रवसः (यथा) प्रेमान्वितः (पुरस्तात्) पूर्वमासीत् तथैव (मत्प्रसृष्टः) मयानुज्ञातः प्रज्ञापितो वा (प्रतीतः) स एवायं नचिकेता इति प्रत्यभिज्ञानं शान्तः (भविता) भविष्यति । मयानुज्ञातो मत्कृपया शेषा अपि (रात्रीः) (सुखम्) सुखपूर्वकं प्रसन्नचेताः (शयिता) शयनं करिष्यति (वीतमन्युः) विगतशोकक्रोधः (मृत्युमुखात्) मरणभयात् (प्रमुक्तम्) पृथग्भूतम् (त्वाम्) नचिकेतसम्पुत्रम् (ददृशिवान्) द्रक्ष्यति । भविष्यत्यत्र क्लृप्तः ॥

इदमुक्तं भवति—यदा कश्चिद्बालो मातापितृविहीनो मृत्युवशमाप्नुयात्तदा पित्रादयो जानन्ति ममात्मजो न कथमपि पुनर्मेलिष्यति यदि पुनरागच्छेत्तदा मृत्युमुखादागतं जानन्ति वाजश्रवसेन च ज्ञातं सत्यप्रतिज्ञो ममात्मजो मच्चनान्मरणमवाप्स्यति नास्ति सम्भवो यत्पुन-

रागच्छेदिति । यमराजेन च सर्वथाऽसंभवस्या-
पि संभवो दर्शितः स च देवशक्तिप्रभावः ॥११॥

भाषार्थ—पहिला वर मागने विषयक नचिकेताका वचन सुनकर यमराज फिर बोले कि (औदालकिः) उदालक (आरु-
णिः) अरुण नाम वाजश्रवाके पुत्र वाजश्रवस तेरे पिता (यथा)
जिस प्रकार प्रेम प्रीतिसे वर्ताव करने वाले (पुरस्तात्) प-
हिले थे वैसे ही (मत्प्रसृष्टः) मेरी आज्ञा वा कृपासे (भवि-
ता) होंगे । मेरे वरदानसे तुम्हारे पहुँचनेमें शेष रही (रात्रीः)
रात्रियोंमें भी (सुखम्) सुखपूर्वक प्रसन्न चित्तसे (शयिता)
सोवेंगे (वीतमन्युः) क्रोध वा शोक रहित हुए (मृत्युमुखात्) मर-
णभयसे (प्रमुक्तम्) पृथक् हुए (त्वाम्) तुम नचिकेता अ-
पने पुत्रको (ददृशिवान्) देखेंगे ॥

अभिप्राय यह है कि जब कोई माता पितासे पृथक् वि-
युक्त हुआ बालक मृत्यु वा यमके आधीन हो जाता है तब
अतिस्नेही पिता आदि जानते हैं कि हमारा पुत्र अब किसी
प्रकार फिर नहीं मिलेगा यदि दैवयोगसे फिर आजावे तो
मृत्युके मुखसे छूटा जानते हैं । वाजश्रवस ऋषिने भी जाना
कि मेरा पुत्र प्रतिज्ञाको सत्य करने वाला है मेरे वचनसे कि
तुम्हें मृत्युको दूंगा शरीर त्याग देगा मेरे पास फिर आवे यह
संभव नहीं, यमराजने देवीशक्तिके प्रभावसे सब प्रकार असं-
भव ही बातको संभव कर दिखा दिया ॥ ११ ॥ १२-१२.

स्वर्गे लोकं भयं किञ्चनास्ति न तत्
त्वं न जरया विभेति । उमे तीर्त्वाऽज्ञानाया-
पिपासे शाकातिगो मोदते स्वर्गलोका ॥ १२ ॥

अ०—द्वितीयं वरं याचमानो नचिकेता आह

हे (मृत्यो) यमराज ! (स्वर्गे) सर्वोत्तमसुखप्रापके
 (लोके) दर्शनीये यज्ञादिवैदिककर्मानुष्ठानेन
 प्रापणीये स्थानविशेषे (किञ्चन) किमपि रो-
 गादिजन्यम् (भयम्) (न, अस्ति) (न, तत्र,
 त्वम्) हे मृत्यो तत्र त्वमपि सहसा न प्रभवसि
 यथा मानुषलोके त्वदीया गतिरस्ति न तथा दे-
 वेषु (न) नच (जरया) जरां दृष्ट्वा तैर्व्यदुः-
 खेन कश्चित् प्राणी स्वर्गे (बिभेति) नहि निर्जसन्
 जरा बाधते किन्तु (अशनायापिपासे) उप-
 लक्षणमेतन्मानापमानशीतोष्णादिद्वन्द्वानाम् ।
 बुभुक्षापिपासादि द्वन्द्वदुःखे (उभे) (तीर्त्वा)
 अतिक्रम्य [न वै देवा अश्नन्ति न पिबन्त्ये-
 तदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यन्तीति छान्दोग्यश्रुतिः]
 (शोकातिगः) शोकमतीत्य गच्छतीति शोका-
 तिगो मनुजः (स्वर्गलोके) (मोदते) ब्रह्माण्डे
 ये लोकाः सुखभोगस्य पूर्णसामग्रीसाधनसिद्धा-
 यतः परं सुखभोगासम्भवस्तएव स्वर्गलोकास्तेषु
 प्राणिनः क्षिप्रंक्षिप्रं जन्ममरणे नाप्नुवन्ति वृ-
 द्धावस्थाजन्यं च दुःखं न जायते [पञ्चविंशति-
 वार्षिका युवानइवैव भवन्त्यतएव निर्जरा उ-
 च्यन्ते] तत्त्वज्ञाः सन्ती मृत्योरपि न बिभ्यति
 मानुषजन्मापेक्षया तेषामुत्कृष्टत्वं नतु मोक्षा-
 पेक्षयेति मया श्रुतं तत्र किन्तत्त्वमिति ॥ १२ ॥

*Chre immorta lity does not imply absol
-morta lity but the long life of deities
these positions tell on the concept of*

भा०-द्वितीय वरकी सांगनेकी इच्छासे नचिकेता बोला
कि हे (मृत्यो) यमराज ! (स्वर्ग) सर्वोत्तम सुख प्राप्तिके हेतु
(लोके) यज्ञादि वैदिक कर्मके अनुष्ठानसे प्राप्त होने वा द-
र्शनीय स्थान विशेष [जिसमें दुःखकी सामग्रीका प्रायः अ-
भाव तथा सुखसामग्रीकी अधिकता हो] (किञ्चन) कुछ भी
रोगादिसे होने वाला (भयम्) डर (न) नहीं (अस्ति)
है (न तत्र त्वम्) हे मृत्यो यमराज ! वहाँ स्वर्गलोकमें तुम
भी समर्थ नहीं होते कि बाहो जिसे मारहालो जैसे मनुष्योंको
भटपट तुम मार डालते हो वैसे देवोंको नहीं मार सकते (न)
और न कोई प्राणी निर्बलताके दुःखसे (जरया) वृद्धावस्था
को देखकर (धिमेति) डरता है अर्थात् अजर अमर होनेसे
देवोंको जरावस्था नहीं सताती है (अशनायापिपासे) भूख
प्यास शीत उष्ण मान अपमान आदि (उने) दो २ द्वन्द्व
दुःखोंको (तीर्त्वा) छुड़ाके (शोकातिगः) शोकसे पार हुआ
मनुष्य (स्वर्गलोके) स्वर्गलोकमें (नोदते) आनन्द करता है।
[छान्दोग्य श्रुतिमें कहा है कि देवता लोग कुछ भी मनुष्य
वत् खाते पीते नहीं किन्तु अमृतको देखकर वस हो जाया
करते हैं] ब्रह्माण्डमें जो लोक सुख भोगकी पूरा सामग्रीरूप
साधनोंसे सम्पन्न हैं जिनसे परे और अधिक सुखका भोग
होना असम्भव है वे ही स्वर्गलोक हैं उनमें प्राणी शीघ्र २
जन्म मरण को नहीं प्राप्त होते वृद्धावस्थाका दुःख भी वहाँ
नहीं होता तत्त्वज्ञ हुए मृत्युसे वे स्वर्गीय जन नहीं डरते [दे-
वता पच्चीस वर्षके युवाके लुप्त रहते हैं इसीसे वे निर्जर क-
हाते हैं] मनुष्यादिकी अपेक्षा उनका सुख अधिक है किन्तु
मुक्तिकी अपेक्षासे नहीं, यह मैंने सुना है इसमें तत्त्व क्या है ॥११॥

that then for the time know a death
स त्वमस्मिन् स्वर्गमध्यापि मृत्या प-
full of bliss to me
ब्रूहि तं श्रद्धधानाय मह्यम् । स्वर्गलो-

का अमृतत्व भजन्त एतद्वितीयेन वृणे व-
रेण ॥१३॥

अ०=नचिकेताः पुनराह । हे (मृत्यो) (सः,
त्वम्) (स्वर्ग्यम्) स्वर्गप्राप्तेः साधनभूतम् (अ-
ग्निम्) अग्निप्रधानमग्निहोत्रादिकं श्रौतं कर्म
(अध्येषि) स्मरसि जानासि (तम्) अग्नि-
होत्रादियज्ञम् (श्रद्धधानाय) (मह्यम्) (प्र-
ब्रूहि) येन (स्वर्गलोकाः) स्वर्गो लोको येषां ते
यज्ञानुष्ठातारो यजमानाः (अमृतत्वम्) दीर्घ-
कालजीवनमपि सद्यः सद्यो मृतजातापेक्षयाऽ-
मृतं भवति तद्देवत्वम् (भजन्ते) सेवन्ते, एत-
दहं (द्वितीयेन) (वरेण) (वृणे) याचे ।
नचिकेतसा प्रथमेन वरेण सर्वधर्मेषु प्रधानं
पितृसेवनं तत्प्रसादश्च तदेव याचितं स च मृ-
त्युलोकीयो वरः । अनेन द्वितीयेन जन्मान्तरी-
योत्तमस्वर्गलोकप्राप्तिसाधनज्ञानं याचितम् ।
नातः परमनयोर्लोकयोस्तृष्णमस्ति यदिच्छेन्न
चिकेताः । अनेन नचिकेतसो बुद्धेरतितरां प्राश-
स्त्यं ज्ञाप्यते ॥ १३ ॥

भा०—नचिकेता फिर बोला कि हे (मृत्यो) यमराज !
(सः, त्वम्) तू आप (स्वर्ग्यम्) स्वर्ग प्राप्तिके साधन (अ-
ग्निम्) अग्नि गिनमें प्रधान है उस अग्निहोत्रादि श्रौतकर्म
कीं (अध्येषि) जानते हो (तम्) उस अग्निहोत्रादि यज्ञ

(Support of the world - 294) the form learned
macrocosmic physical life or Vair-

के विधानकी (अध्यानाय) अर्द्धा रसते हुए (मध्यम्) सेरे
लिये (प्रब्रूहि) कहिये (स्वर्गलोकाः) स्वर्गमें जिनका नि-
वास होना न्यायानुकूल है वे यज्ञके सेवन करने वाले यज्ञ-
भान लोग (अमृतत्वम्) बहुतकाल तक सुखपूर्वक निर्विघ्न
जीवनरूप देवत्व को (भजन्ते) भोगते हैं (एतत्) यह है
(द्वितीयेन) द्वितीय (वरेण) वरदानसे (युक्ते) भांगता
हूँ। नचिकेताने प्रथम वरदानसे सब सांसारिक धर्मोंमें मुख्य
पितांकी सेवा और प्रसन्नता मांगी यह मृत्युलोक सम्बन्धी
वर है। और इस द्वितीय वरदानसे जन्मान्तर सम्बन्धी उ-
त्तम स्वर्गलोककी प्राप्तिके साधनोंका ज्ञान मांगा क्योंकि इन
दोनों लोकोंमें इससे बड़ा कोई मांगने योग्य विषय नहीं था
जिसको नचिकेता मांगता इससे नचिकेताकी बुद्धिकी अत्यन्त
प्रशंसा ज्ञात होती है ॥ १३ ॥

प्रते ब्रवीमि तदु मे निबोध स्वर्ग्यमग्नि-
आचिकेतः प्रजानन् । अनन्तलोकाग्निमथो
प्रतिष्ठां विद्धि त्वमेनाह्वितं गुहायाम् ॥ १४ ॥

अ०—यमराजआह—है (नचिकेतः) (स्व-
र्ग्यम्) स्वर्गाय हितम् (अग्निम्) (प्रजानन्)
अहम् (ते) तुभ्यम् (तत्) यत्तत्र ज्ञातुमभी-
ष्टं तत् (प्रब्रवीमि) (उ) (मे) सम वचः सा-
वधानतया (निबोध) बुध्यस्व (त्वम्) (अ-
नन्तलोकाग्निम्) स्वर्गलोकप्राप्तिसाधनमधिक-
जीवनेन विस्तृतदर्शनस्य प्रापकम् (अथो) अ-
नन्तरम् (प्रतिष्ठाम्) सर्वस्य जगतः स्थितिसा-
धनम्, सूर्यादिरूपेण विराड्रूपेण जाठररूपेण

वा (एनम्) उक्तप्रकारमग्निम् (गुहायाम्)
 बुद्धी (निहितम्) जीवात्मशक्तिरूपं रुधिरादि-
 निर्मापकं सूर्यादिरूपेण व्यापकं संस्कारजन्य-
 वासनारूपासु बुद्धिवृत्तिषु वा स्थितम् (विद्धि)
 जानोहि । अग्निः सर्वस्य जगत उत्पत्तिस्थि-
 तिविनाशहेतुः स एव यज्ञस्य मुख्यसाधनभूत
 इत्यर्थः ॥ १४ ॥

भा०—यमराज बोले कि—हे (नचिकेतः) नचिकेता (स्व-
 र्ग्यम्) स्वर्गके लिये हितकारी (अग्निम्) अग्निहोत्रादि कर्म
 को (प्रजानन्) जानता हुआ मैं (ते) तेरे लिये (तत्)
 जिसको तू जानना चाहता है उसको (प्रब्रवीमि) कहता हूँ
 (उ) और तून् (मे) मेरे वचनको सावधान हो कर (नि-
 बोध) सुनो वा जानो (त्वम्) तून् (अनन्तलोकासिम्) स्वर्ग-
 लोक प्राप्तिकां साधन अधिक जीवनसे विस्तृत दर्शनको प्राप्त
 कराने वाले (अयो) इसके अनन्तर (प्रतिष्ठास्) सूर्यादिरूप
 विदायरूप वा जाठरादि रूपसे सब जगत्की स्थितिके सा-
 धन (एनम्) इस उक्त गुण युक्त (गुहायाम्) बुद्धिमें (नि-
 हितम्) जीवात्मशक्तिरूप रुधिर आदि बनाने वाले वा सू-
 र्यादि रूपसे व्यापक वा संस्कारोंसे हुई वासनारूप बुद्धिकी वृत्ति-
 योंमें स्थित अग्निको (विद्धि) जानो जिसके आश्रय अग्निहोत्रा-
 दि यज्ञ होनेसे स्वर्ग मिलता है वह अग्नि सब जगत्की उत्पत्ति
 स्थिति विनाशका हेतु है वही यज्ञका मुख्य साधन है ॥ १४ ॥

लोकादिमग्निं तनुवाच तस्मै या इष्ट-
 का यावता वा यथा वा । स चापि प्रत्यव-
 दद्यथोक्तमथास्य मृत्युः पुनरेवाह तुष्टः ॥ १५ ॥

as it has been told to him. Then he was
pleased at this and again.

अ०-इदं श्रुतेर्वचनम्-यमः (तस्मै) न-
चिकेतसे (लोकादिम्) लोकस्य दर्शनस्यादिं
कारणभूतम् । लोकनं लोको भावे घञ् । अथवा
कर्मण्येव घञ् लोच्यते जनैर्यः स लोकउत्पत्तेरादि-
भूतम् । प्रादुरासीत्तमोनुदइति वचनात्सर्गारम्भे
प्रकाशात्माग्निरुत्पन्नः स च व्याप्तः सूक्ष्मः । च-
क्षुरिन्द्रियं चाग्निकारणादेवोत्पन्नम् । अतोग्नि-
र्लोकादिः । अथवा लोकानामादिः प्रथमशरीरी
तं विधातृरूपम् । (तम्) प्रकृतम् (अग्निम्)
(उवाच) सर्वप्रकारेण व्याख्यातवान् । अग्नि-
साध्येऽग्निष्टोमादियज्ञे (याः) यादृश्यः (वा)
(यावतीः) यावत्संख्याकाः (वा) (यथा)
येन प्रकारेण (इष्टकाः) चेतव्या येन विधिना-
ग्निष्टोमादियज्ञोऽनुष्ठेयइत्येतत्सर्वं फलाख्या-
नादिसहितमुवाच (सः, चापि) नचिकेताअपि
(यथा) येन प्रकारेण मृत्युना विधानम् (उक्त-
म्) (अथ) अनन्तरम् (अस्य) यमस्य वचः
(प्रत्यवदत्) प्रत्यक्षरमनुवादं कृतवान् । एत-
न्नचिकेतसो बुद्धिवैचित्र्यं दृष्ट्वा (मृत्युः) यमः
(सुष्टः) अधिकं प्रसन्नो याचितादन्यदपि वरं
दातुम् (पुनरेवाह) आवश्यकं तोषप्रेरितआ-
हेति एवार्थः ॥ १५ ॥

of various hues according to the path of Karma leads to various good results.

भा०—अब अति स्वयं कहती है कि यमराजने (तस्मै) उस नचिकेताके लिये (लोकादिम्) देखनेके आदि कारण वा सृष्टिके आरम्भमें सबसे पहिले प्रकाशरूपसे उत्पन्न होने वाले अथवा सब लोगोंका आदि विधातारूपसे पहिला देहधारी (तम्) उस पूर्वोक्त (अग्निम्) अग्निका (उवाच) सब प्रकार व्याख्यान किया । अग्निसे सिद्ध होने वाले अग्निष्टोनादि यज्ञमें (याः) जैसी (वा) वा (यावतीः) जितनी (वा) वा (यथा) जिस विधान से वेदी में (इष्टकाः) ईंटें चित्तनी चाहिये अर्थात् जैसी वेदि बनाकर जिस विधिसे यज्ञ करना चाहिये सो सब फल सहित यमराजने कहा (सः, ज्ञापि) वह नचिकेता भी (यथा) जिस क्रमसे यमराजने यज्ञका विधान (उक्तम्) कहा (अथ) इसकी पश्चात् (अस्य) यमराजके दूतको (प्रत्यवदत्) प्रत्यक्ष अनुवाद कर सुनाया नचिकेताकी बुद्धिकी ऐसी विचित्रता देखकर (स्तुयुः) यमराजकी (तुष्टः) अधिक प्रसन्न हो कर मागे हुए से अन्यवर देनेको (पुनरेवाह) प्रसन्नतासे प्रेरित हो कर अवश्य बोलने पड़ा ॥ १४ ॥

तमब्रवीत्प्रीयमाणो महात्मा वरन्तवेहाय ददामि भूयः । तव नाम्ना भविताऽयमग्निः सृङ्गां नैमामनेकरूपो गृहाण ॥ १५ ॥

अ०—शिष्ययोग्यतां दृष्ट्वा (प्रीयमाणः) प्रीतिमापन्नः (महात्मा) महती आत्मा व्याप्ताऽव्याहता बुद्धिरस्य स यमः (तम्) नचिकेतसम् (अब्रवीत्) (भूयः) पुनरपि (इह) अस्मिन् द्वितीयवरप्रसंगे (तव) तुभ्यम्, चतुर्थार्थे जष्टो

(अद्य) इदानीम् (वरम्) (ददामि) (अय-
म्) मदुक्तविधानः (अग्निः) (तवैव) (ना-
म्ना) तव नामप्रसिद्धः (भविता) भविष्यति
(इमाम्, च) (अनेकरूपाम्) चित्रविचित्रा-
म् (सृङ्काम्) मालां प्रतिष्ठासूचकं चिन्हम् ।
यद्वा संसारस्थसुखभोगसृतिं स्वर्गनाम्नीम् (गृ-
हाण) स्वीकुरु येन दीर्घकालं जीवनसुखमवा-
प्नुहि । नहीदं वरान्तरदानमपितु यावद्याचितं
तस्मिन्नेव विषये प्रीतिविशेषकारणात्ततोऽधिकं
दीयते ॥ १६ ॥

भा०—शिष्य की योग्यता देख कर (प्रीयमाणः) प्रसन्न
हुए (नहात्मा) व्यास बुद्धिवाले यमराज (त्वम्) उस न-
चिकेता से (अन्नवीत्) फिर बोले कि (भूयः) फिर भी
(यह) इस द्वितीयवर के साथ (तव) तुम्हारे लिये (अद्य)
इस समय (वरम्) वर को (ददामि) देता हूँ (अयम्)
जिस का विधान कहा गया वह (अग्निः) अग्नि (तवैव)
तुम्हारे ही (नाम्ना) नाम से प्रसिद्ध (भविता) होगा (इ-
माम् च) और इस (अनेकरूपाम्) चित्रविचित्र (सृङ्काम्)
शब्दमयी वा रत्नमयी माला का प्रतिष्ठासूचक चिन्हको अथवा
संसारमें विशेष सुखभोगरूप स्वर्ग प्राप्तिको (गृहाण) स्वी-
कार करो जिससे बहुत काल तक जीवन सुख प्राप्त हो। यह
तीनसे पृथक् वरदान नहीं किन्तु जितना मांगा था उसी
द्वितीय वर के संवन्धमें प्रीति विशेष होनेके कारण उससे
अधिक दिया है ॥ १६ ॥
त्रिणाचिकेतस्त्रिभिरत्यसन्धिं त्रिकमकृतम् ॥ ५

It is realized that worshipful & omniscient respect
out (Him) from a Brahmin, he attains
peace. (28) Brahmin

रति जन्ममृत्यु। ब्रह्मजज्ञन्दवमीड्यं विदि-
त्वा निचाय्यमांशान्तिमत्यन्तमेति॥ १७॥

अ०—इदानीं प्रसङ्गप्राप्तं कर्मस्तवमाह (त्रि-
णाचिकेतः) यस्य विधानं नचिकेतसे प्रोक्तं स
नचिकेतो नाम्ना प्रसिद्धो नाचिकेतोऽग्निः स त्रि-
वारं येन चीयते स त्रिणाचिकेतः (त्रिभिः)
मातापित्राचार्यैः (सन्धिम्) सत्संगं शिक्षां
वा (एत्य) प्राप्य (त्रिकर्मकृत्) त्रीणि यज्ञा-
ध्ययनदानानि करोति सः । यस्य सर्वसमार-
म्भाः कामसंकल्पवर्जिताः । (जन्ममृत्यु) जन्म-
मरणे (तरति) जहाति तज्जन्यदुःखान्मुक्तो
भवति (ब्रह्मजज्ञम्) ब्रह्म वेदो जो जातो यस्मा-
त्स ब्रह्मजः, जानातीति ज्ञः, ब्रह्मजश्चासौ ज्ञश्च तं
सर्वज्ञम् (ईड्यम्) स्तोतुमर्हम् (देवम्) दी-
प्यमानं परमात्मानम् (विदित्वा) ज्ञात्वा (नि-
चाय्य) शास्त्रतो निश्चित्य (अत्यन्तम्) क्रि-
याविशेषणम् (शान्तिम्) निरुपद्रवरूपाम्
(एति) प्राप्नोति । त्रयो धर्मस्कन्धा यज्ञोऽध्य-
यनं दानमिति प्रथमः । इति छान्दोग्योपनि० प्र०
२ ख० २३ ॥ इदमुक्तं भवति ये ब्रह्मचर्यादि-
त्रिष्वश्रमेषु त्रिविध आहवनीयादिनामन्यग्नौ
यथाविधि यज्ञादिकर्म कृत्वाऽऽत्म ज्ञानाय प्रय-
तन्ते तएव शान्तिसुखभाजो भवन्ति ॥ १७ ॥

It may also mean to the whole land, etc. and to the

*What kind of books, how many & how the fire is lit
Chains of death - (29) राम द्वय + इच्छा, शोध,*

भा०--अब प्रसंगसे प्राप्त कर्मकी महिमा कहते हैं । (त्रि-
णाचिकेतः) नाचिकेताके लिये जिसका विधान कहा है वह
नाचिकेताके नाम सहित प्रसिद्ध नाचिकेत अग्नि कहाता है
उसको जो ब्रह्मचर्यादि तीन आश्रमोंमें आहवनीयादि नाम
से संचित करे वह त्रिणाचिकेत पुरुष (त्रिभिः) माता पिता
और आचार्यसे (सन्धिम्) उत्संग वा शिष्याको (एत्य)
प्राप्त होकर (त्रिकर्मकृत) गृहस्थ वा वानप्रस्थ आश्रममें अ-
ग्निहोत्रादि यज्ञ ब्रह्मचर्यमें वेद वेदाङ्गादि पढ़ने आदि के
नियम तथा वानप्रस्थ संन्यास आश्रममें सर्वस्वदान करता है
ये ही तीन धर्मरूपवृक्षके मुख्य अवयव (गुद्दे) हैं जो फल
भोगकी अभिलाषाको छोड़कर इन उक्त तीन प्रकारके धर्मों
को करता है वह (जन्ममृत्यु) जन्म मरण रूप समुद्रोंके पार
हो दुःखोंसे छूटजाता है अर्थात् जीवन्मुक्त होता है (ब्रह्म-
जज्ञम्) जिससे वेद उत्पन्न हुआ तथा जो ज्ञानस्वरूप है उस
(ईड्यम्) स्तुति करने योग्य (देवम्) प्रकाशमान परमात्मा
को (विदित्वा) जानकर और (निचाट्य) शास्त्रसे निश्चय
कर (अत्यन्तम्) अत्यन्त (शान्तिम्) सर्व उपद्रवोंसे रहित
शान्तिको (एति) प्राप्त होता है । अभिप्राय यह है कि जो
ब्रह्मचर्यादि तीनों आश्रमोंमें तीन प्रकारके आहवनीयादि
नामक अग्निमें विधिपूर्वक यज्ञादि कर्म करके आत्मज्ञानके
लिये प्रयत्न करते हैं वेही शान्तिरूप अश्वके भागी होते हैं ॥१७॥

who has thrice performed the Vedic rituals and has reached the state of Brahman
त्रिणाचिकेतस्त्रयमृताद्वादित्वा य एवं
known performs Vedic rituals before destroying transcendental qualities
विद्वांश्चिनुत नाचिकेतम् । स मृत्युपाशान्
पुरतः प्रणाद्य शोकातिगा मोदते स्वर्गलोके १८

अ०--(त्रिणाचिकेतः) नाचिकेतमग्निं त्रि-
वारं तिसृष्ववस्थासु चेत्ता जनः (एतत्) पूर्वो-

क्तम् (त्रयम्) त्रिवारम् चयनं मात्रादिभिः शि-
क्षणं त्रिकर्मकृत्त्वं च यद्वा यादृष्टको यावतीर्वा
यथावेति त्रयम् (विदित्वा) (एवम्) मनुक्त-
विधिना (यः, विद्वान्) (नाचिकेतम्) नचि-
केतोनाम्ना प्रसिद्धाग्निसम्बन्ध्याग्निहोत्रादिक-
र्मणः फलम् (चिनुते) सञ्चितं करोति (सः)
(मृत्युपाशान्) नैष्कर्म्याधर्मरागद्वेषादिलक्षणानि
बन्धनानि (पुरतः) शरीरवियोगात्पूर्वमेव (प्र-
णोद्य) विहायोपात्तं देहं त्यक्त्वा (शोकातिगः)
शोकरहितः (स्वर्गलोके) (मोदते) हर्षमाप्नोति ॥ १८ ॥

भा०—(त्रिणाचिकेतः) तीन अवस्थाओंमें नाचिकेत
अग्निको तीनवार संचित करने वाला मनुष्य (एतत्) पू-
र्वोक्त (त्रयम्) तीनवार अग्निका चयन नात्ता आदि तीन
से शिक्षा और तीन यज्ञादि कर्मों करनेको (विदित्वा) ज्ञान
को (एवम्) हमारे कहे विधान के अनुसार (यः, विद्वान्)
जो विद्वान् पुरुष (नाचिकेतम्) नाचिकेत नामसे प्रसिद्ध
अग्नि सम्बन्धी अग्निहोत्रादि कर्म के फल को (चिनुते)
संचित करता है (सः) वह (मृत्युपाशान्) कर्मेत्याग अध-
र्म रागद्वेषादि रूप मरणके बन्धनोंको (पुरतः) शरीर छूटने
से पहिले ही (प्रणोद्य) छोड़कर मरण पश्चात् (शोकातिगः)
शोक रहित हुआ (स्वर्गलोके) स्वर्गलोक में (मोदते) आ-
नन्दको प्राप्त होता है ॥ १८ ॥

एष तृगभिर्नाचिकेतः स्वर्ग्या यमवृणीथा द्वि-
तीयेन वरेण । एतमाग्निन्तवैव प्रवक्ष्यन्ति
जनासस्तृतीयं वरं नचिकेतो वृणीष्व ॥ १९ ॥

अ०-हे (नचिकेतः) (एषः) पूर्वोक्तः
 (अग्निः) तत्सहचरितोऽग्निहोत्रादिधर्मः (स्वर्ग्यः)
स्वर्गाय हितः (ते) तुभ्यमुक्तइति शेषः (यम्)
त्वम् (द्वितीयेन, वरेण) (अवृणीथाः) (एतम्)
 (अग्निम्) (तवैव) नाम्ना (जनासः) जनाः । छा-
 न्दसत्वादाऽऽज्जसेरसुक् (प्रवक्ष्यन्ति) यद्यदाच-
 रति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनइति वचनान्महात्म-
 ना देवेन यमेन यथोक्तं तथैव नचिकेतो नाम्नाग्नि-
 रितरं राख्वायते । इदानीं द्वितीयवरस्य प्रसङ्गः
 समाप्तः । हे (नचिकेतः) त्वम् (तृतीयम्) (वरम्)
 (वृणीष्व) याचस्व ॥ १९ ॥

भाषार्थः-हे (नचिकेतः) नचिकेता (एषः) यह पूर्वो-
 क्त (अग्निः) अग्निसम्बन्धी अग्निहोत्रादि धर्म (स्वर्ग्यः)
 स्वर्ग का उपयोगी साधन (ते) तुम्हारे लिये कहा गया
 (यम्) जिसको तुमने (द्वितीयेन, वरेण) दूसरे वरसे (अवृ-
 णीथाः) मांगा था (एतम्) इस (अग्निम्) अग्निको (तवैव)
 तुम्हारे ही नामसे (जनासः) मनुष्य (प्रवक्ष्यन्ति) कहेंगे ।
 जैसा आचरण श्रेष्ठ पुरुष करते हैं वैसा अन्य सासान्य भी
 करते हैं इस प्रमाण के अनुसार महात्मा यमराजने जैसा कहा
 वैसा ही नचिकेता के नामसे अन्य लोग अग्निको कहते आये
 अब यहां तक द्वितीय वर का प्रकरण समाप्त होगया है
 (नचिकेतः) नचिकेता तुम (तृतीयम्) तीसरा (वरम्) वर
 (वृणीष्व) मांगो ॥ १९ ॥

येयं प्रेत विचिकित्सा मनुष्येऽस्तीत्येके

*philosophy on this point being decided I want
to see if there is any real (logical) called soul that
survives after bodily death.
not this again. Some say I shall know being taught*

नायमस्तीति चेक । एतद्विद्यामनुशिष्टस्त्व-
याहं वराणामथ वरस्तृतीयः ॥२०॥

अन्वयः—वरद्वयसमाप्तौ तृतीयं वरं याचमानो
नचिकेता आह । हे यमराज ! (प्रेते) मृते (मनुष्ये)
(अयम्) नित्यः शरीरस्यः शरीरेन्द्रियमनो
बुद्धिव्यतिरिक्तः कश्चिच्चैतनात्मा देहान्तरसंबन्धी
(अस्ति, इति, एके) मन्यन्त इति शेषः । (न,
अस्ति, इति, च, एके) केचिन्मन्यन्ते । इति
(या, इयम्) (विचिकित्सा) संशयः । (त्वया)
देवेन (अनुशिष्टः) उपदिष्टः (अहम्) (एतत्)
आत्मविद्यानिश्चयमूलम् (विद्याम्) जानीया-
म् । (वराणाम्) मध्ये (एषः) (तृतीयः)
ममाप्नोष्टुः (वरः) अस्ति स त्वया देय इति
भावः ।

भावार्थः—विधिप्रतिषेधार्थेन श्रुतिस्मृत्या-
दिना कर्मोपासनाप्रतिपादकशास्त्रेण वरद्वयसू-
चितं वस्तु प्रेक्षावताऽवगन्तव्यमस्ति । हेयोपा-
देयशून्यस्यात्मनो ज्ञानं ततो विधिप्रतिषेधा-
द्विलक्षणं द्वितीयवरप्राप्त्यापि दुर्लभमभयाज-
रामरपदं शान्तं दुःखात्यन्ताभावावस्थं तादृ-
शज्ञानप्रतिपादनमेवोपनिषदां मुख्यो विषयः ।
तत्प्रतिपादनायैवोत्तरो ग्रन्थ आरभ्यते । पूर्वा

वरों लौकिकी द्वितीयः पारलौकिकस्वर्गादिविषयकः । तृतीयश्चात्मज्ञानेन मोक्षविषयकः । आत्मज्ञानमन्तरेण कश्चिदपिमुक्तो भवितुं नार्हति॥२०॥

भाषार्थः--पहिले दो वरोंकी सनातिमें तीसरा वर मांगता हुआ नचिकेता बोला कि हे यमराज । (प्रेते) (मनुष्ये) मनुष्यके मरजाने पर (अयम्) यह शरीरस्थ देह इन्द्रिय मन और बुद्धिसे पृथक् चेतनात्मा जन्मान्तरमें जाने वाला कोई (अस्ति, इति, एके) है ऐसा अनेक लोग मानते (च) और (न, अस्ति, इति, एके) नहीं है ऐसा अनेक लोग मानते हैं इस प्रकार (या, इयम्) जो यह (विचिकित्सा) संशय है । सो (त्वया) आपसे (अनुशिष्टः) उपदेश पाया हुआ (अहम्) मैं (एतत्) इस आत्मविद्याके निश्चित कारणकी (विद्याम्) जानूँ (वराणाम्) वरोंमें (एषः) यह (तृतीयः) तीसरा मेरा अभीष्ट (वरः) वर है सो आपको देना चाहिये ॥

भाषार्थः--कर्म उपासनाका प्रतिपादक विधिनिषेधरूपमन्त्र ब्राह्मणादि वेद शास्त्रसे ही उक्त दो वरसे सूचित वस्तु जाना जा सकता है । त्याग वा ग्रहण गिरना नहीं हो सकता ऐसे आत्माका ज्ञान उस विधिप्रतिषेधसे विलक्षण है द्वितीय वर प्राप्त होजाने पर भी दुर्लभ अभय अजर अमर शान्त जिसमें दुःखका अत्यन्ताभाव है वैसा ज्ञान कहना ही उपनिषदोंका मुख्य विषय है उसीके प्रतिपादनार्थ अगला ग्रन्थभाग कहाजाता है । पहिला वर लौकिक नाम इस लोक सम्बन्धी है दूसरा परलोक नाम जन्मान्तरमें होनेवाले स्वर्गादि विषयक और तीसरा आत्मज्ञानसे होनेवाले मोक्ष विषयक है क्योंकि चैतन्यरूप आत्माका ज्ञान हुए बिना किसी की सुक्ति नहीं हो सकती ॥२०॥

(३२)

देवरत्रापि विचिकित्सतं पुरा नहि
 सुविज्ञयमणुरेष धर्मः । अन्यं वरं नाचिक-
 तो वृणाष्व मामपरेत्सीरति मा सृजेनम् ॥२१॥

अ०-आत्मज्ञानाधिकारी नचिकेता अस्ति
नवेति परीक्षां कर्तुं यमराज आह (पुरा) पू-
र्वस्मिन् काले (अत्र) अस्मिन्नात्मज्ञानविषये
(देवैः) नैसर्गिक विद्यया द्योतमानैर्विद्युधैः (अपि)
(विचिकित्सितम्) संशयितम् । कायमात्मा
अस्ति नवेति कथं विज्ञातव्य इत्यादिप्रकारेण
सन्देहः कृतः । यतः (एषः) आत्मज्ञानरूपः
(धर्मः) (अणुः) अतिसूक्ष्मोऽस्ति । अतो (नहि)
(सुविज्ञेयम्) एतदात्मतत्त्वं नहि सर्वैर्ज्ञातुं श-
क्यम् । आत्मज्ञानाय प्रयतमानः सर्वः फलभाक्
स्यादित्यपि सन्दिग्धम् । हे (नचिकेतः) अ-
तोऽसन्दिग्धफलम् । (अन्यम्) भिन्नम् (वरम्)
(वृणीष्व) याचस्व । (मा) मामधमर्णमि-
द्वोत्तमर्णः (मा, उपरीत्सीः) उपरोधमृणधा-
रिणं मा कुरु (मा) माम् (अति) प्रति (ए-
नम्) वरम् (सृज) त्यज । एतादृशं कठिनं वरं
विहाय सुगमं किमपि याचस्वेति भावः ॥ २१ ॥

भाषार्थः--नचिकेता आत्मज्ञानाधिकारी है वा नहीं इस बातकी परीक्षा करनेके लिये यमराज बोले कि (पुरा) पहिले

Jane, being the God of Death & prime controller of the destiny hereafter, who does not a better instructor of condition of man than him. The story about death is the secret of life, which is the greatest of all secrets.

समयमें (अत्र) इस आत्मज्ञान विषय पर (देवैः) विद्यासे प्रकाशमान इन्द्रादि देवोंने (अपि) भी (विचिकित्सितम्) आत्मा कोई वस्तु है वा नहीं, है तो कैसा किस प्रकार जानने योग्य है *the physical life is absolute distinction* इत्यादि प्रकारसे सन्देह किये जिस कारण (एषः) यह आत्मज्ञान

रूप (धर्मः) गुण वा विषय (अणुः) अति सूक्ष्म है इस कारण (सुविज्ञेयम्) सबको सुगमतासे जानने योग्य (नहि) नहीं है। अर्थात् आत्मज्ञानके लिये उद्योग करने वाले फल को प्राप्तही हों यह नियम नहीं किन्तु यह सन्दिग्ध है। इससे हे (नचिकेतः) नचिकेता जिसके फल मिलानेमें सन्देह न हो ऐसे (अन्यम्) अन्य (वरम्) वरको (वृणीष्व) मांग (मा) मुझको ऋणीके तुल्य (मा, उपरोत्तमः) सत दवाओ मैं तुम्हारा ऋणी हूं सो ऐसा मत कहो कि मैं यही लूंगा और छोड़ देनेसे मैं ऋणी बना रहूंगा, (मा) मेरे (अति) प्रति (एनम्) इस वरको (सृज) त्याग दो। ऐसे कठिन वरको छोड़कर कुछ सुगम वर मांगो ॥ २१ ॥

Nachiketas was on the point of death, which was the only way to understand the highest truth of the soul.
देवैरत्रापि विचिकित्सितं किल त्वञ्च मृत्यो यन्न सुविज्ञेयमात्थ । वक्ता चास्य त्वादृगन्यो न लभ्यो नान्यो वरस्तुल्य एतस्य कश्चित् ॥ २२ ॥

अ०-पुनर्नचिकेता आह-हे (मृत्यो) यमराज ! (अत्र) अस्मिन्नात्मज्ञानविषये (देवैः, अपि) उक्तरीत्या (विचिकित्सितम्) (किल, त्वञ्च) (यत्सुविज्ञेयम्) (न) इति (आत्थ) ब्रवीषि । अत एवानुमीयतेऽतिक-

ठिनाऽयं वरोऽन्यपण्डितैरपि दुर्ज्ञेयत्वात् (अस्य)
वरस्य (त्वादृक्) त्वत्सदृशः (वक्ता) (अन्यः)
मयाऽन्विष्यमाणोऽपि (न, लभ्यः) (न, च)
(एतस्य) (तुल्यः, अन्यः, कश्चित्, वरः) अस्ति ।
अस्य निःश्रेयसफलहेतुत्वादयमेव सर्वोपरि श्रे-
ष्ठतमो वरः ॥ २२ ॥

भा०—फिर नचिकेता बोला कि हे (मृत्यो) यमराज !
(अत्र) इस आत्मज्ञान विषय पर (देवैः, अपि) देवोंने भी
उक्त रीतिसे (विचिकित्सितम्) संशय किया (त्वं, च, कि-
ल) और आप भी (यत्, ह्यविज्ञेयम्, न) जिस कारण उ-
पगतासे जानने योग्य नहीं ऐसा (आत्य) कहते हैं इसीसे
मैं अनुमान करता हूँ कि यह वर अति कठिन है अन्य प-
ण्डितोंसे भी दुर्ज्ञेय होनेसे (अस्य) इस वरका (वक्ता)
उपदेश करने वाला मुझको (त्वादृक्) आपसे तुल्य खोजने
पर भी (न, लभ्यः) नहीं मिल सकता (च) और (न)
न (एतस्य) इसको (तुल्यः, अन्यः, कश्चित्, वरः) तुल्य
अन्य कोई वर है अर्थात् आत्मज्ञान मुक्तिमुखका कारण
होनेसे यह सर्वोपरि अति श्रेष्ठ है इस लिये मैं इसको छोड़
कर अन्य क्या मागूँ ? ॥ २२ ॥

शतायुषः पुत्रपातान् वृणीष्व बहून् पशून्
हस्तिहरण्यमश्वान् । भूममहदायतनं वृ-
णीष्व स्वयं च जीव शरदो यावादिच्छसि ॥ २३ ॥

अ०—पुनर्यमआह=हे नचिकेतस्त्वम् (श-
तायुषः) शतं वर्षाणि यावदायुर्येषां तान् (पु-

पुत्रपौत्रान् पुत्रांश्च पौत्रांश्च (वृणीष्व) (बहून्)
 (पशून्) गवादीन् (हस्तिहिरण्यम्) हस्ति-
 नो हिरण्यं चेति समाहारद्वन्द्वः (अश्वान्)
 (भूमेः) पृथिव्याः (महत्) (आयतनम्)
 स्थानमाश्रयं माण्डलिकं राज्यम् (वृणीष्व)
 (स्वयम्, च) स्वयमपि (यावत्) यावतः
 (शरदः) शरदृतूपलक्षितान्संवत्सरान् जीवि-
 तुम् (इच्छसि) तावत् पुत्रपौत्रादिसुखसा-
 मग्न्या सह (जीव) प्राणान् धारय । लौकिक-
 सुखसम्पत्तौ प्रधानकारणानि पुत्रादय इत्यपि
 सूच्यते । मनुष्यस्य यावदायुः सम्भवति ता-
 वतोऽप्यधिकतमं देवप्रसादाद्भवितुमर्हति ॥२३॥

भाषार्थः—फिर यमराज बोले कि हे नधिकेतः ! तू (श-
 तायुषः) सौ वर्ष की अवस्था वाले (पुत्रपौत्रान्) पुत्र पौत्रों
 को (वृणीष्व) मांग तथा (बहून्) बहुत (पशून्) गीआदि
 पशुओं (हस्तिहिरण्यम्) हाथी सुवर्ण (अश्वान्) घोड़ों
 को मांग और (भूमेः) पृथिवीके (महत्) बड़े भाग (आयतनम्)
 माण्डलिक राज्य को (वृणीष्व) मांगो (च) और (स्वयम्)
 आप भी (यावत्) जितने (शरदः) शरदऋतु सम्बन्धी
 वर्षों तक जीवन की इच्छा करते हो उतने काल पर्यन्त
 पुत्र पौत्रादि सुखकी सामग्री सहित (जीव) जीवों ऐसा
 वरदान हम दे सकते हैं । इस प्रसंग में यह भी सूचित होता
 है कि लौकिकसुखकी सिद्धिमें मुख्य कारण पुत्रादि हैं ।
 मनुष्य की जितनी उमर होना सम्भव है उतनीसे भी सहस्रों
 वा लाखों वर्ष का अत्यन्त अधिक आयु देवता के वरदानसे
 हो सकता है ॥२३॥

एतत्तुल्यं यदि मन्यसे वरं वृणीष्व वित्तं
चिरजीविकाञ्च । महाभूमौ नचिकेतस्त्वमे-
धि कामानान्त्वा कामभाजं करोमि ॥२४॥

अ०-(यदि) (एतत्तुल्यम्) एतेन पूर्वो-
क्तेन तुल्यं सदृशं सुखभोगसाधनम् (मन्यसे)
तर्हि तमपि (वरम्) (वृणीष्व) (वित्तम्)
सुवर्णरत्नादिभोगसाधनमैश्वर्यम् (च) तेन सह (चि-
रजीविकाम्) चिरस्थायिनीं जीविकामनवधिकं
जीवनमपि वृणीष्व । हे (नचिकेतः) (त्वम्)
(महामूमौ) महत्यां मेदिन्यां प्रतापवान् राजा
(एधि) भव । अहम् (त्वा) त्वाम् (कामा-
नाम्) अभिलषितविषयाणाम् (कामभाजम्)
इच्छासेविनम् (करोमि) अर्थात् सर्वाणि लो-
किकसुखानि तुभ्यं दद्यां तानि भुङ्क्ष्व दिव्य
मानुषभोगानां मध्ये यं कमपि दुर्लभमपि भोग
मिच्छसि तं सर्वं दातुं शक्तीऽहं देवस्य सत्यसंक-
ल्पत्वादिति यमस्याशयः ॥२४॥

भावार्थः—यमराज फिर बोले कि (यदि) जो (एतत्तुल्यम्) इस पूर्वोक्त के तुल्य सुख भोगके साधन और भी (मन्यसे) मानते होतो उस (वरम्) वरको भी (वृणीष्व) मागो (वित्तम्) सुवर्ण रत्नादि भोगका साधन, ऐश्वर्य, (च) और साथही (चिरजीविकाम्) चिरस्थायी लाखों वर्ष तक जीवित रहना भी मागो । हे (नचिकेतः) नचिकेता (त्वम्) तुम

*with their Chariots & musical instruments
are not in the line of the world - the
desires of the world are not in the line of the world - the
desires of the world are not in the line of the world - the*

(सहामुनी) बहुत अधिक बड़ी पृथिवी पर प्रतापी राजा
(एधि) होजाओ । मैं (त्वा) तुमको (कामानाम्) अभीष्ट विष-
यों की (कामभानम्) इच्छा को प्राप्त होने वाला (करोमि)
करता हूँ अर्थात्-सब लौकिकसुख तुम्हें देता हूँ उन को
भोगो दिव्य और मानुष दो प्रकारके भोगोंमें से तुम जिस
किसी दुर्लभ भोग को भी चाहते हो उस सभी काम भोगकी
सत्यसंकल्प देवता होनेसे हम दे सकते हैं यह यमराज का
अभिप्राय है ॥ २४ ॥

which which desire difficult to the world only
य य कामा दुर्लभा मर्त्यलोके सर्वा-
according to the choice ask for these
न्कामाश्छन्दतः प्राथयस्व । इमा रामाः
with chariot with musical instruments such attainable men
सुरथाः सतूया नहादृशा लम्भनीया मनुष्यैः ।
By these given by me he attended
आभिमत्प्रताभिः परिचारयस्व नचिकेतो
Don't do not request
मरणं मानुप्राक्षीः ॥ २५ ॥

अ०-(मर्त्यलोके) मनुष्यसृष्टी जनसमु-
दाये (ये ये) (दुर्लभाः) (कामाः) सन्ति तान्
(सर्वान्) (कामान्) (छन्दतः) ग्रथेष्टम् (प्रा-
थयस्व) (इमाः) (सुरथाः) रथैरमणसाधनैर्यानिः
सह वर्तमाना रथारूढाः (सतूर्याः) वादित्रा-
दिवादनसहिताः (रामाः) रमयन्ति हावभावैः
प्रसादयन्ति पुरुषानिति रामाः सुरूपवन्त्यो दि-
व्या अप्सरसो मया तुभ्यं दीयन्ते (इदृशाः)
मादृशादिदेवप्रसादमन्तरेण (मनुष्यैः) मृत्यु
लोकस्थैः (नहिं) (लम्भनीयाः) प्राप्याः कि-

creation is change & so material is eternal though our earthly home & our life there is not when compared with the infinity of life even in this significant universe when it is compared with

न्त्वोदृशा अप्सरसो देवैरेव प्राप्याः (मत्प्रत्ता-
भिः) मया दत्ताभिः (आभिः) दिव्याङ्गना-
भिः (परिचारयस्व) हे (नचिकेतः) (मरणम्)
मरणसंबद्धमात्मज्ञानविषयम् (मानुप्राक्षीः)
मापुच्छ ॥ २५ ॥

भाषार्थः—(मर्त्यलोके) सृत्युलोकमें (ये ये) जो २ (कामाः)
कामना प्राप्त होनी (दुर्लभाः) दुर्लभ हैं उन (सर्वान्) सब
(कामान्) कामनाओं को (छन्दतः) स्वतंत्रता से यथेष्ट
(प्रार्थयस्व) मांगो (सरथाः) सुख के साधन दिव्ययानों
पर चढ़ी हुई (सत्पूराः) जिनके साथ जाये आदि वजते हैं
ऐसी (रामाः) हावभावों से पुरुषों को प्रसन्न करने वाली
सुसुपवती (इमाः) ये दिव्य अप्सरा मैं तुमको देता हूँ।
(हेदृशाः) ऐसी सर्वोत्तम सुन्दरी अप्सरा हमारे जैसे देवता
को प्रसन्नता के बिना (ननुयैः) मनुष्यों को (नहि) नहीं
(लम्बनीयाः) प्राप्त हो सकतीं किन्तु ऐसी अप्सरा देवोंको
ही प्राप्त हो सकती हैं (मत्प्रत्ताभिः) मैं ने दी हुई (आभिः)
इन दिव्य अङ्गनाओं से (परिचारयस्व) अपनी सेवा शुश्रू-
षा कराओ। हे (नचिकेतः) नचिकेता ! (मरणम्) मरण स-
म्बन्धी आत्मज्ञान विषयको (मानुप्राक्षीः) मत पछो ॥ २५ ॥

*Epithet of the mortal body this is all the
senses wear out Vigor fades away all life
short very distressing process more dangerous than*
आभावा मर्त्यस्य यदन्तकैतत्सर्वेन्द्र-
याणां जरयन्ति तेजः । अपि सर्वे जीवि-
तमल्पमेव तवैव वाहास्तवनृत्यगीत ॥ २६ ॥

अ०—एवमुक्तप्रकारेण बहुविधं लोभितोऽपि
नचिकेताः सर्वे लौकिकसुखभोगा अनित्या दुः-
खपरिणामास्तुच्छा इति मत्वा न लुब्धः पुनः

श्रुतुर्भिर्मन्त्रैः स्वाभीष्टमाह-हे (अन्तक) दुष्ट-
कर्मकारिणामन्तकृन्नाशक यमराज ! (श्वोभा-
वाः) श्व आगामिनि दिवसे भविष्यन्ति नवा
भविष्यन्तीत्यागमापायवन्तोऽनित्याः सर्वे संसा-
रस्थस्त्रयादिसम्बन्धिनो दिव्याप्सरःसम्बन्धि-
नश्च सुखभोगाः (मर्त्यस्य) (सर्वेन्द्रियाणाम्)
चक्षुरादीनाम् (तेजः) (जरयन्ति) यच्च तत्र
भवान् चिरजीविकां दातुमिच्छति तत् (सर्वम्)
(अपि) (जीवितम्) (अल्पमेव) यदा ब्रह्मणोऽपि
जीवनमल्पमेव तदोऽन्येषामस्मदादीनां जीवन-
मल्पतरं ततो न्यूनमेव सम्भवति । यच्चीकृतं रथा-
दिसहिता रामा दीयन्ते तत्रापि शृणु (वाहाः)
रथादिवाहनानि (तवैव) सन्तु (नृत्यगीते)
तूर्यशब्दसूचिते (तव) तवैव भवेताम् ॥ २६ ॥

भा०—इस उक्त प्रकार अनेकविध लुभाया हुआ भी
नचिकेता सब लौकिक सुखभोग अनित्य, परिणाम में दुःख-
दायी और तुच्छ हैं ऐसा मानके लोभको प्राप्त नहीं हुआ ।
फिर अपने अभीष्ट को चारमन्त्रोंसे कहता है । हे (अन्तक)
दुष्टकर्म कारियोंका नाश करने वाले यमराज (श्वोभावाः)
जो भोग इस समय हैं वे कल रहेंगे वा नहीं इस प्रकार उ-
त्पत्ति नाश वाले स्त्री आदिके साथ होने वाले लौकिक तथा
दिव्य अप्सराओं सम्बन्धी सब सुख भोग अनित्य होते हुए
(मर्त्यस्य) मनुष्यके (सर्वेन्द्रियाणाम्) सब इन्द्रियोंके (तेजः)
प्रताप बल वा शोभाको (जरयन्ति) नाश करदेते हैं । और

that book above is the Christian one
is famous as to get a (2000) years so he cannot
be with us due to the fact that he is a
man of the past as we are of the present so we shall
not be able to understand him.

जो आप बहुत काल जीवन देने को कहते हैं सो (सर्वम्)
सुख (अपि) भी (जीवितम्) जीवन (अल्पम्, एव)
थोड़ा ही है अर्थात् मुक्तिके नित्य अविनाशी सुखकी अपेक्षा

साखों वर्षका जीवन भी तुच्छ है जब एक महाकल्पतक र-
हने वाला ब्रह्माजी का जीवन भी थोड़ा है तब अस्मदादिका
जीवन तो उससे भी बहुत कम होना संभव ही है । और जो
रथादि सहित सेवन करने वाली सुन्दरी अप्सरा आप देना
चाहते हैं सो वे (बाहाः) रथआदि वाहनो सहित दिव्य
स्त्रियां (तवैव) आपकी ही रहें और (नृत्यगीते) नाचना गाना
बजाना भी (तव) आपका ही रहो मैं नहीं चाहता ॥२६॥

न वित्तेन तर्पणीया मनुष्या लप्स्यामहे
वित्तमद्राक्ष्म चेत्त्वा । जीविष्यामी यावदो-
शिष्यसि त्व वरस्तु मे वरणीयः स एव ॥२७॥

अ० (मनुष्यः) (वित्तेन) भोगेन । वि-
त्तो भोगप्रत्यययोरिति निपातनम् (न, तर्पणीयः)
दुप्पो भवितुन्नाहः । नहि वित्तलाभः कस्यापि
तृष्णापूरको दृश्यते (चेत्) यदि (त्वा) त्वाम्
(अद्राक्ष्म) दृष्टवन्तस्तर्हि (वित्तम्) भोग-
म् (लप्स्यामहे) प्राप्स्याम एव भवत्कृपातः
(यावत्) कालम् (त्वम्) (ईशिष्यसि)
ममेश्वरः प्रभुरध्यक्षः स्वामी रक्षको भविष्यसि
तावत् (जीविष्यामः) प्राणान् यापयिष्यामः ।
अतो मया चिरजीविकापि वरपक्षे न याचनी-
या । एतद्द्वयं कर्मानुकूलमन्यैरपि लभ्यम् । य-

11.54.1. In the after, devotion to the guru, gymnasium + swimming (89). These 3 schools sh. kites conviction that sex is pleasure & even a bourgeoisie are meaner. From in world

स्योपरि भवादृशानां कृपास्ति स यावत्प्रयोजनं सुवर्णाद्यैश्वर्यभोगं प्राप्स्यत्येव समीपरि तु भवदीयां विशिष्टा कृपास्ति तस्याः साधारणं वित्तादियाचनं फलमनुचितम् । अतः (मे) मम (वरस्तु) (स एव) (वरणीयः) प्रार्थनीयो नान्यः ॥ २७ ॥

भा०—(वित्तेन) ऐश्वर्यके भोगसे (मनुष्यः) मनुष्य (न तर्पणीयः) तब नहीं हो सकता घनाद्यैश्वर्यकी प्राप्तिसे किसी की तृष्णा पूरी होती नहीं देखीजाती है । इसलिये मैं धन वा ऐश्वर्यका भोग नहीं मांगता (चेत्, त्वा) जो आपका (अद्वात्म) दर्शन हुआ है तो (वित्तम्) ऐश्वर्य भोग आपकी कृपासे (लप्स्यामहे) प्राप्त होंहीगे (यावत्) जबतक (त्वम्) आप (ईशित्वसि) मेरे स्वामी रह सक बने रहोगे तबतक (जीविष्यामः) प्राणयात्रा चलेगी । इस कारण मैं चिरजीवन भी वरपक्षमें नहीं मांगता ऐश्वर्य भोग और जीवन इन दोनोंकी अन्य भी प्राणी कर्मानुसार पाते ही हैं अर्थात् जिसपर आप जैसे सर्वाध्यक्ष देवताकी कृपादृष्टि है वह अपने निर्वाहानु-कूल ऐश्वर्य अवश्य पावेगा । मेरे ऊपर तो आपकी विशेष कृपा है उसका फल साधारण घनादि मांगना अनुचित है इस का-रण (मे) मुझको (वरस्तु) वर तो (स एव) वही (वर-णीयः) मांगना है जो पहिले मांगसका हूं अन्य नहीं ॥ २७ ॥

the ungrateful the immortal heaven Being grateful existing on the earth knowledge of something enjoying me
अजीयताममतानामपत्यं जीयन्मत्यः
down below knowledge of something enjoying me
कथंस्थः प्रजानन् । आभध्यायन् वर्णरति-
down below knowledge of something enjoying me
प्रमादानतिदीर्घं जीवितं का रमेत ॥ २८ ॥

अ० (वर्णरतिप्रमोदान्) वर्णस्य गौरसौन्द-
र्यादिरतिः प्रमदासम्बन्धस्य प्रमोदान् हर्षान् (अ-
भिध्यायन्) तत्त्वतो दुःखमूलान् विचारयन् (अ-
जीर्यताम्) वयोहानिमप्राप्नुवताम् (अमृतानाम्)
मुक्तानां योग्यताम् (उपेत्य) प्राप्य (क्वधःस्यः)
कौ पृथिव्यामधो निःकृष्टदशायां परमार्थसुखा-
पेक्षया तिष्ठतीति सः (जीर्यन्) शरीरादेः क्षी-
णतामनुभवन् (कः) (प्रजानन्) प्रज्ञावान्
सदसद्विवेकी जनः (अतिदीर्घे) (जीविते)
जीवने (रमेत) न क्रीपीत्यर्थः । क्वधःस्य इत्य-
स्य कृतदास्यइति पाठान्तरे तेषु पुत्रधनादि-
प्राप्त्या यस्य स तादृशः कृ भवति न क्रीपीत्यर्थः ॥

भा०—यथा बुद्धिमत्तः कस्यचिदुत्तमाधिका-
रसुखमुपस्थितं नैव स उत्कृष्टं विहाय निःकृष्ट-
साधु मनो धत्ते तथैव यः परमार्थमात्मज्ञान
जन्यमनुत्तमं सुखमाप्तुमुत्सुकः शक्तश्च महदा-
श्रयेणोपस्थिते च सुखेऽनेकविघ्नोपद्रुतं दुःखबहु-
लमनित्यं सुखभोगं को विद्वान् प्रार्थयेत् ? अतो
नाहं प्रलीभ्यः संसारसुखैरिति नचिकेतस आ-
शयः ॥ २८ ॥

भाषार्थः—(वर्णरतिप्रमोदान्) गौरे सुन्दर आदि वर्ण
और सुन्दर स्त्री के सम्बन्धसे हुए काम सुखोंको (अभिध्या-
यन्) तत्त्व से दुःख के मूल समझते हुए तथा (अजीर्यताम्)

जीर्णं वृद्धावस्था रहित (अमृतानाम्) युक्त पुरुषोंकी योग्यताको (उपेत्य) पाकर (कथःस्थः) परमार्थ सुख की अपेक्षा पृथिवी पर निकृष्ट दशा में स्थित (जीर्यन्) शरीर इन्द्रियोंके नाश का अनुभव करता हुआ (कः) कौन (प्रजानन्) विचारशील सत् असत्का विवेकी मनुष्य (अतिदीर्घं) बहुत (जीविते) जीवनमें (रमेत्) रने अर्थात् कोई नहीं (कथःस्थः) इसके बदले किसी २ पुस्तक में (कृतदास्यः) ऐसा भी पाठ मिलता है तब यह अर्थ होगा कि उन पुत्रादि अनित्य पदार्थों में कौन धितदे ? अर्थात् कोई नहीं ॥

भा०—जैसे उत्तम अधिकार का सुखभोग उपस्थित हो तो कोई बुद्धिमान् उसको छोड़कर नीचे अधिकार को नहीं पकड़ता वैसे ही जो आत्मज्ञानसे होने वाले सर्वोत्तम परमार्थ सुखकी प्राप्ति का अभिलाषी और समर्थ है और ज्ञानी महात्मा वा आप जैसे देवके आश्रयसे परमार्थ सुख मिलना उपस्थित भी है तो अनेक बिग्रों से युक्त दुःखप्राय संसारी अनित्य सुख भोग को कौन विद्वान् चाहेगा ? इस लिये मैं संसारी सुख भोगोंसे लुभाने योग्य नहीं हूँ यह नचिकेता का आशय है ॥ २८ ॥

^{in which this} यस्मिन्निदं ^{desire} विचिकित्सन्ति ^{reach} मृत्यो ! ^{what} य-
^{we ask} त्सोपरायं ^{ask} महति ^{ask} ब्रुहि ^{ask} नस्तत् । ^{ask} याज्य वरो
^{ask} गूढमनुप्राविष्टा ^{ask} नान्यन्तस्मान्नाचिकेता ^{ask} वृ-
^{ask} णीते ॥ २९ ॥

अ०—हे मृत्यो यमराज ! (यस्मिन्) आत्मज्ञानविषये (इदम्) अस्ति नास्ति वाऽस्ति चेत्कीदृशं क्वास्ति वेत्यादिप्रकारेण (विचिकि-

(Good - Supreme Truth, the knowledge of which leads us to man. of 44 different requisitions to a different to all pleasant & pleasant to all)

भा०-हे ब्रह्मनिष्ठ यमदेव । मरण समय कोई आत्मा शेष रह जाता है वा नहीं जिसका जन्म मरण हो ही नहीं तथा जन्मान्तर को कोई धारण करता है वा नहीं, कौन किस प्रकार वा कब मुक्त होता है, इस प्रकारका ज्ञानरूप वर मुक्त को दीजिये ॥ २९ ॥

यह प्रथमा बल्ली समाप्त हुई ॥

The Two ways
अथ द्वितीया बल्ली ॥ *from 1-5*

Different अन्यच्छ्रेयो न्यदुतैव प्रेयस्ते उभे ना-
different requisitions नार्थे पुरुष सिनीतः । तयोः श्रेय आद-
good becomes दानस्य साधु भवति हीयतेथादय उ प्रे-
the pleasant shows या वृणीत ॥ १ ॥

अ०-बहुप्रकारं यमेन लोभ्यमानोऽपि न-
चिकेता यदा न लुलुभे तदा शिष्ययोग्यतां बु-
द्ध्वा शिष्यप्रशंसापूर्वकं ज्ञानमुपदेष्टुमाह-
(श्रेयः) अतिशयितं प्रशस्यं कल्याणकरं मोक्ष-
प्राप्तिसाधनं कर्म (अन्यत्) यत्तदग्रे विषमिव
परिणामेऽमृतोपमम् । संसारिकृत्यापेक्षयातिवि-
लक्षणमरोचकं नीरसम् । (उत) (प्रेयः) अत्य-
न्तं प्रियं स्त्रीधनैश्वर्यादिभोगप्रापणम् (अन्यत्,
एव) प्रारम्भे सुखलवदं परिणामेऽपरिमि-
तदुःखहेतुकमहोरात्रवद्विघ्नम् (ते) श्रेयःप्रे-

seems like chain round

acting for a certain end, he is for cause pleasant
 L. emancipation. He is from the stand point
 absolute freedom, with the desire of some pleasant
 L. emancipation are knowledge although the latter is

यसौ (उभे) (नानार्थे) नानाविधा अर्थाः प्रयो-
 जनानि ययोस्तै भिन्ननिमित्ते भिन्नफलके सती
 (पुरुषम्) (सिनीतः) कर्मफलानुमोदनवास-
 नारज्जुभिर्बध्नीतः (तयोः) श्रेयःप्रेयसोर्मध्ये
 (श्रेयः) (आददानस्य) उपादातुः (साधु)
 कल्याणम् (भवति) (यः, उ) (प्रेयः) (वृ-
 णीते) स्वीकरोति सः (अर्थात्) नित्यसुख
 प्राप्तिरूपात्परमार्थप्रयोजनात् (हीयते) हीनो
 भवति ॥

भा०-यथानिम्बादिकदुवस्तूनि प्रायोऽप्रि-
 याणि भवन्ति परिणामे च तेषामौषधत्वान्म-
 हत्सुखम् । शर्करादिमिष्टं प्रायः प्रियं तत्सेवने
 प्रायः कल्याणं न जायते तथैव पारमार्थिकसु-
 खसम्पत्तौ तपश्चरणादि श्रेयो विषकुम्भपयोसुख-
 वत्संसारि विषयभोगप्रेयसोऽतिदूरतरम् । तत्र यो
 मनुष्यजन्म प्राप्य मुक्तये प्रयतते स कल्याण-
 माप्नोति नेतरः शकृत्कृमिर्भोगासक्तः ॥ १ ॥

भा०-यमराजने बहुत कुछ लुभाया भी नचिकेता जब लो-
 भित न हुआ तब शिष्यकी योग्यता जानकर शिष्यकी प्रशंसा
 पूर्वक ज्ञानका उपदेश करनेका प्रारम्भ किया- (श्रेयः) अ-
 त्यन्त प्रशंसित कल्याणकारी मोक्षप्राप्ति का साधन रूप कर्म
 (अन्यत्) अन्य है अर्थात् संसारि कृत्यकी अपेक्षा अति वि-
 लक्षण अरोचक नीरस और (प्रेयः) स्वीचनैश्वर्यादि भोग
 मिलना अत्यन्त प्रिय (अन्यत्, एव) प्रारम्भ में नामनात्र

The presence of
 the necessity of
 the necessity of
 the necessity of

*The path of knowledge & the path of pleasure
 lies in the option of (89) man the wise man
 eternal bliss & freedom & soul by the former & the
 ephemeral*

थोड़ा सुख देने और परिणाममें अतुल दुःखदायी दिनरात
 के तुल्य भिन्न ही है (ते) वे कल्याण अकल्याण (उभे)
 दोनों (नानार्थे) भिन्न २ प्रयोजन वाले हुए (पुरुषम्) म-
 नुष्यको (सिनीतः) कर्मफलके अनुमोदनकी वासना रूप र-
 स्त्रियोंसे बांधते हैं अर्थात् परमार्थी मनुष्य भी संसार के ब-
 न्धनोंसे छूटने रूप प्रयोजन में बद्ध रहता है (तयोः) उन
 दोनोंमें से (श्रेयः) श्रेयको (आददानस्य) ग्रहण करनेवाले
 का (साधु) अच्छा भला (भवति) होता (यः, उ) और
 जो (प्रेयः) प्रेय को (वृणीते) चाहता है वह (अर्थात्)
 नित्य सुख प्राप्ति रूप परमार्थ प्रयोजनसे (हीयते) अट हो
 जाता है ॥

भा०-- जैसे जीब आदि कहुई वस्तु प्रायः प्रिय नहीं ल-
 गती और अन्तमें उनके सेवनसे अनेक रोगों का नाश होकर
 बड़ा सुख होता है । शक्कर आदि भीठा प्रायः प्रिय होता उ-
 सके सेवनमें कल्याण होना कम सम्भव है । जैसे ही परमार्थ
 सुखका साधक तपश्चरणा आदि, संसारी विषय भोग (भीतर
 विष ऊपर दूधसे भरे चड़ेके तुल्य) से अत्यन्त बिलक्षण है ।
 उसमें जो मनुष्य जन्म पाकर मुक्ति होने के लिये प्रयत्न क-
 रता है वह कल्याणको प्राप्त होता उससे भिन्न भोगमें आसक्त
 विद्या क्रीड़ाके तुल्य मनुष्य सद्भुतिकी नहीं प्राप्तका ॥१॥

*The Good & The Pleasure and man's approach to the Good
 discriminates the wise from the foolish & the wise man
 prefers the pleasure from acquisition of the good to the pleasure from
 the Good*

**श्रेयश्च प्रयश्च मनुष्यमतस्तौ सपरीत्य
 विविनक्ति धीरः । श्रेयो हि धीराः प्रियसौ
 वृणीते प्रया मन्दा योगक्षमाद्वृणाते ॥२॥**

अ०-- (मनुष्यम्) (श्रेयः, च) (प्रयः, च)
 पूर्वोक्ते उभे अपि (एतः) प्राप्नुतः । संसारा-
 न्तर्गतत्वाद्द्वयमपि सर्वस्य समीप उपस्थितं भ-

वति तत्र साधारणो जनो नावधारयितुं शक्तः
किं श्रेयः प्रियो वास्तीति किन्तु (तौ) विषयो
(सम्परीत्य) प्राप्य संस्कृतया मनीषयाऽऽलो-
च्य (धीरः) विद्वान् (विविनक्ति) तयोस्ता-
स्तम्यं कल्याणाकल्याणकरत्वं विवेचयति ।
(धीरः) (प्रियसः) प्रियतमाच्छ्रेष्ठम् (श्रेयः,
हि) श्रेयएव (अभिवृणीते) उभयतः स्वीक-
रोति (मन्दः) मन्दमतिः (योगक्षेमात्) रक्षा
सुखे आश्रित्य (प्रियः) विषयभोगम् (वृणीते)
याचतेऽभिलषति । विषयभोगमेव प्रार्थयति ॥

भा०-संसारे कल्याणहेतुकमल्याणहेतुकं
चोभयं वर्तते केचिद्विषयाः कल्याणाभासा म-
न्दमतिभिः कल्याणत्वेनोरीक्रियन्ते तदर्थं म-
नुष्येण विदुषा भवितव्यम् । येन सदसद्विवेकः
सुलभः स्यात् । विद्वान् हि कल्याणभागभवितु-
मर्हति नेतरो मूढः । त्वया नचिकेतसा च श्रेय
एव वृत्तमतस्त्वं विवेकी । धीरत्वं विद्वत्त्वं चैत-
देव यच्छ्रेयोवरणमन्ये चाविद्यायामन्तरे व-
र्त्तमानाः स्वयंधीराः पण्डितमन्यमानाः प्रियसो
वरणान्मन्दाएवेति निश्चेतव्यम् ॥ २ ॥

भाषार्थः-(मनुष्यम्) मनुष्यको (श्रेयः) कल्याण (च)
और (प्रियः) रोचक प्रिय अकल्याण मार्ग (च) भी उक्त
दोनों (एतः) प्राप्त होते अर्थात् संसारके अन्तर्गत होनेसे दोनों

in which perish many men. S. 100 - even though they are objects of pleasure in appearance - for diseases etc. Pat. - worldly wealth is vain & soon perishes

सबकी निकट उपस्थित होते हैं उसमें साधारण मनुष्य निश्चय नहीं कर सकता कि इस में कल्याण का भाग यही है किन्तु अविद्याकी प्रतापसे अकल्याणको कल्याण मानकर चलते हैं । (धीरः) विद्वान् पुरुष (ली) उन अच्छे बुरे दोनों विषयों को (समुपरीत्य) शास्त्रसे शुद्ध हुई बुद्धिसे निश्चय कर (विवि-
नक्ति) विवेक करता है और (धीरः) विद्वान् ही (प्रेयसः) अतिप्रिय रोचक विषयसे श्रेष्ठ (श्रेयः) (हि) कल्याणकी ही (अभि, वृणीते) चाहता है तथा (मन्दः) मन्दबुद्धि मनुष्य (योगक्षेमात्) अपनी भय आदिसे रक्षा और सुखका आश्रय कर (प्रेयः) प्रियतर विषय भोगको ही (वृणीते) मांगता है ॥

भा०-संसारमें कल्याण अकल्याण दोनोंकी साधन वर्तमान हैं कोई विषय ऊपरसे देखनेमें कल्याणकारी होते किन्तु वास्तवमें नहीं उनकी मन्द बुद्धि लोग कल्याणका हेतु समझके स्वीकार करते हैं । इसलिये मनुष्यको विद्वान् होना चाहिये जिस से सत् असत्का विवेक सुगम होजावे । विद्वान् पुरुष कल्याण का भागी हो सकता है किन्तु मूर्ख नहीं । और हे नभिकेता तुने ठीक कल्याण को जानकर मांगा इस कारण तू विवेकी और अधिकारी है, धीर वा विद्वान् होने का लक्षण यही है कि जो श्रेयरूप परमार्थका आरम्भ करना स्वीकार करे । अन्य लोग बड़े पण्डित कहाने हुए भी प्रेयके स्वीकारसे अविद्यायुक्त पण्डितमन्य मन्दबुद्धि मूर्ख माने जाते हैं ॥ २ ॥

Thou, O blessed, the pleasant in appearance & desirable object -
स त्वं प्रियान् प्रियरूपाश्च कामानभि-
Thou, O blessed, the pleasant in appearance & desirable object -
ध्यायन्नचिकेतोऽत्यस्मात् नैताः सृङ्का
Thou, O blessed, the pleasant in appearance & desirable object -
वित्तमयीमवाप्ता यस्यां मज्जान्त बहवो
Thou, O blessed, the pleasant in appearance & desirable object -
मनुष्याः ॥ ३ ॥

अ०-इदानीं नचिकेतसमभिमुखीकृत्य य-
मआह-हे (नचिकेतः) (सः, त्वम्) मया बहु-
विधं प्रलोभ्यमानोऽपि (प्रियान्) पुत्रपौत्रा-
दीन् (प्रियरूपांन्) अप्सरःप्रभृतीन् (कामान्)
कामभोगान्नित्यत्वासारत्वदुःखबहुलत्वादि दो-
षदुष्टान् (अभिध्यायन्) सर्वतश्चिन्तयन् (अ-
त्यस्त्राक्षीः) त्यक्तवान् त्वम् (एताम्) (वित्त-
मयीम्) भोगैश्चर्यरूपां लोहमयमिव (सृङ्गाम्)
शृङ्गलाम् (न, अवाप्तः) (यस्याम्) (बहवः)
(मनुष्याः) (मज्जन्ति) बद्धा भवन्ति तामेतां
तावाप्त इति पूर्वणान्वयः ॥

भा०-अहो ! नचिकेतस्तत्र बुद्धिवैभवमपूर्-
वमद्भुतं त्वादृशएव वेदःन्तज्ञानाधिकारी भव-
ति योऽखिलभूगोलराज्यमपि प्राप्तं कृणीकृत्य
संसाराद्धिर्विण्णः परमार्थसाधने प्रयतेत ॥ ३ ॥

भावार्थः-अब नचिकेता की ओर जाकर तत्पर होके
यमराज कहते हैं कि हे (नचिकेतः) नचिकेता (सः, त्वम्)
मैंने बहुत प्रकारसे लुभाये हुए भी तूने (प्रियान्) पुत्र पौत्र
आदि (प्रियरूपांन्) अप्सरा अतिउन्दर स्त्री आदि (का-
मान्) अनित्य अनार और अधिक दुःख होता रूप दीर्घों से
युक्त कामभोगों की (अभिध्यायन्) सब ओरसे विचार कर
(अत्यस्त्राक्षीः) छोड़ दिया । और तू (एताम्) इस भोग से-
चर्य रूप लोह की सी (सृङ्गाम्) चोकरकी (न) (अवाप्तः)
नहीं प्राप्त हुआ अर्थात् यममें नहीं जंघ कि (यस्याम्) जिस

even so much prospect of pleasure and
 shake. (Ignorance) head to mess & how
 knowledge but reason & beauty. There is
 में (बहवः) बहुत (मनष्याः) मनष्य (मञ्जन्ति) बंध र-
 हते हैं उसमें तू न फसा किन्तु विचार पूर्वक निकल गया ॥

भा०—अहो ! नचिकेता तेरी बुद्धि के अपूर्व अद्भुत प्र-
 ताप को धन्य है तेरा जैसा ही पुरुष वेदान्त ज्ञानका अधि-
 कारी होता है जो समस्त पृथिवी के राज्य को प्राप्तिको भी
 तुलनात्र समझ कर संभार से उदासीन हो परमार्थ साधन में
 प्रयत्न करे ॥ ३ ॥

दूरमेते विपरीते विषूची अविद्या या च
 विद्या ज्ञाता। विद्यामभोप्सन्नचिकेतस
 मन्ये न त्वा कामा बहवो लोलुपन्त ॥४॥

अ०—(एते) श्रेयःप्रेयोविषये (विषूची)
 विलक्षणगती विरुद्धार्थसूचिके वा (विपरीते) प-
 रस्परं विरुद्धे दूरं महतान्तरेण वर्त्तते तेके इत्या-
 काङ्क्षायामाह (अविद्या) प्रेयोलक्षणा (या,
 च) (विद्या) श्रेयोलक्षणा (इति) एवंप्रका-
 रेण (ज्ञाता) विद्वद्विरिति शेषः । अहं (विद्या
 भोप्सिनम्) अतस्मिंस्तद्बुद्धिवर्जितां यथार्थ-
 ज्ञानलक्षणां विद्यामभोप्सयितुं शीलमस्य ता-
 दृशम् (नचिकेतसम्) त्वाम् (मन्ये) ज्ञाने ।
 यतः कारणात् (त्वा) त्वाम् (बहवः) (कामाः)
 सुखभोगाभिलोषाः (न) (लोलुपन्त) न लोभ-
 यन्ति न विषयजाले बध्नन्ति ॥

भा०—तयोः श्रेयआददानस्य साधु भवति
 हीयतेऽर्थाच्चऽप्रेयो नृणीते इति यदुक्तं तस्य हेतु

द्वयोर्दूरत्वं दर्श्यते विद्याऽविद्ययोर्गती महान्
भेदः तमः प्रकाशवत्तयोर्विरोधात् । सर्वबाधावि-
मुक्तिज्ञानं विद्या संसारस्थसुखभोगानुभवज्ञा-
नमविद्या संसारस्थसुखभोगेषु विदुष्ण एव जनो
विद्यामभीप्सति त्वया च नचिकेतसाऽविद्या-
संबद्धं प्रेयो न वृतमपितु श्रेयो वृतमतस्तव साधु
सफलं जन्मेति ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(एते) उक्त दोनों अच्छे बुरे विषय वाली (वि-
बुधी) परस्पर विरुद्ध प्रयोजन की सूचक (विपरीते) एक
दूसरी से विरक्षण रात दिनके समान विरुद्ध (दूरम्) दोनों
दूर २ नाम पृथक् २ हैं (अविद्या) संसारी विषयभोग रूप
(च) और (या) जो (विद्या) कल्याण रूप (इति) इस
प्रकार विद्वानों ने (ज्ञाता) निश्चय की है । मैं (नचिकेतसम्)
नचिकेता की (विद्याभीष्टानम्) अन्यमें अन्य बुद्धि होना
रूप मिथ्याज्ञान को छोड़ के यथार्थ ज्ञान रूप विद्याका च-
हने वाला (मयि) मानता हूँ । जिस कारण (त्वा) तुम
की (ब्रह्मः कामाः) सुख भोग की , अनिलाषा (न, लोलप-
न्त) लोभित नहीं करते विषयजाल में नहीं बांधते ॥

भा०—पहिले कह चुके हैं कि (तयोः) उन श्रेय प्रेय दो-
नोंमें से श्रेयकी स्वीकरणे वाले का भला होता और प्रेयका
स्वीकर्ता इष्ट सुख से हीन हो जाता है इसका हेतु यही है
कि इन श्रेय प्रेय दोनोंमें बड़ा भेद है सो यहाँ दिखाते हैं कि
विद्या अविद्या की गति में बड़ा भेद है प्रकाश अन्धकार के
तुल्य उनका विरोध है । सब बाधाओंसे छूटनेका ज्ञान होना
विद्या और संसारके सुख भोगके अनुभव का ज्ञान अविद्या
कहाती है । संसारस्थ सुखभोगों में दुष्णा रहित ही गनुष्य
विद्या को चाहता है और तुम नचिकेताने अविद्या संबन्धी

*by the blind. (Vain knowledge & worldly wis-
dom) + round - (43) emancipation from a
life in the house to undergo many troubles &
suffering + 10 - Shake like a broken red lamp*
 प्रेय को स्वीकार नहीं किया किन्तु प्रेय का ही स्वीकार कि-

या इस से तुम्हारा जन्म सफल है ॥ ४ ॥

*in ignorance of self, themselves, wise
sacrificing themselves as staggering for
7000 - by the blind led as blind men*
 अविद्यायान्तरं वर्त्तमानाः स्वयन्धीराः प-
 ण्डितमन्यमानाः । दन्द्रम्यमाणाः परियन्ति
 मूढा अन्धेनैव नीयमाना यथाऽन्धाः ॥ ५ ॥

अ०-विद्याभाषिणः पुरुषाद्विज्ञाः कीदृशा
 जना भवन्ति तदुच्यते (अविद्यायाम्) (अन्तः
 रे) सध्ये महत्यज्ञानान्धकारे (वर्त्तमानाः)
 (स्वयन्धीराः) वयं पण्डिताः शास्त्रज्ञा इत्या-
 रमानम् (पण्डितम्) (मन्यमानाः) (दन्द्रम्य-
 माणाः) कुटिलपथगामिनो भृशमितस्ततो घा-
 वन्तो वा (मूढाः) विक्षिप्ता अस्थिरचेतसो मो-
 हं प्राप्ताः (अन्धेनैव) अबोधोपहतचक्षुषैव
 (नीयमानाः) (यथा) (अन्धाः) गच्छन्ति
 तथा (परियन्ति) परितो गच्छन्ति ॥

भा०-यथा नौर्नावि बद्धा नेतरत्राणाय भ-
 वति तथाऽन्धद्वयमपीतरेतराश्रितमधोगतिं ल-
 भते नैव तयोरन्यतरस्त्राता भवितुमर्हति । यथा
 च पङ्कोपदिग्धौ हस्तौ पङ्केनैव न शुष्यतस्तथैव
 यः स्वयं संसारार्णवैकदेशविषयपङ्के निमग्नः स
 नान्यं पङ्कादुद्धर्तुं शक्नोऽपितु द्वावपि निमज्जतः ।
 अज्ञानान्धतमसि पुत्रपश्वादितृष्णापाशशतैर्वे-
 ष्टयमाना वयं प्रज्ञावन्तः शास्त्रकुशलाः सुखभोग-

साधनधनादिलब्धये धावमानाः कुटिलगतिं
गच्छन्ती विषमे पथ्यन्धेनान्धव नीयमाना
जरामरणरोगादिदुःखैरावृताः परियन्ति ॥ ५ ॥

भाषार्थः— विद्याभिलाषी पुरुषसे भिन्न मनुष्य कैसे होते हैं सो कहते हैं—(अविद्यायाम्) अन्यको अन्य ससम्भन्त रूप विपरीत ज्ञान स्वरूप अविद्याके (अन्तरे) बीच बड़े अज्ञानान्धकारमें (वर्तमानाः) वर्तमान (स्वयन्धीराः)—हम शास्त्र-ज्ञ विचारशील हैं इस प्रकार अपनेकी (पण्डितम्) पण्डित (मन्यमानाः) मानते हुए (दम्भस्यमाणाः) चलते मार्गमें चलने वाले वा इधर उधर शीघ्र २ भागते हुए (सूढाः) विक्षिप्त बंवल चित्त मोहमें फंसे (अन्धेन, एव) जिसकी नेत्र नष्ट होगये उसके साथ ही अज्ञानसे (नीयमानाः) चलनेवाले (यथा) जैसे (अन्धाः) नेत्र हीन अन्धे चलते हैं वैसे (परियन्ति) सब ओरसे चलते हैं ॥

भा०—जैसे नौका नौकामें बांध देनेसे एक दूसरेकी पार नहीं पहुँचा सकती वैसे दो अन्धे भी एक दूसरेकी आश्रय होकर गढ़ेमें गिरते हैं उनमें एक दूसरेकी रक्षा नहीं कर सकता और जैसे कीच में चने हुये हाथ कीच से ही शुद्ध नहीं होते वैसे जो स्वयं संसार सागरके किसी विषय रूप कीच में फंसा है वह दूसरेकी कीच रूप अविद्यासे नहीं उबार सकता किन्तु वे दोनों डूबते हैं इस लिये उनका उद्धार करने वाला तीसरा पूर्ण ज्ञानी मत्स्य कहोता चाहिये । अज्ञानान्धकारमें पुत्र पद्मादिकी तृष्णा सम्बन्धी सैकड़ों फांसोंसे बंधे हुये हम बुद्धिमान् पण्डित हैं ऐसे अभिमानमें भरे, सुखभोग के साधन धनादि प्राप्तिके लिये भागते टेढ़े चलते हुये कुमार्गमें अन्धेके पीछे अन्धेके तुल्य चलने वाले जन्म मरणादि दुःखोंसे घिरे हुये सब ओर भाग रहे हैं ॥५॥

न साम्परायः प्रतिभाति बालं प्रमाद्यन्त
वित्तमाहने मुहम् । अयं लोको नास्ति प-
रहति मानो पुनः पुनर्वशमापद्यत मे ॥६॥

अ०—(वित्तमोहेन) पुत्रपशुधनैश्वर्यादि
प्रयोजनवस्तुष्व्वासक्तमनस्त्वेन तद्वियोगशोक-
ग्रस्ताविवेकेन (मूढम्) तमसावृतम् (प्रमाद्य-
न्तम्) कल्याणाचरणे प्रमादं कुर्वन्तम् (बाल-
म्) विवेकरहितं पुरुषम् (साम्परोयः) परमा-
र्थसाधनविशेषोऽपरिग्रहेश्वरप्रणिधानतपश्चरणा-
दिः (न प्रतिभाति) स्मृतिस्थो न भवति (अ-
यम्) (लोकः) प्रत्यक्षतया दृश्यमानः रुच्यन्त-
पानैश्वर्यादिरस्ति । इतः (परः) अन्यः कश्चि-
त्परमार्थः (नास्ति) (इति) (मानी) सन्तु-
नशीलो जन्मान्तरीयपुण्यपापफलभोगेष्ववि-
श्वासेन पापासक्तत्वात् (मे) मम न्यायाधी-
शस्य यमराजस्य दण्डमाप्तुम् (वशम्) शर-
णम् (पुनःपुनः) (आपद्यते) प्राप्नोति ॥

भा०—भोगासक्तोऽविवेकी परमार्थं नैव स्मरति । धर्माधर्मौ च न विवेचयति सुखभोगानुकूलमधर्ममप्याचरति तेन न्यायाधीशयमराजन्यायालये पुनःपुनर्दण्डभाग्भवति ॥ ६ ॥

भा०-(वित्तमोहेन) हा ! मेरे पुत्र पशु धन ऐश्वर्यादि कूट नायं-

shows it taught by an able preceptor.
Just teacher - Rarest man in the society of Atmapani
is indeed wonderful. (कृ३) is the part of human possi-
ble - alone ordinary man & man having Sadha

गेऽप्रयोजनीय पदार्थोंमें मनके आसक्त होनेसे उन पुत्र धर्मादिके शोकमें यस्त हुआ कि शरीर छूटते समय सब यहीं रह जायगा वा जीवन समयमें चोर आदि ले जावेंगे तो क्या करूंगा इत्यादि अविवेक रूप (मूढम्) अन्वकारसे जिसका आत्मा टपा है उस (प्रमाद्यन्तम्) कल्याणमार्गसे प्रमाद करते हुए (वा-लम्) विवेक रहित अज्ञानी पुरुषको (साम्परायः) अपरिग्रह-लौकिक सुखभोग से उदासीनता ओंकार का जप ईश्वरका पूजन ध्यान प्रार्थना उपासना और हनुमत्सहनरूपतप करना आदि परमार्थका साधन (न, प्रतिभासि) अच्छा नहीं लगता वा उसका स्मरण नहीं होता (अयम्) प्रत्यक्ष (लोकः) दीखता हुआ स्त्री अन्न पान ऐश्वर्य आदिका भोग रूप यही लोक है । इससे (परः) अन्य कोई परमार्थ (नास्ति) नहीं है वह अज्ञानी (इति) ऐसा (मानी) मानने वाला होता है क्योंकि जन्मान्तरमें होने वाले पुण्य पापके फल भोगमें अ-विश्वास होनेसे पाप करनेमें फंसता है । और (मे) दण्ड पाने के लिये सुभ यमराज न्यायाधीशके (वशम्) शरणको (पु-नःपुनः) बार २ (आपद्यते) प्राप्त होता है ॥

भा०-भोगमें फंसा हुआ अज्ञानी परमार्थका स्मरण नहीं करता तथा धर्म अधर्म का भी विवेक नहीं करता सुख भोग के आश्रयसे अधर्म भी करता है । इससे न्यायाधीश यमराज के इजलास नाम न्याय स्थानमें बार २ दण्डभागी होता है ॥

to be heard of
even by many who are not available
even many who do not know words
Teacher eleven to receive the words
taught by the able preceptor.
**श्रवणायापि बहुभियां न लभ्यः शृण्व-
 न्तापि बहुवा यन्न विदयुः । आश्चर्यास्य
 वक्ता कुशलास्य लब्धाश्चर्या ज्ञाता कु-
 शलानुशिष्टः ॥७॥**

अ०-बालादितरो विवेकी श्रेयोर्थी कश्चि-
 देव भवतीत्याहः-यतः (बहुभिः) जनैः (यः)

परमात्मा (श्रवणाय, अपि) श्रवणार्थमपि
 (न, लभ्यः) सभासमाजादिषु यस्य व्याख्यान-
 श्रवणमपि बहवः कार्यासक्ता न लभन्ते सभा
 दिषु गताश्च (बहवः) जनाः (शृण्वन्तः, अपि)
 (यत्) ब्रह्म (न, विद्युः) न जानीयुः । आश्च-
 र्यस्वरूपत्वात्तस्य (अस्य) ब्रह्मणः (वक्ता)
 यथार्थगुणानां प्रतिपादकः (आश्चर्यः) अद्भुत
 स्वरूपोऽसंख्येषु कश्चिदेव सभासमाजादिषु श्रो-
 तृष्वपि (अस्य) (कुशलः) प्रवीणः (लब्धा)
 प्रापकः कश्चिदेव भवति । (कुशलानुशिष्टः)
 कुशलेन ब्रह्मज्ञाने प्रवीणेनाचार्येणानुशिष्ट उप-
 दिष्टः (ज्ञाता) (आश्चर्यः) कश्चिदेव जायते
 न. सर्वः ॥

भा०-मानुषे लोके ब्रह्मज्ञानी पुरुषो दुर्लभः
 कश्चिदेवानेकजन्मानुष्ठिततपश्चरणादिसिद्धो जा-
 यते स चाश्चर्यरूपः । ब्रह्मण उपदेष्टा च दुर्लभो
 महाप्रयत्नसाध्यः ॥ ७ ॥

भाषार्थः-वाशुद्वि से भिन्न मुमुक्षु विरक्त विचारशील कोई
 विद्वान् होता है सो कहते हैं-जिस कारण (बहुभिः) बहुत
 संन्यसियों (यः) जो परमात्मा (श्रवणाय, अपि) सुननेको
 भी (न, लभ्यः) नहीं सिखाता अर्थात् अपने संसारी कामोंमें
 आसक्त बहुत लोग धर्मसभा आदिमें जिसका व्याख्यान सुनने
 को भी नहीं पहुँचते । धर्मसभादिमें गये (शृण्वन्तः) (अपि)
 सुनते हुए भी (बहवः) बहुत लोग (यत्) जिस ब्रह्मको

... is not realised in the mind, & unarguable as it is trans-cendent. (44) Even though often pointed out, it is not meant by this. Because it is thoughtful & living, not inert, not a mere object, pure, simple.

(न, विद्यः) नहीं जानते क्योंकि वह आश्चर्य स्वरूप है (अस्य)

इस ब्रह्मका (वक्ता) यथार्थ रूपसे कहने वाला (आश्चर्यः)

अनंख्योंमें कोई अद्भुत स्वरूप होता तथा धर्मसभादिके श्रोता

ओंमें भी (अस्य) इस परेशका (लब्धा) प्राप्त होने वाला

कोई (कुशलः) प्रवीण होता (कुशलानुशिष्टः) ब्रह्मज्ञानमें

प्रवीण आचार्यसे उपदेशको प्राप्त (ज्ञाता) ज्ञानी (आश्चर्यः)

कोई ही होता है सब नहीं ॥

भा०-गनुष्य सृष्टिमें ब्रह्मज्ञानी पुरुष दुर्लभ है कोई ही

अनेक जन्मोंमें किये तपश्चादिसे सिद्ध होता है वह आश्चर्य

रूप है और ब्रह्मका उपदेश करने वाला भी दुर्लभ है वही

भाग्य वा प्रयत्न से मिल सकता है ॥ ३ ॥

... thought of ...
न नरेणावरण प्रोक्त एष सुविज्ञेयो ब-

... thought of ...
हुधा चिन्त्यमानः । अनन्यप्रोक्ते गतिरत्र

... thought of ...
नास्त्यणीयान् ह्यतर्क्यमणुप्रमाणात् ॥ ८ ॥

अ०-(अवरण) पारमार्थिकादितरेणैहि-

केन संसारिणा (नरेण) मनुष्येण (प्रोक्तः)

उपदिष्टः (बहुधा) बहुप्रकारं योगिभिर्विरक्तैः

(चिन्त्यमानः) विचार्यमाणः (एषः) आत्मा

(न, सुविज्ञेयः) नहि सुष्ठुनया ज्ञातुं योग्यः (अत्र)

अस्मिन्नात्मनि (अनन्यप्रोक्ते) परमार्थज्ञान-

निष्ठेनाचार्येण प्रोक्त उपदिष्टे (गतिः) जिज्ञा-

सोश्चाञ्जल्यम् (नास्ति) (अणुप्रमाणात्) अति-

सूक्ष्मात् (अणीयान्) अतिसूक्ष्मः (हि, अत-

र्क्यम्) निश्चयेन तर्कितुमयोग्यः । अत्र सुप्ति-

दुपय इति हेति लिङ्गव्यत्ययः ॥ ८ ॥

May we have our enquiries like the !

भा०-योगिनो जना यमात्मानं बहुधा चिन्तयन्ति तथापि दुःखेनोपलभन्ते स संसारिणां बुद्धिमताप्युपदेष्टुमयोग्यः । किन्तु ब्रह्मज्ञानरूपात्तेनाचार्येण कृतो ज्ञानोपदेशो जिज्ञासोर्बुद्धिस्थिरी करोति । अतिसूक्ष्मे ब्रह्मणि बुद्धिरभिनिविशते किन्तु तर्काश्रवं नावरोहति ॥८॥

भाषार्थः- (अवरेण) परमार्थो से भिन्न संसारी (नरेण) मनुष्य से (प्रोक्तः) उपदेश किया (बहुधा) बहुत प्रकार योगी विरक्तों ने जिस का चिन्तन किया है (एषः) यह आत्मा (न, सुविशेषः) सुगमता से जानने योग्य नहीं (अत्र) इस (अनन्यप्रोक्त) परमार्थज्ञाननिष्ठ आचार्य ने उपदेश किये आत्मा में (गतिः) जिज्ञासु को चंचलता (नास्ति) नहीं होती वह ब्रह्म (अणुप्रमाणात्) सूक्ष्म से भी (अणीयान्) अतिसूक्ष्म है और (हि, अतर्क्यम्) तर्क करने योग्य निश्चय कर नहीं है ॥

भा०-योगी जन जिस आत्मा का बहुधा चिन्तन करते हैं तो भी दुःख से प्राप्त होते हैं वह परमात्मा संसारी बुद्धिमान् से भी उपदेश करने योग्य नहीं किन्तु ब्रह्मज्ञानमें गोता लगाने वाले आचार्य ने किया ज्ञानोपदेश जिज्ञासु की बुद्धि को स्थिर करता है इसी से अतिसूक्ष्म ब्रह्म में बुद्धि प्रविष्ट होती है किन्तु तर्करूप छोड़े पर नहीं चढ़ती ॥८॥

नेषां तर्केण मतिरापनेया प्रोक्तान्ये-
नैव सुज्ञानाय प्रष्टुं यन्मन्वेमापः सत्यधृति-
वतोऽसि त्वाट्टेनाभयान्नाचिकेतः प्रष्टा ॥९॥

अ०—हे (नचिकेतः) (एषा) मया
 दत्ता (मतिः) बुद्धिः (न) (आ, अप-
 नेया) ईषदपि (तर्केण) नो त्याज्या न
 विनाश्या वा । हे (प्रेष्ट) प्रियतम (अन्येन,
 एव) तार्किकाद्भिन्नेनैव वेदविदाऽऽचार्येण
 (प्रोक्ता) उपदिष्टा मतिः (सुज्ञानाय)
 भवति (सत्यधृतिः) सत्या धृतिर्यस्य स
 निश्चलधैर्यः (त्वम्) (याम्) मतिम् (आपः)
 प्राप्तवान् (असि) (वत) अनुकम्पित
 आचार्यआह (नः) अस्मान् (प्रष्टा) (त्वा-
 दृक्) त्वत्सदृशोऽन्यः शिष्योऽपि (भूयात्)
 इत्याशास्महे ॥

भावार्थः—लौकिकविषयनिर्णये तर्कः सा-
 धनं भवति किन्त्वात्मादिसूक्ष्मेऽतीन्द्रिये ब्रह्म-
 निष्ठाचार्येणैवोपदेश्ये वेदैकवेद्ये विषये नहि
 तर्कः कृतकारी भवति । सर्वोपद्रवाणां शान्तिः
 सर्वसन्देहानां समाधानं ब्रह्मज्ञानस्यादिमं
 लक्ष्म यदि तत्र तर्कः प्रविशेत्तर्हि शान्तिभ-
 ङ्गश्चाञ्जल्यं च सम्भवति ब्रह्मविषयिणी सा-
 त्विकी मतिस्तर्केण नश्यति । आत्मज्ञानस-

म्बन्धेऽप्यनात्मवादिनस्तर्ककण्टकेन निवार-
णीयाः । यथा कण्टकेनाङ्कुरो रक्ष्यते पञ्चा-
दयो भक्षका निर्वायन्ते तथैवेहापि योज्यम् ॥६॥

भाषार्थः—हे (नचिकेतः) नचिकेता तुमको (एषा) यह मैं
ने दी (मतिः) बुद्धि (तर्केण) तर्क से कुछ भी (न, आ, अपनेया)
न त्यागनी वा न बिगाड़नी चाहिये । हे (प्रेष्ठ) अत्यन्त प्रिय शिष्य
(अन्येन, एव) कुतर्की से भिन्न वेदवेत्ता आचार्य ने (प्रोक्ता) उप-
देश की बुद्धि (सुज्ञानाय) उत्तम ज्ञान की उपयोगिनी होती है
(सत्यधृतिः) निश्चल सत्य धैर्य वाले (त्वम्) तुम (याम्) जिस
बुद्धि को (आपः) प्राप्त हुए हो (घत) कृपासे पूर्ण हो पुनः आचा-
र्य बोले कि (नः) हमको (प्रष्टा) पूछने वाला (त्वाङ्कू) तुम्हा-
रे समान अन्य भी कोई शिष्य (भूयात्) हो यह आशा करते हैं ॥

भा०—लौकिक अनेक विषयों के निश्चय करने में तर्क साधन हो
सकता है किन्तु ब्रह्मनिष्ठ आचार्य से ही उपदेश होने और केवल
वेदसे जानने योग्य आत्मादि सूक्ष्म अतीन्द्रिय (इन्द्रियोंसे न जानने
योग्य) विषय में तर्क से कुछ निश्चय नहीं होता । सब उपद्रवों
की शान्ति सब शंकाओं का समाधान होना ब्रह्मज्ञान का पहिला
चिन्ह है यदि वहाँ तर्क का प्रवेश हो तो शान्ति और निश्चयमें खल
बल पड़ना सम्भव है अर्थात् ब्रह्मज्ञान को विषय करने वाली सत्त्व
गुणरूप बुद्धि तर्क से नष्ट हो जाती है परन्तु आत्मज्ञान विषय में
भी अनात्मवादी जन तर्क रूप कांटे से निवारण किये जाते हैं यह
तर्क का उपयोग है । जैसे भक्षक पशु आदि को रोक कर आम
आदि के पौदों की कांटों से रक्षा की जाती है वैसे ही यहाँ
भी जानो ॥६॥

जानाम्यहं शेषधिरित्यनित्यं नह्य-
ध्रुवः प्राप्यते हि ध्रुवन्तत् । ततो मया

performed the Nachiketa's fire with the same
I have attained the eternal. (६२)

Nachiketa's father's friend's son
नाचिकेताश्रितोऽभिरनित्यैर्द्रव्यैः प्राप्तवा-
नस्मि नित्यम् ॥ १० ॥ Note this interpretation

अ०-यमआह (शेषधिः) धनैश्चयम्
(अनित्यम्) (इति) (अहम्) (जाना-
मि) (अध्रुवैः) अस्थिरैरनित्यैर्धनादिभिः
(हि) निश्चयेन (तत्) (ध्रुवम्) अचलं
नित्यं ब्रह्म (नहि) (प्राप्यते) मनुष्येणे-
तिशेषः । कर्मफलवासनारहितेन (मया)
(नाचिकेतः) यस्य विधानमिदानीं तुभ्य-
मुपदिष्टं सः (अग्निः) (चितः) तद-
ग्न्युपलक्षितो यज्ञो विहितः (ततः) सततं
वैदिकाग्निहोत्रादिकर्मानुष्ठानात् (अनित्यैः)
शरीरेन्द्रियघृतादिभिः (द्रव्यैः) साधनभूतै-
रनुष्ठितेन कर्मणा शुद्धान्तःकरणः सन् (नि-
त्यम्) मानुषराज्याद्यपेक्षया बहुकालस्था-
यित्वान्नित्यं स्वाधिकारं स्वर्गाख्यं याम्यं
स्थानम् (प्राप्तवान्) (अस्मि) ॥

भा०-ब्रह्मार्पणं ब्रह्महविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्म-
णाहुतम् । ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमा-
धिना । भगवद्गीतासु यद्यप्यनित्यैः शरीरे-

*Uchi-kel sacrifice called in the text, but it
with stone and such temptation, so Uchi-kel
from 5 years. Some idea in the work of Uchi-
insult the second self in "Hence on Uchi-*

न्द्रियघृतादिभिरात्मप्राप्तिदुर्लभा तथापि फ-
लमनाश्रित्य श्रद्धया क्रियमाणं ब्रह्मार्पितं वै-
दिकं कर्मान्तःकरणशोधनद्वारा परम्परया
ब्रह्मज्ञानहेतुकं सम्पद्यतेऽतः कर्मापि कर्त्तव्य-
मेव सापेक्षं नित्यं चिरस्थायि स्वर्गादिकं तु
कर्मणा प्राप्यतएव ॥ १० ॥

भाषार्थः—यमराज फिर बोले कि (शेषधिः) धन ऐश्वर्य (अनि-
त्यम्) सब अनित्य है (इति) यह (अहम्) मैं (जानामि) जान-
ता हूँ (अध्रुवैः) स्थिरता रहित अनित्य धनादि वस्तुओं से (हि)
निश्चय कर (तत्) वह (अध्रुवम्) अचल नित्य ब्रह्म मनुष्यको (नहि)
नहीं (प्राप्यते) प्राप्त होता । कर्मफल की वासना से रहित (मया)
मैंने (नाचिकेतः) जिस का विधान मैंने अभी तुम से कहा है वह
(अग्निः, चितः) अर्थात् उस अग्नि सम्बन्धी यज्ञ किया (ततः)
उस निरन्तर अग्निहोत्रादि वैदिक कर्म के अनुष्ठान से (अनित्यैः)
अनित्य शरीर इन्द्रिय और घृत आदि (द्रव्यैः) पदार्थों करके निर-
न्तर सिद्ध किये कर्म से शुद्धान्तःकरण हुआ (नित्यम्) मानुषरा-
ज्यादि की अपेक्षा चिरस्थायी होने से स्वर्गरूप अपने यमराज के
नित्याधिकार को (प्राप्तवान्) प्राप्त हुआ (अस्मि) हूँ ॥

भा०—भगवद्गीता में लिखा है कि चारों वेद का जानने वाला
विद्वान् वेद में कहे बहुत हविष्य पदार्थों से वैदिक आहवनीयादि
अग्नि में अग्निहोत्रादि यज्ञके फल की इच्छा छोड़ के ब्रह्म को अर्पण
करता है वह ईश्वराज्ञा रूप वेदोक्त कर्म में तत्पर रहने से अन्त में
ब्रह्म को ही प्राप्त हो जाता है अर्थात् मुक्त हो जाता है । यद्यपि
अनित्य शरीर इन्द्रियादि से आत्मज्ञान होना दुर्लभ हैं तो भी फल को
छोड़ के श्रद्धा पूर्वक ब्रह्मार्पित किया वैदिक कर्म अन्तःकरण की
शुद्धि द्वारा परम्परा से ब्रह्मज्ञान का कारण होता है इसीलिये कर्म

भी अवश्य करना चाहिये चिरस्थायी होने से सापेक्ष नित्य स्वर्गादि फल तो कर्म से प्राप्त होता ही है ॥ १० ॥

कामस्याप्ति जगतः प्रतिष्ठां क्रतोर-
नन्त्यमभयस्य पारम् । स्तोममहदुरुगाय
प्रतिष्ठां दृष्ट्वा धृत्या धीरो नचिकेतास्त्य-
स्वाक्षीः ॥ ११ ॥

अन्वयः—हे (नचिकेतः) (धीरः)
ध्यानशीलस्त्वम् (धृत्या) धैर्येण (दृष्ट्वा)
ज्ञानचक्षुषा शुभाशुभमालोच्य विवेकं कृत्वा
(कामस्य) कामभोगस्य (आप्तिम्) प्रा-
प्तिम् (जगतः) जङ्गमस्य प्राणिमात्रस्य (प्र-
तिष्ठाम्) स्थितिं कामभोगात्स्त्रीपुरुषसंयो-
गादेव सर्वः प्राण्युत्पद्यते (क्रतोः) राज-
सूयाश्वमेधादियज्ञस्य (अनन्त्यम्) भूमेरन्ते
भवमन्त्यं नान्त्यमनन्त्यमखण्डं भूगोलरा-
ज्यम् । किम्भूतम् (अभयस्य) निर्भयतायाः
(पारम्) लेशमात्रमपि यत्र कस्यचिद्भयं
नास्त्येवंभूतं चक्रवर्त्तिराज्यम् (स्तोममहत)
स्तोतुं योग्यां महत्त्वं सर्वमान्यताम् (उरु-
गायम्) बहुभिर्गानं स्वकीर्त्तनम् (प्रति-

ष्ठाम्) (अत्यसाक्षीः) इत्येतत्पूर्वोक्तं सर्व-
मत्यन्तं त्यक्तवान् ॥

भा०—परमार्थसुखप्राप्तिहेतोर्नचिकेतसा
विवेकिना प्राणिनामुत्पत्तिस्थित्योः कारणं
स्त्रीसम्बन्धः साम्राज्यप्राप्त्या राजसूयादिय-
ज्ञानुष्ठानेन सर्वोपरिकीर्त्तिर्निर्भयतादिप्राप्ति-
रनेकैः क्रियमाणं स्तुत्यादिकं चैतत्सर्वं परि-
णामे दुःखमेवेत्यालोच्य त्यक्तमतो नचिकेताः
सर्वतोधिकतरं मतिमानित्याशयः ॥ ११ ॥

भाषार्थः—हे (नचिकेतः) नचिकेता (धीरः) ध्यान शील तुम
ने (कामस्य) कामदेव के स्त्री सम्बन्धी सुख भोग की (जगतः)
मनुष्यादि प्राणियों की (प्रतिष्ठाम्) स्थिति का कारण (स्त्री
पुरुष के संयोग से ही सब प्राणियों की उत्पत्ति स्थिति होती है)
रूप (आप्तिम्) प्राप्ति (अमयस्य) निर्भयता की (पारम्) परा
काष्ठा जहां किंचित् भी भय नहीं ऐसे (कृतोः) राजसूय अश्वमेध
आदि यज्ञ के सम्बन्ध से प्रसिद्ध (अनन्त्यम्) अखण्ड चक्रवर्त्ती
राज्य (स्तोममहत्) स्तुति करने योग्य महिमा (उरुगायम्) बहुत
मनुष्यादि जिस कीर्त्ति का गान करते इस और (प्रतिष्ठाम्)
प्रतिष्ठा प्राप्ति इत्यादि सब संसारी विषय को (धृत्या) धैर्य के
साथ (दृष्ट्वा) ज्ञानरूपी नेत्रों से परिणाम में दुःखदायी देख कर
सत् असत्का विवेक करके असत् को (अत्यसाक्षीः) त्याग दिया ॥

भा०—परमार्थ सुख प्राप्ति के कारण विवेक शील नचिकेता ने
प्राणियों की उत्पत्ति स्थिति का कारण स्त्री का सम्बन्ध, चक्रवर्त्ती
राज्य पाकर राजसूयादि यज्ञों के अनुष्ठान से सर्वोपरि कीर्त्ति वा

ment, seated in the heart & residing within
dy. (६६)

निर्मयतादि की प्राप्ति और अनेक मनुष्यों से होने वाली स्तुति
आदि इस सब को परिणाम में दुःखदायी सम्पन्न के त्याग दिया
इस कारण नविकेता सर्वोपरि बुद्धिमान् था ॥ ११ ॥

तन्दुदश गूढमनुप्रविष्टं गुहाहित ग-
ह्वरेष्ठम्पुराणम् । अध्यात्मयोगाधिगमेन दे-
वम्भत्वा धीरो हर्षशोकौ जहाति ॥ १२ ॥

अ०—(धीरः) ध्यानशीला विद्वान्
(अध्यात्मयोगाधिगमेन) ज्ञानेन्द्रियाणि
विषयेभ्यः सन्निरुधयान्तःकरणे चित्तस्य स्थितेः
सम्पादनमध्यात्मयोगस्तस्याधिगमेन (तम्)
श्रवणायापि बहुभिर्यो न लभ्यइत्यादिना
पूर्वतः प्रतिपाद्यमानम् (देवम्) द्योतनशी-
लमात्मानम् (भत्वा) ज्ञात्वा (हर्षशोकौ)
इष्टानिष्टोपलब्धी सुखदुःखे (जहाति) त्य-
जति । समुद्रइव गम्भीरस्तिष्ठति । किंभूतं
देवम् (दुर्दर्शम्) अतिसूक्ष्मत्वाद् दुःखेन
द्रष्टुं ज्ञातुं योग्यम् (गूढम्) गुप्तमप्रसिद्ध-
मतीन्द्रियत्वात् [अनुप्रविष्टम्] मानुषादि-
सर्गानन्तरं तत्र तत्र जीवात्मरूपेण प्रविष्टम्
[गुहाहितम्] गुहायां बुद्धौ स्थितं तत्रोपल-
भ्यमानत्वात् [गह्वरेष्ठम्] गह्वरे दुर्गमे प्र-

देशे तिष्ठतीति काठिन्येनापलभ्यमानत्वात्
[पुराणम्] पुरातनं सनातनं देवमिति
पूर्वेणान्वयः ॥

भा०—अदृश्यं सर्वत्र व्याप्तं ध्यानयो-
गेनास्मिन्नेव कलेवरे दुर्गे प्रदेशे योगिभिरु-
पलभ्यमानं सनातनं ज्ञानप्रकाशात्मकमा-
त्मानं ज्ञात्वा धैर्यसम्पन्नो विद्वान् सुखदुःखे
परित्यजति । सुखं लौकिकं दुःखसहयोग्येव
जहाति न चार्त्तमनि भवम् । आगमापायिनी
सुखदुःखे इतरेतरं कार्यकारणभावं संपद्यमाने
जहातीति भावः ॥ १२ ॥

साधार्थः—(धीरः) ध्यान करने वाला विद्वान् (अध्या-
त्मयोगाधिगमेन) कान आदि ज्ञानेन्द्रियों को शब्द-आदि
विषयों से रोक कर अन्तःकरण में चित्त को स्थिर करने रूप
अध्यात्मयोग की प्राप्ति से (तम्) उस पूर्वोक्त (दुर्दशम्)
दुःख से जानने योग्य (गूढम्) इन्द्रियों से न जानने योग्य
होने से गुप्त (अनुप्रविष्टम्) मनुष्यादि की सृष्टि रचकर
पश्चात् उस में प्रविष्ट हुआ (गुहाहितम्) बुद्धि में स्थिर,
बुद्धि में वही जाना जाता है इससे वैसा कहा (गूह्यरेष्ठम्)
अति कठिन [जहां बुद्धि का पहुँचना दुस्तर है ऐसी] दशा
में स्थित कठिनता से जाना जाता है इससे वैसा कहा है
(पुराणम्) सनातन (देवम्) ज्ञान प्रकाश शील आत्मा को
जान कर (दर्शयिष्ये) इष्ट अनिष्ट की प्राप्ति में सुखदुःखों

भोदितुं हर्षितुं योग्यं प्रसादनीयम् (लब्ध्वा)
 (हि) एव (भोदते) नान्यथेत्यर्थः त्वं तु ब्रह्माप्तुं
 योग्योऽतस्त्वाम् (नचिकेतसम्) (विवृतम्)
 ब्रह्मज्ञानायोनमुखमपावृतद्वारम् (सदम्)
 अवसन्नं दृढस्थितिकम् (मन्ये) ॥

भा०-यो मनुष्यो यथोक्तया श्रवणमन-
 ननिदिध्यासनप्रक्रियया सर्वधर्मनियन्तारं
 स्वनियमादनपेतं परमात्मानं प्राप्तुं प्रयतते
 स एवानन्दैकसागरं तं प्राप्यैव सुखी भवति ।
 नास्ति ततोऽन्यः कश्चिदानन्दमयस्तस्मात्तमेव
 प्राप्तवानन्दमयो भवितुमर्हति । अतदुर्माणं
 प्राप्य तदुर्मा स्यादिति च न्यायविरुद्धम् । त्वं
 नचिकेता आनन्दमयो भवितुं योग्यः ॥१३॥

भाषार्थः—(मर्त्यः) मनुष्य (एतत्) इस [आगे जिसका
 वर्णन करेंगे] ब्रह्म को (श्रुत्वा) आचार्य के उपदेश से कान
 द्वारा सुन के मन द्वारा आत्मभाव से (सम्परिशुद्ध) स्वीकार
 कर वा ज्ञान के (धर्म्यम्) नियम पूर्वक ही अर्थात् अपने
 नियम से कभी चलायमान न होकर जगत् की उत्पत्ति आदि
 अपने कर्मोंको करने वाले परमात्मा को (प्रवृत्त) देह और
 इन्द्रियादि से पृथक् मानकर इस उक्त प्रकार (एतम्, अशुम्)
 इस सूक्ष्म आत्माको (आप्य) प्राप्त होके (सः) वह मनुष्य
 (भोदनीयम्) प्रसन्न करने योग्य परमात्मा को (लब्ध्वा)
 प्राप्त होके (हि) ही (भोदते) आनन्दित होता है अन्यथा

नहीं । तुम ब्रह्म को प्राप्त होने योग्य हो इस से तुम (नचिकेतसम्) नचिकेता को (विवृतम्) ब्रह्मज्ञान के लिये खुला है द्वार जिसका अर्थात् ब्रह्म प्राप्ति में कुछ भी रुकावट नहीं ऐसा (सद्म) दृढ़ स्थितिवाला घर (सन्धे) मानता हूँ ॥

भा०-जो ननुष्य यथोक्त अवयव मनन निदिध्यासन क्रम से सब धर्मों के नियन्ता अपने नियम से अचल परमात्माको प्राप्त होने का प्रयत्न करता है वही आनन्द के एक समुद्र को प्राप्त होके ही खुशी होता है क्योंकि उससे भिन्न अन्य कोई आनन्दमय नहीं है इस से उसी को प्राप्त होके ननुष्य आनन्दित होता है जो उस गुणवाला न हो उसको पाके वह गुण मिले यह न्याय से विरुद्ध है तू नचिकेता आनन्दित होने योग्य है ॥ १३ ॥

अन्यत्र धर्मादन्यत्राधर्मादन्यत्रास्मात्कृताकृतात् । अन्यत्र भूतच्च भव्याच्च यत्तत्पश्यसि तद्वद ॥ १४ ॥

अ०-एतद् वचः श्रुत्वा नचिकेताः पुनराह-यद्यहं योग्यः प्रसन्नश्च भवांस्तदा (यत्) (धर्मात्) इतिकर्तव्यतारूपाद्वैदिकादनुष्ठेयात्तत्फलात्साधनेभ्यश्च (अन्यत्र) पृथग्भूतम् (अधर्मात्) अकर्त्तव्याद्दुःखफलात् (अन्यत्र) (अस्मात्) प्रत्यक्षात् (कृताकृतात्) कृतं कार्यमकृतं कारणं तयोःसमाहारस्तस्मात्स्थूलसूक्ष्मरूपात्संसारत् (अन्यत्र)

(भूतात्) अतीतात् (च) (भव्यात्) अना-
गतात् (च) चद्वयेन सापेक्षवर्त्तमानात् (अ-
न्यत्र) कालत्रयेणापरिच्छिन्नम् (पश्यसि)
जानासि (तत्) सर्वेन्द्रियविषयातीतं वस्तु (वद) ॥

भा०-शुभाशुभफलैर्धर्माधर्मैर्यो न निब-
ध्यतेऽविद्यादिक्लेशैस्तद्विपाकैश्च न परामृश्यते
स्थूलसूक्ष्मचराचरजगता च न लिप्यते योऽ-
तीतानागतभावाभावः सर्वदैकरसआत्मादि-
क्कालाद्यनवच्छिन्नो भवता देवेन ज्ञातोऽस्ति
स मह्यमप्युपदेश्यइति भावः ॥ १४ ॥

भाषार्थः—इस बचन को सुनकर नचिकेता फिर बोला
कि यदि मैं योग्य हूँ और आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो (यत्)
जिसको (धर्मात्) ऐसा करना वा न करना चाहिये इत्यादि
प्रकार के वैदिक धर्म उसके फल और साधनों से (अन्यत्र)
पृथक् (अधर्मात्) दुःख फल वाले अकर्त्तव्य से (अन्यत्र)
पृथक् (अस्मात्) इस (कृताकृतात्) स्थूल सूक्ष्म रूप कार्य
कारण प्रत्यक्ष संसार से (अन्यत्र) पृथक् (भूतात्) भूत
(भव्यात्) भविष्यत् (च, च) और इन दोनों की अपेक्षा
रखने वाले वर्त्तमान इन तीनों कालकी गतियों से (अन्यत्र)
तीनों कालसे अपरिच्छिन्न पृथक् (पश्यसि) देखते वा जानते
हैं (तत्) उस सब इन्द्रियों के विषयसे भिन्न वस्तुको (वद)
कहिये ॥

भा०—शुभ अशुभ फल वाले धर्म अधर्म से जो बन्धन में
नहीं आता अविद्यादि क्लेश कर्म और उनके फलों से जिस

The life of Krishna Charya - I tell in brief - it is 927m

which is established through the performance of all duties - which is the Brahman in phonetic symbol of 8-12.

का. संग नहीं होता स्थूल सूक्ष्म चराचर जगत्से जो लिप्त नहीं होता भूत भविष्यत् वत्त मान भाव से पृथक् सर्वदा एकरस

दिशा और कालादि से जिसका अवच्छेद नहीं होता ऐसे

आत्मा को आप देव ने जाना है ब्रह्मा उपदेश मेरे लिये

मेरी कीजिये ॥ १४ ॥ (15-17)

सर्व वेदा यत्पदमामनन्ति तपांसि

संवाणि च यद्वदन्ति । यदिच्छन्तो ब्रह्म-

चर्य्य चरन्ति तत्त पदं सङ्ग्रहणं ब्रवी-

म्यामित्यतः ॥ १५ ॥

अ०-इदानीं यमराज आत्मोपदेशप्रति-

ज्ञानमाह (यत्) (ओम्) (इति) (पदम्)

सुश्रुतं ब्रह्मणोवाचकं शब्दरूपम्, पदं पद-

नीयं प्राप्यं वाच्यं ब्रह्म च (सर्व) ऋगा-

दिनाम्ना प्रसिद्धाश्चत्वारः (वेदाः) (आमन-

न्ति) मुहुर्मुहुः कथयन्ति वेदेषु ब्रह्मण एव वि-

शेषतो वर्णनमस्तीत्यर्थः (संवाणि, तपांसि)

(च) (यत्) ओमिति पदम् [वदन्ति] तप-

श्चरणमपि ब्रह्मप्राप्त्यर्थमिति विद्वांस आहुः

[यत्] ओमिति पदम् (इच्छन्तः) वि-

द्वांसः (ब्रह्मचर्य्यम्) पूर्वाश्रमनियमान् (च-

रन्ति) अनुतिष्ठन्ति (तत्, एतत्) (पदम्)

वाच्यवाचकत्वाभ्यामभिन्नम् (ते) तुभ्यं

नचिकेतसे (संग्रहेण) संक्षेपेण (ब्रवीमि)
कथयामीति ॥

भा०-वेदेषु कुत्रचित्साक्षात्कुत्रचित्पर-
म्परया च परब्रह्मणएव प्रतिपादनमस्ति ब्र-
ह्मचर्यवानप्रस्थसंन्यासाश्रमेषु वेदाध्ययनतप-
श्चरणयोगाभ्यासानुष्ठानादिनियमा विद्वद्भि-
र्ब्रह्मप्राप्त्यर्थाएव सेव्यन्ते तस्य ब्रह्मणओमि-
तिवाचकं प्रतीकं तादात्म्यसंबन्धेन स्वरूपं
च वदन्ति । अनेनैव नाम्ना प्रतीकोपासन-
रीत्या योगिभिर्नित्यमुपासितव्य इत्यर्थः ॥१५॥

भाषार्थः—अब यमराज आत्मज्ञान के उपदेश की प्रति-
ज्ञा करते हैं कि (यत्) जिस (ओम्, इति, पदम्) ओम् इस
वाचक शब्द रूप सुबन्त पद वा प्राप्त होने योग्य वाक्य
ब्रह्म की (सर्वे) सब (वेदाः) ऋग्वेदादि चारोंवेद (आम-
नन्ति) कहते अर्थात् सब वेदों में विशेष कर ब्रह्म का ही
वर्णन है (सर्वाणि) सब (तपांसि) तपोनुष्ठान (च) भी
(यत्) जिस ब्रह्म की प्राप्ति के लिये किये जाते हैं ऐसा
(वदन्ति) विद्वान् लोग कहते हैं (यत्) जिस ओम् पद वाक्य
ब्रह्म की (इच्छन्तः) इच्छा करते हुए विद्वान् (ब्रह्मचर्यम्)
ब्रह्मचर्य आश्रम के नियमों का (चरन्ति) अनुष्ठान सेवन
करते हैं (तत् एतत्, पदम्) उस इस वाक्य वाचक रूप एक
ओम्पद को मैं (ते) तुम नचिकेता के लिये (संग्रहेण)
संक्षेप से (ब्रवीमि) कहता हूँ ॥

भा०-वेदों में कहीं साक्षात् और कहीं परम्परा से एक
ब्रह्म का ही प्रतिपादन है । ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और संन्यास

in our desire (one gets that)

आश्रमों में वेद का पढ़ना, तप करना और योगाभ्यास आदि नियमों को विद्वान् लोग ब्रह्मज्ञान होने के लिये ही सेवन करते हैं। उस ब्रह्म का ओम् यह वाचक, प्रतीक वा तादात्म्य सम्बन्ध से स्वरूप है ऐसा कहते हैं इसी नाम से प्रतीकोपासना की रीति से योगियों को नित्य उपासना करनी चाहिये ॥ १५ ॥

एतदध्यवाक्षरं ब्रह्म एतद्व्याक्षरं परम् । एतदध्यवाक्षरं ज्ञात्वा या यदिच्छति तस्य तत् ॥ १६ ॥

अ०—(एतत्) प्रत्यक्षमेव (हि, एव) अवधारणवाचकपदद्वयेनान्यस्य प्रतिषेधः (अक्षरम्) (ब्रह्म) अपरं सगुणं ब्रह्मा (एतत्, एव, अक्षरम्) (परम्) निर्गुणं परं प्रकृष्टं सर्वोपाधिशून्यम् । तयोर्हि प्रतीकरूपम् (एतत् हि एव) (अक्षरम्) वाच्यवाचकैकरूपम् (ज्ञात्वा) (यः) पुरुषः [यत्] सांसारिकं पारमार्थिकं वा सुखम् [इच्छति] [तस्य] [तत्] सुखसद्योऽवश्यं प्राप्तं भवति ॥

भा०—परमिति कथनादपरं प्रतीयते । सगुणनिर्गुणद्वयोरप्युपासने ओमिति प्रतीकोपासनमेव सर्वविधमिष्टसाधकम् । एतदे-

in our desire (one gets that)

वाक्षरमुपास्यं ब्रह्मेति ज्ञात्वा यो यदिच्छति
तस्य तदेव सुलभम् ॥ १६ ॥

भाषार्थः—(एतत्) प्रत्यक्ष ओम् (हि, एव) ही (अक्ष-
रम्) [यहां हि, एव ये दो निश्चय वाचक पद कहनेसे ओंश्म्
से भिन्न ब्रह्म नहीं इसका निषेध किया है] (ब्रह्म) अपर
नाम सगुण ब्रह्म है (एतत् , एव, अक्षरम् , परम्) यही
ओंश्म् अक्षर पर नाम सर्व उपाधियों से रहित निर्गुण शुद्ध
ब्रह्म है इन ही अपर और पर दोनों ब्रह्म की प्रतीक रूप
(एतत् , हि, एव) (अक्षरम्) इस वाक्य वाचक एक रूप
अक्षर को (ज्ञात्वा) जान के (यः) जो पुरुष (यत्) जिस
संसार वा परमार्थ उम्बन्धी सुख की (इच्छति) चाहता है
(तस्य, तत्) उसको वह सुख शीघ्र ही अवश्य प्राप्त
होता है ॥

भा०—यहां पर ब्रह्म कहने से पहिले वाक्य में अर्था-
पत्ति से अपर ब्रह्म सिद्ध होता है। सगुण निर्गुण दोनों की
उपासना में ओम्—इस प्रतीक की उपासना ही मुख्य अभीष्ट
साधक है। यही शब्दात्मक ओम् अक्षर उपास्य ब्रह्म है
ऐसा जान के जो पुरुष जिस कामना को सिद्ध करना चाहता
है उसको वही सुलभ है ॥ १६ ॥

This is the best support
the supreme knowledge
This support know it
worshipped
एतदालम्बनं श्रेष्ठमतदालम्बनं पु-
रम् । एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोक-
महीयते ॥ १७ ॥

अ०—ब्रह्मज्ञानालम्बनेषु (एतत्) पूर्वोक्तप्र-
कारकमुपासनरूपम् (आलम्बनम्) (श्रेष्ठम्)

अत्यन्तं प्रशस्यम् (एतत्) (आलम्बनम्)
 (परम्) परमार्थसुखसाधकम् (एतत्) (आल-
 म्बनम्) इतरेतराध्यासेनोक्तप्रकारकमुपासनम्
 (ज्ञात्वा) (ब्रह्मलोके) ब्रह्मैव लोको लो-
 क्यो दर्शनीयो ज्ञातव्य इति ब्रह्मलोकस्तस्मिन्
 (महीयते) उपासनादिसंस्कृतवासनाभिः शा-
 न्तरूपः सुखी निरुपद्रवः पूजितः सत्कृतो
 भवति ॥

भा०—कर्मापासनाज्ञानानामवान्तरभेदभि-
 ज्ञान्यनेकानि ब्रह्मज्ञानस्य साधनान्यालम्ब-
 नानि सन्ति तेषु ओमिति नाम्ना शब्दार्थप्रत्य-
 यानामितरेतराध्यासेनोमिति प्रतीकेन तद्वा-
 क्यस्य चोपासनं सर्वोत्तमं परमार्थसाधकमस्ति
 तत्तत्त्वतो विज्ञाय विद्वान् मुक्तो भवितुमर्हति
 ॥ १७ ॥

भाषार्थः—ब्रह्मज्ञान के साधनों में (एतत्) यह पूर्वोक्त
 प्रकार की उपासना रूप (आलम्बनम्) साधन (श्रेष्ठम्)
 अत्यन्त प्रशस्त और (एतत्) यही (आलम्बनम्) साधन
 (परम्) परमार्थ सुख का सिद्ध करने वाला है (एतत्, आ-
 लम्बनम्) इस उक्त उपासना से ब्रह्म को (ज्ञात्वा) जानके
 (ब्रह्मलोके) जानने योग्य व्यापक ब्रह्म के बीच (महीयते)
 सब व्याधाओं से छूट कर शान्ति रूप सुख से पूजित होता है

भा०—कर्म उपासन और ज्ञानों के भीतरी भेदों सहित

*everlasting, ancient one suffers
frustration, even (99) the body being*

ब्रह्मज्ञान के अनेक साधन हैं उन में ओम्स् नाम से पूर्वोक्त प्रकार अध्याय के साथ उपासना करनी वा ओम्स् इस प्रतीक द्वारा उसके वाच्य ब्रह्म की उपासना करनी सर्वोत्तम और परमार्थ को सिद्ध करने वाली है। उस उपासना से तत्त्वज्ञान होकर ही विद्वान् पुण्य मुक्तिका अधिकारी हो सकता है॥१७॥

is not known, not destroyed, the knowledge, the
न जायते म्रियते वा विपश्चिन्नाय
travelling, did not come into being, nothing is known, unknown, eternal
कुतश्चिन्नं बभूव कश्चित् । अज्ञा नित्यः
everlasting, the account is not destroyed, began
शाश्वताज्यम्पराणां न हन्यते हन्यमाने
the body
शरीरे ॥ १८ ॥

अन्वयः—येयं प्रेते विचिकित्सा मनुष्ये-
ऽस्तीत्येकइत्यात्मज्ञानं वरो नचिकेतसा या-
चित्। पुनश्च यमेन ब्रह्मात्मनि प्रतिपाद्यमाने
नचिकेतसा सुखदुःखानित्यत्वादिधर्मवर्जितं
ब्रह्मात्मानं पृष्टेन यमेन त्रिभिर्मन्त्रैर्ब्रह्मणः
परमपरं च—ओमित्यालम्बनं सर्वधोत्तमं नि-
रूपितमधुना परमात्मनः स्वरूपं विशेषेण
निरूप्यते ॥

(अयम्) (विपश्चित्) मेधावी ज्ञा-
नस्वरूपः सर्वज्ञो वा, शरीरउत्पद्यमाने (न,
जायते) नात्पद्यते (वा) नकारसमुच्चयार्थः
(म्रियते) शरीरे म्रियमाणे न म्रियते (कुत-

श्चित्) कस्मादपि कारणादुपादानात् (न, व-
भूव) नोत्पन्नः । अस्माच्चात्मन उपादानात्
(कश्चित्) पुत्रादिः संसारो वा न वभूव अ-
तोऽयमात्मा (अजः) अजन्मा प्रादुर्भाववर्जितः
(नित्यः) परिणामविकारादिरहितः (शाश्वतः)
सनातनः (पुराणः) इदानीमिव पुरापि नवो-
ऽप्राप्तजीर्णावस्थः शरीरस्थोऽपि (शरीरे) (ह-
न्यमाने) (न, हन्यते)

भा०-उत्पत्तिधर्मकं सर्वमनित्यमिति त-
स्यानेके विकारास्तेषामाद्यन्ते जन्ममरणे वि-
कारावात्मनि प्रतिषिध्यते शरीरादिस्थोऽपि
सर्वविधविकाररहित आत्मेत्याशयः ॥

भाषार्थः—तृतीय वर सांगते सत्य नचिकेता ने कहा
था कि मनुष्यके मरने पर कोई आत्मा शेष रहता है वा नहीं ?
आत्मज्ञान वर सांगाथा तिस पर यमराजने ब्रह्मका प्रतिपादन
किया तब नचिकेता ने कुछ दुःखादि से विशेष कर पृथक्
निर्गुण ब्रह्म को पूछा तब यमराज ने तीन मन्त्रों से ब्रह्म का
पर अपर दोनों प्रकारका ३० यह सर्वोत्तम आलम्बन निरूपण
किया अब परमात्मा का स्वरूप विशेष कर कहते हैं ॥

(अयम्) यह (विषयित्) ज्ञानस्वरूप वा सर्वज्ञ आत्मा
ब्रह्म शरीर के उत्पन्न होने पर (न, जायते) उत्पन्न नहीं
होता (वा) और (म्रियते) शरीर के मरने प्राण छूटने से
नहीं मरता (कुतश्चित्) किसी उपादान कारणसे (न, वभूव)
उत्पन्न नहीं हुआ और इस उपादान आत्मा से (कश्चित्)

कोई पुत्रादि वा संसार नहीं उत्पन्न होता इस कारण अयम्) यह आत्मा (अजः) अजन्मा है (नित्यः) परिणाम में जैसे दूध से दही होता वैसे बदलना वा विकार घटना बढ़ना इस का नहीं होता (शाश्वतः) सनातन (पुराणः) अब के तुल्य पहिले की सदा नवीन एक रस है । शरीर में रहने पर भी (शरीरे) शरीर के (हन्यमाने) नष्ट होने पर भी (न, हन्यते) नष्ट नहीं होता ॥

भा०—उत्पन्न होने वाले सभी वस्तु अनित्य होते उनमें अनेक विकार होते हैं । उन विकारोंमें से आत्मामें आदि अन्त के जन्म मरण रूप दो विकारोंका निषेध करते हैं । शरीरादि में जीव रूपसे रहता हुआ भी आत्मा सब प्रकार के विकारों से रहित है ॥

He killed it. It thinks that he has killed it. It kills. It thinks it kills. Both these do not hurt. Kill this. Kill. This is killed.
हन्ता च न मन्यते हन्तुं हतश्च न मन्यते
हतम् । उभौ तौ न विजानीता नायश्च-
हन्ति न हन्यते ॥ १९ ॥

अ०—(हन्ता) शरीरमात्र आत्मदृष्टिर्जनः (चेत्) यदि (हन्तुम्) अस्मानं ताडयितुं नाशयितुं वाहं शक्त इति (मन्यते) (हतः) ताडितः प्राणभृत् (चेत्) यदि (हतम्) हतोहमिति विनष्टमात्मानम् (मन्यते) (तौ, उभौ) स्वमात्मानम् (न, विजानीतः) यतः (अयम्) आत्मा कंचिदपि (न, हन्ति) अविकारित्वाद् हननस्य कर्ता न भवति (न,

हन्यते) अच्छेद्यत्वादिधर्मवत्त्वाद्युपनयनस्य क-
र्मापि न भवति ॥

भा०-देहात्मवादान्तरेण नेदं वक्तुं श-
क्यते यदहं कस्यापि हन्ता केनापि हतो वा
देहात्माहङ्कारिणाय व्यवहारः प्रवर्तते आ-
त्मज्ञाने च सत्यहङ्कारनिवृत्तौ कस्यापि ह-
ननमपि न संभवति ॥

भाषार्थः-(हन्ता) शरीर नाशको आत्मा जानने वाला पु-
रुष (चेत्) यदि (हन्तुम्) कि मैं आत्माको नार सकता हूँ ऐसा
(नन्यते) जानता है और (हतः) लाइन किया गया प्राणी
(चेत्) यदि (हतम्) आत्मा नाम मैं लाइना को वा वि-
नाश को प्राप्त हुआ ऐसा (नन्यते) जानता है । तो (तौ-
वभौ) वे दोनों नारने वाले अपने आत्मा के तत्त्व स्वरूप
को (न, विजानीतः) नहीं जानते क्योंकि जिस कारण (अयम्)
यह आत्मा किसी को अविकारी होने से (न, हन्ति) नहीं
मारता और (न, हन्यते) अच्छेद्य अमेद्य आदि गुण युक्त
होने से न किसी से नष्ट जाता है *quest 20-21*

भा०-शरीरको आत्मा जानने रूप देहात्मवादके बिना कोई
नहीं कह सकता कि मैं किसी का मारने वाला वा किसी से
मारे जाने वाला हूँ देहात्मवादके कारण यह व्यवहार होता
है । और आत्मज्ञान होने पर अहंकार की निवृत्ति होने से
किसी का हनन नहीं हो सकता ॥

I have the
of the heart
अणोरणीयान्महता महीयानात्मास्य
जन्तानिहिता गुहायाम् । तमेकतुः प-

Atman
श्यति वीतशोको धातुप्रसादान्महिमानमा-
त्मनः ॥ २० ॥

अन्वयः—शरीरस्यैव परमात्मा (अणीः)
सूक्ष्मादपि (अणीयान्) अत्यन्तसूक्ष्मो सर्वसू-
क्ष्माकारः (महतः) आकाशपृथिव्यादिरूपः
(महीयान्) अणुमहत्सर्वनामरूपवस्तूपाधिकः
एवंभूतः (आत्मा) (अस्य, जन्तोः) चै-
तन्यविशिष्टस्य शरीरस्य मध्ये (गुहायाम्)
हृदयैकदेशे (निहितः) जीवरूपेण स्थितः
(तम्) एवं भूतं परमात्मानम् (अक्रतुः)
लौकिकफलाकाङ्क्षया कर्माण्यकुर्वन्, इत्थं
कृत्वेमं भोगं प्राप्स्यामीत्यादितृष्णया वियुक्तः
शान्तो विषयेष्वलिप्तः कृतप्रत्यगात्मदुष्टिर-
तएव (वीतशोकः) विगतशोकः प्राणी वि-
जानाति (धातुप्रसादात्) धातोः सर्वविष-
यधारिकाया बुद्धेः प्रसादात् शुद्धत्वात् । रा-
गद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन् । आ-
त्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति ॥ २०
गी० (आत्मनः) (महिमानम्) महत्त्वं स-
र्वमयत्वम् (पश्यति) संस्कृतया मनीषया
विजानातीत्यर्थः ॥

भा०—यथा घटादिस्थ आकाश एव स-
हदल्पसर्वोपाधिमानस्ति न त्वणूपाधिर्महोपा-
धिर्वाऽऽकाशो घटाकाशादुभियते तद्वच्छरीर-
स्थ एवेश्वरः सर्वोपाधिकोऽस्ति। एवंभूतमात्मानं
यः शान्तलौकिककर्मा सर्वेन्द्रियाणि विजित्य
प्रज्ञाप्रसादमारुह्य ध्यायति स परमोत्तमसुख-
भाक् च भवति ॥ २० ॥

भाषार्थः—यह जीवरूप से शरीर में स्थित ही ब्रह्म
(अणोः) सूक्ष्म से भी (अणीयान्) सूक्ष्म है (महतः) आ-
काश पृथ्वी आदि बड़े पदार्थों के रूपोंवाला (महोयान्)
छोटी बड़ी सब नामरूप उपाधियों वाला ऐसा (आत्मा) प-
रमेश्वर (अत्य, जन्तोः) इस चेतन शरीर के बीच (गुहाया-
म्) हृदय के एक प्रान्त में (निहितः) जीवरूप से स्थित है
(तम्) ऐसे परब्रह्म को (अक्रतुः) लौकिक फल भोग की
आशा से कर्म न करता हुआ अर्थात् इस कर्म को कर के इस
भोग को प्राप्त होऊँगा इत्यादि प्रकार की वृष्णा से वियुक्त
शान्तिशील विषयों में न लिस हुआ भीतर की दृष्टि रखने
वाला इसी से (वीतशोकः) शोक रहित विद्वान् पुरुष जा-
नता है (घातुप्रसादात्) सब विषयों की धारण करने वाली
बुद्धि के (शुद्ध) प्रसन्न होने से (आत्मनः) आत्माके (अहि-
मानम्) सर्व रूप होने को (पश्यति) जानता है। भगवद्-
गीता में लिखा है कि रागद्वेष रहित इन्द्रियों से जब विषयों
का सेवन करता है तब सनुष्य के इन्द्रिय वशमें होने से बुद्धि
प्रसन्न हो जाती है ॥

भा०—जैसे घटादि में जो आकाश है वही छोटे बड़े सब पदार्थों में वैसा २ छोटा बड़ा दीखता है किन्तु बड़े के छेद का वा बड़े घर का आकाश घटाकाश से भिन्न नहीं है, वैसे शरीरस्थ चैतन्यात्मक ईश्वर ही सब छोटे बड़े वस्तुओं में सर्वरूप हो रहा है । इस प्रकार के परमेश्वर का लौकिक कर्म जिस के शान्त हो गये वह पुरुष सब इन्द्रियों को जीत और बुद्धि की प्रसन्नता रूप महल पर चढ़ के ध्यान करता और सर्वोत्तम सुख का भागी होता है ॥ २० ॥

Sitting far froms Lying down
who
Capable
 आसीना दूरं व्रजति शयानो याति
 सर्वतः । कस्तं मदामदन्देवं मदन्या ज्ञातु-
 मर्हति ॥ २१ ॥

अ०--इदानीं यमः परेशस्य दुर्ज्ञेयत्वमाह
 य आत्मा (आसीनः) शरीरोपाधिनैकत्रो-
 पविष्टोऽपि (दूरम्) मानसोपाधिः सन् दूरं
 दूरतरंवा (व्रजति) गच्छति यश्च (शयानः)
 तमोऽभिभूतेऽन्तःकरणे विषयेभ्य इन्द्रियाणां
 विराभावसरे स्वप्ने मानसोपाधिरात्मा (स-
 र्वतः) सर्वप्रदेशे (याति) शरीरेऽवस्थितोपि
 मानसव्यापारेण संस्कारवशाद्वातीवेति ल-
 क्ष्यते (तम्) (देवम्) चैतन्यद्युतिमन्तम्
 (मदामदम्) इष्टानिष्टोपलब्धौ हर्षाहर्षकरं
 सहर्षमहर्षं च परस्परविरुद्धधर्मिणम् (म-

दन्यः) मोदुशसूक्ष्मप्रज्ञादन्यः (कः) ज्ञातु-
मर्हति । मत्सदृशः कश्चिदेव ज्ञातुं शक्त इ-
त्यर्थः । यदि यमादन्यो ज्ञातुमशक्तः स्या-
त्तर्हि नचिकेतस उपदेशस्यानर्थक्यप्रसंगः ।
अतो मामनन्यज्ञातारं मत्वा श्रद्धया मदुपदेशं
नचिकेताः शृणुयादिति यमाशयः ॥

भा०—य उपविशति नासौ दूरं गच्छति,
यश्चैकत्र शेते न स सर्वत्र भ्रमति । शरीरस्थ
एक एवात्मा कुत्राप्यासीनोऽपि दूरं गच्छति
शयानोऽपि सर्वत्र याति प्रसन्नोऽप्रसन्नश्च दृश्य-
ते । एवं परस्परविरुद्धधर्मकं सूक्ष्मविशुद्धमति-
रेव कश्चिद्विद्वानेव वेदितुं शक्नोति न सर्वः ॥२१॥

भावार्थः—अब यमराज आत्मतत्त्व का दुर्ज्ञेय होना कहते
हैं (आसीनः) शरीर रूप उपाधि के साथ एकत्र बैठा हुआ
भी (दूरम्) मन रूप उपाधि के साथ दूर वा अत्यन्त दूर
तक (भ्रमति) चला जाता है । और जो (शयानः) विषयों
से इन्द्रियोंका विराग तथा तमोगुण से अन्तःकरणके आच्छा-
दित होने समयमें शरीर से लेटा हुआ स्वप्न में मन उपाधि
वाला आत्मा (सर्वत्र) सब प्रदेशों में (याति) प्राप्त होता
है शरीर में स्थित भी मानस व्यापार से बाहर जाता जैसा
प्रतीत होता है (तस्) उस (देवम्) चेतना रूप प्रकाश
से युक्त (सदानन्दम्) इष्ट अनिष्टकी प्राप्तिमें सुख भोग मानने
वाले हर्ष शोक युक्त परस्पर विरुद्ध धर्मों वाले आत्मा (सदन्यः)

मुक्त से भिन्न (कः) कौन (ज्ञातुमर्हति) जान सकता है ? अर्थात् मेरे मुख्य सूक्ष्म बुद्धि वाला कोई ही जान सकता है । यदि यमराज से भिन्न कोई न जान सकता तो नचिकेता को लिये उपदेश करना भी व्यर्थ था । इससे मुक्तको मुख्य ज्ञाता मानकर नचिकेता अर्द्धा पूर्वक मेरे उपदेशको सुने यह यमराज का अभिप्राय है ॥

भा०—जो कही बैठा है वह दूर नहीं जा सकता तथा जो लोटा सोता है वह सर्वत्र भ्रमण नहीं कर सकता । परन्तु शरीरस्थ एक ही आत्मा कहीं बैठा हुआ भी दूर जाता, लोटा हुआ भी सर्वत्र भ्रमण करता हर्ष शोक वाला भी दीखता है ऐसे विद्वद् धर्म वाले आत्माको सूक्ष्म तथा शुद्ध बुद्धि वाला कोई विद्वान् ही यथावत् जान सकता है, सब कोई नहीं जान सकता ॥ २१ ॥

Body is the supreme instrument for attaining the Absolute knowing the world
 अशरीरं शरीरेष्वनवस्थेष्ववस्थितम् ।
 महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरो न शोचति ॥ २२ ॥

अ०—तद्विज्ञानाच्छोकहानं दर्शयति-
 (अनवस्थेषु) अवस्थितिरहितेषु देवमनु-
 ष्यपशवादीनाम् (शरीरेषु) हिंस्यमानेषु
 प्राणिनिकायेषु (अशरीरम्) लिङ्गादिशरी-
 रधर्मवर्जितमेव (अवस्थितम्) अचलमेकरसं
 नित्यमविकृतम् (महान्तम्) महत्परिमा-
 णविशिष्टम् (विभुम्) व्यापकम् (आत्मा-

नम्) परमात्मानम् (मत्वा) (धीरः)
मनीषी विद्वान् (न, शोचति) शोकाकुलो
न भवति ॥

भा०—परमात्माऽनित्येषूत्पत्तिविनाश-
वत्सु शरीरेषु तिष्ठन्नपि तद्वध्वंसे न ध्वंस्यते
यद्यपि परमात्मा सर्वस्मिन् जगति व्यापकत्वे-
नावस्थितस्तथापि चेतनाधिष्ठिते शरीरे प्रा-
प्यते दर्पणे मुखच्छायेवेति कृत्वा शरीरेष्व-
वस्थित इत्युच्यते मनुष्यस्तद्व्यापकं ब्रह्म
विदित्वैव श्रेयः प्राप्नुमर्हति नान्यथा अर्थाद्यो
जानाति शरीरावस्थितोऽप्यहमात्मा शरीरं
नास्मिन् ज्ञाशे नाहं नश्यामि वास्तवपर-
स्वरूपेणाहं विभुर्महानखण्डोऽस्मि जरामरणा-
दिरहितो नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावोऽस्मि स
हर्षशोकी जहाति ॥ २२ ॥

भाषार्थः—अब इस मन्त्र में परब्रह्म को जाननेसे शोक
का छूटना दिखाते हैं (अनवस्थेषु) जिन की स्थिरता नहीं
ऐसे देव मनुष्य पशु आदि प्राणियों के (शरीरेषु) नाशवान्
शरीरों में (अशरीरम्) लिङ्ग शरीरादि के धर्म से वर्जित
(अवस्थितम्) अचल एक रस अविकारी रहता है उस
(महान्तम्) सबसे बड़े अनन्त (विभुम्) व्यापक (आत्मा-
नम्) परमात्मा को (मत्वा) जानकर (धीरः) पण्डित
विद्वान् पुरुष (न, शोचति) शोक नहीं करता ॥

reveals its universal form.

भा०—परमात्मा उत्पत्ति त्रिताश धर्मेवाले अनित्य शरीरों में स्थित हुआ भी उन शरीरों के नाश होने में आप नष्ट नहीं होता। यद्यपि परमात्मा व्यापक होने से सब जगत् में अवस्थित है तो भी शुद्धान्तःकरण सनुष्यके चेतन शरीरों में ही प्राप्त हो सकता है जैसे दर्पण में मुख की छाया दीखती और सर्वत्र वैसी शुद्धि न होने से नहीं दीखती ऐसे ही जब अन्तःकरण ठीक शुद्ध हो जाता है तभी उस में परमात्मा का स्वरूप भासित होता है जड़ पदार्थों में कभी ईश्वर प्राप्त नहीं होता इस कारण शरीरों में अवस्थित है ऐसा कहा। सनुष्य उस व्यापक ब्रह्म को जान के ही कल्याण पा सकता है अन्यथा नहीं अर्थात् जो जान लेता है कि शरीर में रहता हुआ भी मैं आत्मा शरीर नहीं हूँ, इसी कारण शरीर के नष्ट होने पर मैं नष्ट नहीं हूँगा क्योंकि वास्तविक परमात्मरूप से मैं विभु महान् अखण्ड जरा मरण रहित अनित्य शुद्ध बुद्धि ~~अव्यय भाव हूँ वह हर्ष शोक छोड़ देता~~ है ॥ २२ ॥

नायमात्मा प्रवचनन लभ्यो न मेधया
न बहुना श्रतेन । यमवेष वृणुते तेन लभ्य-
स्तस्येष आत्मा वृणुते तनूँ स्वाम् ॥ २३ ॥

अ०—(अयम्) (आत्मा) (प्रवच-
नेन) अध्यापनेनापदेशेन वा (न) (लभ्यः)
(न, मेधया) न शास्त्रार्थधारणावत्या बुद्ध्या
(न) न च (बहुना श्रतेन) बहूनां शास्त्राणां
पठनेन श्रवणेन लभ्यः कथन्तर्हि लभ्यस्तदाह

(एषः) मनुष्यः (यस्मैत्र) स्वमात्मानमेष
मनसा वाचा कर्मणाऽनन्यचेताः (वृणुते)
स्वीकरोति प्रार्थयति स्तौत्युपास्ते नान्यं कंचि-
दुपास्यबुद्ध्या मनुते (तेन) मनुष्येण (लभ्यः)
(एषः, आत्मा) (तस्य) तस्मै चतुर्थर्थे
षष्ठी (स्वात्म) (तनूम्) स्वस्य यथार्थं रूपम्
(वृणुते) प्रकाशयति ज्ञापयति ॥ २३ ॥

वेदादिशास्त्रेषु प्रवीणाः स्मृतिमन्तो
वेदानामध्यापने तदाश्रयोपदेशे वा कुशला
बहुश्रुताश्च लोकएव प्रतिष्ठिता भवन्ति । नहि
वेदशास्त्रादीनां ज्ञानमात्रं ब्रह्मप्राप्तिहेतु भवि-
तुमर्हति किन्तु शास्त्राण्यधीत्य तल्लेखानुसार-
मनन्यचेता यदा ब्रह्मात्मानमुपास्ते तदाऽयं
प्राण्यात्मज्ञानजन्यसुखभागभवति । ब्रह्म च
प्रसन्नं सत्तस्मै स्वस्वरूपं प्रकाशयति अर्थाद्वि-
दान्ताभिप्रायं जानन् स्वयमेकान्तिकेन मननेन
स्वयमेव स्वस्य वास्तवं स्वरूपं जानाति ॥ २३ ॥

भाषार्थः—(अयम्) यह (आत्मा) परमेश्वर (प्रवच-
नेन) पढ़ाने वा उपदेश करने की शक्तिसे (न, लभ्यः) प्राप्त
हीने योग्य नहीं (न, मेधया) शास्त्र के सिद्धान्त की धारणा
करने वाली बुद्धिसे नहीं प्राप्त होता और (बहुना, श्रुतेन)

बहुत शास्त्रोंके पढ़ने वा बहुत से शास्त्रादि सम्बन्धी उपदेश सुनने से भी (न) नहीं प्राप्त होता । तो कैसे प्राप्त होता है सोभी कहते हैं (एषः) यह मनुष्य (यमेव) जिस कारण परमात्मा की ही मनु वचन कर्म से एकचित्त हो के (वृणुते) स्तुति प्रार्थना करता सब समय उसी का विचार वा ध्यान करता है एक से भिन्न अन्य किसी की उपास्य नहीं मानता (तेन) उस मनुष्य से (लभ्यः) प्राप्त होने योग्य है (एषः) (आत्मा) यह परमात्मा (तस्य) उस मनुष्य के लिये (स्वाम्) अपने (तनूम्) यथार्थ स्वरूप की प्रकाशित कर देता अर्थात् जता देता है ॥

भा०—वेदादि शास्त्रों में प्रवीण स्मरण रखने वाले वेदों के पढ़ाने वा उन के अभिप्राय का उपदेश करनेमें कुशल और बहुश्रुत लोग संसार में ही प्रतिष्ठित होते हैं वेद शास्त्रों के जानने मात्र से ब्रह्मज्ञान नहीं हो सकता किन्तु शास्त्रों की पढ़ के उन में लिखे अनुसार अनन्य चित्त होके जब ब्रह्म की उपासना करता है तब यह प्राणी आत्मज्ञान से होने वाले दुख का भागी होता और प्रसन्न हुआ ब्रह्म भी उस के लिये अपने स्वरूप का प्रकाश कर देता है अर्थात् वेदान्त के आशय को जानता हुआ स्वयं केवल मनन वा विचार से आप ही अपने असली आत्मस्वरूप को जान लेता है ॥ २३ ॥

नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो नासमाहितः । नाशान्तमानसो वापि प्रज्ञानमनमाप्नुयात् ॥ २४ ॥

अ०—(दुश्चरितात्) वेदस्मृतिषु प्रतिषिद्धाचचार्यान्तमायादिपापकर्मणः (अविरतः)

नोपरतो नविरक्तः पुरुषः (एनम्) परमा-
 त्मानम् (न) प्राप्नोति (न) (अशान्तः)
 विषयभोगासक्तमनाश्चञ्चलचेताः (न) (अस-
 माहितः) समाधानवर्जितः संशयात्मा विक्षिप्त-
 चित्तो वा (वा) क्रियासमुच्चये (न) (अशा-
 न्तमानसः) बाह्येन्द्रियशैथिल्येनैकाग्रचि-
 त्तोऽपि कर्मफलासक्तमनाः (अपि) प्राप्नु-
 मर्हति कथन्तर्हि (प्रज्ञानेन) सर्वविषयवासनासु
 दुःखदर्शनेन कृतपरवैराग्याभ्यासेन मोक्षज्ञा-
 नेनात्मानम् (आप्रुयात्) प्राप्नुमर्हति ॥

भा०—मनुष्यः शास्त्राण्यधीत्यान्वेभ्यश्च
 ब्रह्मोपदेशं श्रुत्वापि यावद्दुराचाराद् व्यभि-
 चारचौर्यादिकर्मणो न विरक्तो भवति यावच्च
 विषयभोगवासनारज्जुषु बद्धान्तःकरणो न
 तावत्परमात्मानं प्राप्नुं योग्यो भवति किन्तु
 “शय्यासनस्थोऽथ पथि ब्रजन् वा स्वस्थः प-
 रिक्षीणत्रितर्कजालः । संसारबीजक्षयमीक्षमा-
 णः स्यान्नित्यमुक्तोऽमृतभोगभागी ।” इति-
 योगभाष्यधृतव्यासवचनमनुसृत्य प्रतिक्षण-
 तत्रज्ञानचित्तेन विदुषा प्राप्नुं शक्यः स्वरू-
 पावस्थितिरेवात्र प्राप्तिः ॥ २४ ॥

भाषार्थः—जो पुरुष (दुश्चरितात्) वेद वा धर्म शास्त्रों में निषेध किये चोरी मिथ्या भाषण और छल कपटादि पाप कर्म से (न, अविरतः) विरक्त नहीं हुआ वह (एनम्) इस परमात्मा को (न) नहीं प्राप्त होता (अशान्तः) इन्द्रियों के लम्पट होने से जिस का मन विषयभोग में आसक्त है वह बंचलचित्त (न) नहीं प्राप्त होता (असमाहितः) जिस को किसी गुरु वा शास्त्र पर पूरा विश्वास नहीं सब में संशय है वा जो विद्विष है वह भी (न) नहीं प्राप्त होता (वा) और (अशान्तमानसः) बाह्य इन्द्रियों की शिथिलता से एकाग्रचित्त होने पर भी कर्मोंके फल वा धनादि की लुब्धतामें जिस का मन फंसा है वह (अपि) भी (न) नहीं प्राप्त होसकता तो कैसे प्राप्त हो सकता है—(प्रज्ञानेन) सब विषय की वासनाओं में दुःख दृष्टि करके पर वैराग्य के अभ्यास रूप मोक्षके ज्ञान से परमात्मा को (आप्नुयात्) प्राप्त हो सकता है ॥

भा०—मनुष्य सब शास्त्रों को पढ़के और अन्य विद्वानों से ब्रह्मज्ञान का उपदेश सुन के भी जब तक दयभिचार चोरी मिथ्या भाषणादि दुष्ट कर्म से विरक्त नहीं होता और जब तक विषय भोग की वासना रूप रस्सियों से उस का अन्तःकरण बंधा है तब तक परमात्मा को वह नहीं प्राप्त होसकता किन्तु शय्या पर लेटा आसन पर बैठा और मार्ग में चलता हुआ सब चेष्टा करता हुआ भी सब समय कुतर्क छोड़ स्वस्थ चित्त संसार से कूटने का ध्यान करता हुआ नित्य मुक्त और ईश्वर सम्बन्धी सुख का भागी होता है इस योग भाष्य में लिखे व्यास जी के वचन के अनुसार प्रतिपक्ष तर्कज्ञान में चित्त रखने वाला विद्वान् प्राप्त हो सकता है अपने स्वरूप में अवस्थिति ही आत्मप्राप्ति है ॥ २४ ॥

^{whose the Brahman's Krishna's lotus leaf} यस्य ब्रह्म च क्षत्रं च उभे भवतः
^{food} ओदनम् । ^{leaf whose Condiment} मृत्युयस्यापसेचनं ^{which this} क इत्या
^{in the water etc} वेद यत्र सः ॥ २५ ॥

अ०—(यस्य) परमात्मनः (ब्रह्म)
ब्राह्मणः (च) अपि (क्षत्रम्) राजन्य (च)
अपि (उभे) द्वावपि (ओदनम्) प्रलयाव-
सरे भक्ष्ये उदरेन्नमिवान्तर्गते लीने (भवतः)
(यस्य) (उपसेचनम्) ओदनस्योपरि घृत-
मिव (मृत्युः) भवति (सः) परमात्मा (यत्र)
यस्यां दशायां यादृशोवाऽस्ति (इत्या) इत्थ-
मेवं भूतएवेति (कः वेद) सर्वदुःख परित्यक्तः
सुखैकरूपो जीवन्मुक्त एव जानाति यद्वा को-
वेद रूपादिगुणरहितत्वादेवं प्रकारकएवास्तोति
न कोपि जानाति ॥

भा०—ब्रह्मक्षत्रशब्दावुपलक्षणार्थाविभौ ।
ब्रह्मक्षत्रधर्मयोर्याथातथ्येन प्रचारे सर्वप्रजानां
शान्तिः सुखं च जायते । इमावेव पूर्वौ वर्णौ
सर्वव्यवहारसुखहेतू स्तः । यदा तावपि यस्य
भक्ष्यौ भवतः । यश्च मृत्युः सर्वप्राणहारको
जीवनाशकः सर्वभारकः सोऽपि ब्रह्मक्षत्रादि-

*up, he living a elegant life
purpose. How can the ignorant with all play
commissioners know of that the man is a
unity, where there are all distractions & c*

भक्ष्येण साकमुपासितो यस्य भक्ष्यो भवति ^{in whose com}
तर्हीतरस्य साधारणस्य, वैश्यादेः प्राणनः को ^{death does}

कथा ? । अर्थात्सर्वं ब्रह्मक्षत्रादि जगद्व्यत्र
लीयते यो मृत्योरपि मारकस्तं कश्चिदेव मुमुक्षुः
सर्वदुःखविमुक्तो याथातथ्येन जानाति ॥२५॥

इति द्वितीया वल्ली समाप्ता ॥

भाषार्थः—(यस्य) जिस परमात्माके (ब्रह्म) ब्राह्मण
(च) तथा (क्षत्रम्) क्षत्रिय (च) भी (उभे) दोनों (ओ-
दनम्) पेट में भाक्ष्यान्न के तुल्य प्रलय समय लीन (भवतः)
होते हैं । (यस्य) जिसका (उपसेचनम्) भात पर घी के तुल्य
ब्राह्मणादि के साध (सृत्युः) सृत्यु भी भक्ष्य हो जाता है (सिः)
वह परमात्मा (यत्र) जिस दशा में वा जैसा है (इत्या)
इसी प्रकार का है ऐसा (कःवेद) सब दुःखों से पृथक् सुख-
स्वरूप एकजीवन्मुक्त पुरुष ही जानता है । अथवा (कःवेद)
रूपादि गुण से रहित होने से ऐसा ही है यह कोई नहीं
जानता ।

भा०—इस मन्त्र में ब्रह्मक्षत्र दोनों शब्द उपलक्षणाये
हैं । ब्राह्मण और क्षत्रिय धर्म के यथावत् प्रचार होने से ही
सब प्रजा में शान्ति और सुख होता है ये ही पहिले दोनों
ब्राह्मण क्षत्रिय वर्ण सब व्यवहार सम्बन्धी सुखके हेतु हैं जब
वे दोनों भी जिसके भक्ष्य होते हैं और जो सृत्यु सब को ना-
रने वाला सब के जीवन का नाशक है वह भी ब्राह्मणादि
जगत् के प्रलय में जिस का भक्ष्य होता है तो इतर साधारण
वैश्यादि की क्या कथा है ! अर्थात् ब्राह्मण क्षत्रियादि सब
जगत् जिस में लीन होता जो सृत्यु को भी मरने वाला है

वत्तथां तद्विवेचनाय रथकल्पनां वक्ष्यति
रथरूपकद्वारा प्राप्यप्रापकविवेकार्थमात्मद्व-
यमुपन्यस्यते । (परमे) श्रेष्ठे (पराह्णे) बाह्या-
वकाशापेक्षया पर ब्रह्मणः प्राप्तिहेतुत्वादहं
मृद्वियुक्तं तस्मिन्हृदयाकाशे (गुहाम्) गुहायां
सुद्धौ गुप्तप्रदेशे (प्रविष्टौ) स्थितौ (स्वकृतस्य)
एकेन स्वकर्मणा प्राप्तिमितरेण तत्कर्मानुसृ-
त्यस्वकर्मणा प्रापितमिति द्वयोः कर्मणः स-
म्पन्ने (लोके) लोके दर्शनीये शरीरे (ऋतम्)
अवश्यंभावित्वात् सत्यं कर्मफलम् (पिबन्तौ)
सेवमानौ भुञ्जानौ वा जीवात्सपरमात्मानौ
(ब्रह्मविदः) तत्त्वज्ञाविरक्ताः (छायातपी)
अज्ञत्त्वसर्वज्ञत्वाभ्यां तमःप्रकाशाविव विल-
क्षणौ (वदन्ति) (ये, च) (त्रिणाचिकेताः)

individual & the Supreme soul is described
between light & shadow. You sleep & it unappears
in real & the other is only a shadow. Or, the sin
is in their lower nature, pure is in the
higher.

त्रिःकृत्यो न्याचिकेनोऽग्निश्चिनो यैस्ते (पञ्चाग्नयः) ८

आहवनीयगार्हपत्यदक्षिणाग्निसभ्यावसध्याः
पञ्चाग्नयो येषां ते गृहस्था अपि शुद्धिदा-
भासरूपौ वदन्ति-।

भावार्थः-यद्यपि परमेश्वरो वस्तुतः कर्त्ता
भोक्ता नास्ति तथाप्ययस्कान्तवत्सन्निधिमा-
त्रेण कर्त्तृत्वं मत्प्रोक्तम् । यथाऽऽतपोऽविच्छिन्नः
स्वच्छो व्याप्तः प्रकाशात्मकस्तथैव परेशोऽ-
प्यविच्छिन्नः शुद्धो ज्ञानात्मकश्चास्ति । प्रका-
शस्यावरणमात्रं छाया नतु वस्त्वन्तरमेवं
सूक्ष्मस्थूलशरीरेणाज्ञानात्मकमावरणमेवात्र
छायापदवाच्यो जीवो नतु वस्त्वन्तरमतएव
देहात्मवादाद्यज्ञाननिवृत्तावेकात्मतापत्तिरेवे-
श्वरप्राप्तिरिति तत्त्वज्ञा वदन्ति मन्यन्ते च ॥१॥

भावार्थः-गत द्वितीय बल्लीमें बिरुद्ध फल वाली विद्या
अविद्याका वर्णन कर चुके हैं उन दोनोंके विवेचनार्थ रथकल्पना
आगे कहेंगे उस रथ रूपक द्वारा प्राप्यप्रापक भेद दिखाने के
लिये दो आत्मा का वर्णन किया है-(परमे) सर्वोत्तम (प-
राह्णं) ब्रह्मप्राप्ति का हेतु होने से शोभा शान्ति युक्त बाहरके
अवकाशकी अपेक्षा पर हृदयकाश में (गुहाम्) गुप्तस्थलबुद्धि
में (प्रविष्टौ) स्थित (स्वकृतस्य) जीवात्माने अपने कर्म से
प्राप्त किये और परमात्मा ने जीवके कर्मानुसार अपने कर्मसे
प्राप्त कराये इस प्रकार दोनों के कर्म से सिद्ध हुए (लोके)

is the bridge - which takes the sacrifice out of the mortal heaven of Brahman. (E) beyond this world of mortal life.

दृष्टिगोचर होने वाले शरीर में (ऋतम्) अवश्य भोगा जाने वाला होने से सत्य कर्मफल का (पिबन्तौ) सेवन वा भोग करते हुए जीवात्मा और परमात्मा (ज्ञायातपौ) ज्ञाया और धाम के तुल्य अर्थात् अन्धकार प्रकाश के तुल्य अल्पज्ञ सर्वज्ञ भेदसे विलक्षण हैं ऐसा (ब्रह्मविदः) ब्रह्मवेत्ता तत्त्व-ज्ञानी विरक्त विद्वान् लोग (वदन्ति) कहने वा कहते आये हैं (च) और (ये जो (त्रिणाशिकेताः) तीन बार जिन्होंने ने नाशिकेत नामक अग्नि का चयन यज्ञ किया (पञ्चाग्नयः) आहवनीय, गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि, सभ्य और आवसथ्य इन पांच अग्नियों में अग्निहोत्र दर्शपौर्णमासादि यज्ञ करने वाले गृहस्थ लोगभी शुद्ध ब्रह्म तथा चिदाभासको धाम तथा ज्ञाया के तुल्य कहते हैं ।

भा०—यद्यपि परमेश्वर वस्तुतः कुछ भी कर्ता भोगता नहीं तथापि चन्द्रकके समीप होने मात्रसे कर्ता मानकर कार्य फल भोगता कहा है जैसे घास स्वच्छ प्रकाशात्मक तथा अपरिच्छिन्न व्याप्त है वैसे परमेश्वर भी ज्ञान प्रकाशात्मक शुद्ध अपरिच्छिन्न है । प्रकाशका आवरणमात्र छाया होती है वस्तुवन्तर नहीं, वैसेही स्थूल सूक्ष्म शरीर के साथ अज्ञानरूप आवरणही छाया स्थानी जीव है किन्तु वस्तुवन्तर जीव नहीं है । इसीसे देहात्मवादवादि अज्ञान के निवृत्त होने पर एकात्मता होनाही ईश्वर प्राप्ति कहाँती है ऐसा तत्त्वज्ञानी लोग कहते मानते हैं ॥ १ ॥

यः सतुरजिनानामक्षरं बन्धु यत्प-
रम् । अभयं तृतीषताम्पारं नाचिकेत्य-
शकेमहि ॥ २ ॥

अ०—(यः) अवरात्मा (ईजानानाम्) यज्ञशीलानां विधियज्ञं ज्ञानयज्ञं योगयज्ञं वानुतिष्ठतां प्राणिनाम् । लिटः कानच् । (सेतुः) पुलङ्वास्ति (नाचिकेतम्) नचिकेतसे यमेन प्रोक्तो नाचिकेतोऽग्निस्तमग्न्याद्यात्मकं कर्मिणां दुःखात्तारकं वयम् (शकेमहि) ज्ञातुम् । (यत्) यच्च दुःखात् (पारम्) (तृतीर्षताम्) तर्तुमिच्छतां विदुषाम् (अभयम्) नास्ति भयमस्मिन्नस्य वा तत् (अक्षरम्) अविनश्वरम् (परम्) प्रकृष्टम् (ब्रह्म) अस्ति तद्वयं ज्ञातुं शकेमहि ॥

भा०—यथाजलाशयस्यावारापारगमनाय सेतुर्भवति तथैव सांसारिकदुःखेभ्यः पारं तर्तुमिच्छद्भिर्जनैरिन्द्रियाणि वशीकृत्य स्वात्मानुकूलं यागादिकं कर्तव्यम् । यः कामक्रोधलोभमोहादिवशान्नाग आत्मविरुद्धमाचरति न स जगति कल्याणभागभवितुमर्हति । आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरित्युक्तत्वात् । सर्वदुःखदलनार्थं च परमात्मज्ञानाद्योद्योगः कार्यः । ऐहिकपारमार्थिकसुखसाधनायेन्द्रियवशीकर-

णपूर्वकं जीवात्मपरमात्मनेज्ञानसम्बन्धि
सामर्थ्यं सदा सर्वैर्वर्तुनोयम् ॥ २ ॥

भाषार्थः—(यः) जो (ईजानानाम्) विधियुक्त अग्निहो-
त्रादि का ज्ञानयुक्त का वा योगयुक्तका सेवन करने वाले प्रा-
णियों का (सुतुः) पुत्र के समान है उस (नाचिकेतम्) यम-
राजने नाचिकेता के लिये कहा अग्नि नाचिकेत कहाता उस
अग्नि आदि देवात्मक कर्मनिष्ठ मनुष्योंको दुःखसे पार करने
स्वर्ग पहुंचाने वाले आत्मा को हमलोग (शक्येनहि) जान-
सकें और (यम्) जो दुःखसे (पारम्) पार (तृतीयताम्)
पहुंचने की इच्छा वाले विद्वानों का प्रिय (अभयम्) निर्भय
(अजरम्) अविनाशी (परम्) सर्वोत्तम (ब्रह्म) ब्रह्म है उस
को हमलोग जानें वा जान सकने का सामर्थ्य धारण करें ॥

भा०—जैसे नदी आदि जलाशय के पार जाने को पुल
बनाया जाता है वैसे ही संसारी दुःखोंसे पार होनेकी इच्छा
करते हुए पुरुषों को उचित है कि इन्द्रियों को वश में करके
अपने आत्मा के अनुकूल वेदोक्त यज्ञादिका सेवन करें । जो
काम क्रोध लोभ मोहादि के वशीभूत हुआ आत्मा से विरुद्ध
आचरण करता है वह संसारमें कल्याणभागी नहीं होसकता
क्योंकि आत्माका वन्धु आत्माही है यह भगवद्गीतामें कहा
है । और सब दुःखों का नाश होनेके लिये परमात्माके ज्ञान
का उद्योग करना चाहिये । संसारके वा परमार्थके कुछ सिद्धि
के लिये इन्द्रियोंको वशमें करके जीवात्मा परमात्माके ज्ञान
सम्बन्धी सामर्थ्य को सदा बढ़ाना चाहिये ॥ २ ॥

आत्मानं यश्च विद्धि शरीरं रथमव-
तु । बुद्धिन्तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रह-
मव च ॥ ३ ॥

अ०-इदानीं सोपाधिकस्य विद्याऽविद्ययो-
रधिकृतस्य देहिना मोक्षगमनाय संसारगम-
नाय च ससाधनं शरीरं रथत्वेन कल्पयति--हे
नचिकेतस्त्वम् (आत्मानम्) जीवात्मानम्
(रथिनम्) रथस्वामिनम् । रथोऽस्यास्तोति
स्वस्वामिसम्बन्धे मतुवर्थइतिः॥(विद्धि) जानीहि
(शरीरम्) (एव) (तु) (रथम्) विद्धि (बुद्धिम्) अध्य-
वसायलक्षणमन्तःकरणवृत्तिम् (तु) (सारथिम्)
(विद्धि) (मनः) सङ्कल्पविकल्पात्मकम्
(एव च) (प्रग्रहम्) नियन्त्रीं रशनाम् ॥

भा०--यथा लोकेऽश्वैरथ आकृष्यत एवं
शरीरमिन्द्रियैर्विषयेष्वाकृष्यते । सारथिनारश-
नावट्टैरश्वैरथो नीयते तथैव मनोजुष्टैरिन्द्रि-
यैर्बुद्ध्या शरीरं नीयते व्यवहारे चालयते ॥३॥

भाषार्थः—अब विद्या अविद्याका अधिकारी सोपाधिक
शरीररथ आत्माके मोक्ष और संसार सागरके लिये गमन करने
के अर्थ इन्द्रियादि साधनों सहित शरीर को रथ रूप से वर्ण-
न करते हैं--हे नचिकेतः तुम (आत्मानम्) जीवात्मा को
(रथिनम्) रथ का स्वामी (विद्धि) जानो (तु) और
(शरीरम्) शरीर को (एव) ही (रथम्) रथ जानो (तु)
और (बुद्धिम्) निश्चयात्मक अन्तःकरणकी वृत्ति रूप बुद्धिको
(सारथिम्) रथका चलाने वा घोड़ों रूप इन्द्रियोंका हांकने

बाला (विद्धि) जानी (च) और (मनः) संकल्प विकल्प करने वाले मन को (एव) ही (अग्रहम्) लगानकी रस्सी जानी ॥

भा०—जैसे लोक में घोड़ों से रथ खींचा जाता है वैसे ही इन्द्रियों से विषय रूप मार्ग में शरीर खींचा जाता है और जिसे सारथि लगान करने हुए घोड़ों से रथ को चलाता है वैसे ही मन रूप लगान से नथे हुए इन्द्रियों से बुद्धि रूप सारथि व्यवहार में शरीर को चलाता है ॥ ३ ॥

इन्द्रियाणि हयानाहुविषयाश्च स्तेषु
गोचरान् । आत्मन्द्रियमनोयुक्ते भोक्त्या-
मनीषिणः ॥ ४ ॥ (आत्मा, शब्द मार्ग + मतः
तु युक्त)

अ०—(इन्द्रियाणि चक्षुरादीनि (हयान्)
रथवाहकान् (आहुः) विद्वांसो ब्रुवन्ति (तेषु)
इन्द्रियेषु (गोचरान्) मार्गान् (विषयान्)
रूपादीनाहुः (मनीषिणः) मनस ईषिणो
श्रीकृतमानसाः (आत्मेन्द्रियमनोयुक्तम्)
शरीरेन्द्रियमनोयुक्तमात्मानम् (भोक्ताः)
इति, आहुः) ॥

भा०—हयरूपैरिन्द्रियैर्विषयेषु रथो भ्राम्यते
पारोक्ष्यं भोगायतनं तस्मिन्सेन्द्रिये समनस्के
सत्येव रथस्वामी जीवात्मा रथचालनफले-
न सुखदुःखेन युज्यते । नाशरीरस्यात्मनो
भोगः कश्चिदस्तीति न्यायः । आध्यात्मन्तरे-
ऽप्याधेयकार्येन संपद्यते इति यावत् ॥ ४ ॥

भाषार्थः— (इन्द्रियाणि) चक्षु आदि इन्द्रियों को (विद्वान्) शरीर रूप रथ के खंचने वाले घोड़े (आहुः) विद्वान् लोग कहते हैं (तेषु) उन इन्द्रियों में (विषयान्) रूपादि विषयों को (नीचरान्) मार्ग कहते हैं तथा (मनीषिणः) मन को वश में करने वाले विद्वान् (आत्मेन्द्रियमनोयुक्तम्) शरीर इन्द्रिय और मन कर के युक्त जीवात्मा (भीष्मा) भीष्मा है (इति, आहुः) ऐसा कहते हैं ॥

भा०—घोड़े रूप इन्द्रियों से विषयों में शरीर रूप रथ-बसाया जाता है। कुछ दुःख भोगका स्थान शरीर है उस शरीर के इन्द्रियों वा मन सहित होने पर ही रथ का स्वामी जीवात्मा रथ चलाने से कुछ दुःखरूप फल से युक्त होता है क्योंकि न्याय शास्त्र में वात्स्यायन ऋषि ने लिखा है कि शरीर रहित आत्मा को दुःख दुःख का भोग नहीं होता अर्थात् आधार के बिना आधेयका काम सिद्ध नहीं होता ॥४॥

with mind always his senses uncontrollable wicked
यस्त्विन्द्रियज्ञानवान् भवत्ययुक्तन मनसा सदा । तस्यैन्द्रियाण्यवस्थानि दुष्टा-
like a chariot
श्वाइव सारथेः ॥ ५ ॥

अ०—(यः) पुरुषः (तु) अविज्ञानवान्) विज्ञानरहितोऽविवेकी विषयेष्वेव लम्पटः (अयुक्तेन) अनिष्टहीतेनासमाहितेन नियमविरुद्धेन चलेन (मनसा) (सदा) युक्तः (भवति) (तस्य) (सारथेः) (दुष्टाश्वाइव) (इन्द्रियाणि) (अवस्थानि) स्वेच्छाचारिणि सारथं र-

धिनं दुःखगर्तं प्रातयितुं समर्थानि भवन्ति ॥

भा०—इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनु-
विधीयते । तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमि-
त्राम्भसि ॥ १ ॥

इन्द्रियाणां स्वाभाविकेन विषयग्राहक-
त्वधर्मेण साकं यदा पुरुषेण मनः संयोज्यते
तदा सारथिरूपा बुद्धिरपि वहिर्भवति । ए-
वमन्तःकरणस्था या विवेकशक्तेर्वहिर्मुखत्वा-
त्पुरुषोऽविज्ञानवान् जायते । विषयमार्गं वि-
चरतिस्त्रिन्द्रियेषु मनसः संयोजनादुदुष्टाश्चाह-
वेन्द्रियाणि दुःखदानि भवन्ति ॥ ५ ॥

भाषार्थः—(यः) जो पुरुष (तु) तो (अविज्ञानवान्)
विषयों में लिप्त अज्ञानी (अयुक्तेन) संशय युक्त न रोक्के
गये नियत विरुद्ध चलायमान (मनसा) मन से (सदा) स-
दा युक्त (भवति) रहता है (सारथेः) सारथि के (दुष्टाश्चा-
हव) दुष्ट घोड़ों के तुल्य (तस्य) उस के (इन्द्रियाणि) इ-
न्द्रियां (अवश्यानि) स्वाधीन शरीर रूप रथ सहित आत्मा
को दुःख रूप गढे में गिराने को समर्थ होते हैं ॥

भा०—भगवद्गीता में लिखा है कि जब विषयों में विच-
रते हुए इन्द्रियों के साथ मन लगाया जाता है तब वे नौका
को वायु के तुल्य मनुष्य की बुद्धि को हर ले जाते हैं । विष-
य का ग्रहण करना रूप इन्द्रियों के स्वाभाविक सामर्थ्य के
साथ जब पुरुष मन को संयुक्त करता है तब सारथि रूप बुद्धि

(A) A clever charioteer controlling the horses of a chariot by intelligent manipulation of the reins, so one can see the reins under control through force; also the employment of will force.

भी मन के साथ लग जाती है इस प्रकार अन्तःकरण में रहने वाले विचार शक्ति के बहिर्मुख हो जाने से मनुष्य अज्ञानी हो जाता है और विचरते हुए इन्द्रियों में मन के संयुक्त करने से दृष्ट चोहों के तुल्य इन्द्रिय दुःखदायी हो जाते हैं ॥५॥

who but himself is restrained
यस्तु विज्ञानवान् भवति युक्तेन मनसा सदा । तस्यन्द्रियाणि वश्यानि सदश्वा इव सारथः ॥ ६ ॥
Always his reins control him
good way is the character

अ०—(यः) सदसद्विवेको विद्वान् (युक्तेन) अश्यासवैराग्याभ्यां वशीकृतेन समाहितेन (मनसा) सह (सदा) (विज्ञानवान्) विवेकशीलो विषमदोषदर्शी (भवति) (सारथेः) (सदश्वा इव) (तस्य) (इन्द्रियाणि) (वश्यानि) भवन्ति ॥

भा०—यदा पुरुषेण रशनारूपं मनो वशे स्थाप्यते तदा रागद्वेषवियुक्तैरिन्द्रियविषयान् गृह्णन्नपि रश्मिरूपस्य मनसो निगृहीतत्वादिन्द्रियाण्यपि वशी भवन्ति । एवमन्तःकरणशक्तेः प्रत्यगात्ममुखत्वाद्विवेकशीलो जायते । विषयमार्गे विचरत्स्वपीन्द्रियेषु मनसो निगृहीतत्वाद्विन्द्रियाणि सदश्वा इव सुखप्रदानि भवन्ति ॥ ६ ॥

भाषार्थः—(तु) और (यः) जो (युक्तेन) अन्यास द्वै-
राग्य से वश में किये समाहित (मनसा) मन से (सदा)
प्रतिक्षण युक्त रक्त असक्त का विवेक करने वाला विद्वान् (वि-
ज्ञानवान्) विचार शील विषय भोग में दोषदर्शी (भवति)
होता है (सारथेः) सारथि के (सदृशादिव) अष्ट घोड़े जैसे
(तस्य) उस के (इन्द्रियाणि) इन्द्रिय (वश्यानि) वशी
भूत हो जाते हैं ॥

भा०—जब पुरुष लगान रूप मन को वश में करता है
तब रागद्वेष रहित इन्द्रियों से रूपादि वियों का ग्रहण क-
रता हुआ भी लगान की रस्सी के तुल्य मन को पकड़े होने से
इन्द्रिय भी वश में हो जाते हैं । इस प्रकार अन्तःकरण की
शक्ति के भीतर रुकने से ज्ञानी विचार शील हो जाता है ।
विषय रूप मार्ग में विचरते हुए भी इन्द्रियों में मन के वशी
भूत होने से अष्ट घोड़ों के तुल्य इन्द्रिय खूब देने वाले
हो जाते हैं ॥ ६ ॥

यस्त्विज्ञानवान्भवत्यमनस्कः सदा-
अशुचिः । न स तत्पदमाप्नोति संसारं
चाधिगच्छति ॥ ७ ॥

अ०—पञ्चमषष्ठमन्त्राभ्यां यदुक्तं तस्ये-
दानीं द्वाभ्यां फलमभिधत्ते—(यः, तु) (सदा)
(अशुचिः) छलकपटादि दोषमलैर्लिप्तः (अ-
मनस्कः) अनिष्टहोतमनस्कोऽधृतरथानः सा-
रथिरिवाकुलचेताः (अविज्ञानवान्) विवेकर-
हितः (भवति) (सः) रथो जीवात्मा तेनेन्द्र-

याधीनेन सारथिना (तत्, पदम्) अतीन्द्रियं प्रापणीयमक्षरं ब्रह्म (न आप्नोति) (च) अपितु (संसारम्) जन्ममरणप्रवाहमागमापायिसुखदुःखालयम् (अधिगच्छति) प्राप्नोति ॥

भा०—यथा यस्य रथिनः सारथेर्वशेऽश्वा न भवन्ति स स्वामीष्टं स्थानं नैव लभतेऽपितु यत्राश्वा नयन्ति तत्रैव गतादौ पतति तथैव यस्याश्वरूपाणीन्द्रियाणि वशी भूतानि न भवन्ति स आत्मपराङ्मुखो विषयासक्तोऽखिलोपद्रवविरहं शान्तिसुखमयं ब्रह्म न प्राप्नोति किंच मुहुर्मुहुर्दुःखालयमेवाप्नोति ॥७॥

भाषार्थः—पाँचवें छठे मन्त्र से जो विषय कहा था उस का फल अब दो मन्त्रों से कहते हैं । (यः, तु) और जो मनुष्य (सदा) सदा (अशुचिः) छल कपटादि दोष रूप मलों से युक्त अशुद्ध (अमनस्कः) जिसने लगासकी रस्सी को ठीक नहीं पकड़ा उस सारथी के तुल्य मन को वश में न करने से व्याकुल चित्त (अविज्ञानवान्) विवेक रहित (भवति) होता है (सः) वह रथ का स्वामी जीवात्मा इन्द्रियोंके आधीन हुए बुद्धि रूप सारथी से (तत्) उस (पदम्) परोक्ष प्राप्त होने योग्य अविनाशी ब्रह्म को (न, आप्नोति) नहीं प्राप्त होता (च) किन्तु (संसारम्) अनित्य सुख दुःखों के भण्डार जन्म मरण के प्रवाह को (अधिगच्छति) प्राप्त होता है ॥

भा०—जैसे जिस रथस्वामी के सारथी के वश में घोड़े नहीं होते वह अपने अभीष्ट स्थान को नहीं प्राप्त होता किन्तु

जहां छोड़े ले जाते हैं वहाँ गढ़े आदि में गिरता है । वैसे ही जिस पुरुष के छोड़े रूप इन्द्रिय वश में नहीं हैं वह आत्मज्ञानके विचारों से विमुख विषयों में आसक्त पुरुष सब उपद्रवों से रहित शान्ति और सुख स्वरूप ब्रह्म को नहीं प्राप्त होता किन्तु बार २ दुःख सागर में डूबता है ॥ १ ॥

He is not intelligent in himself with intellect
 यस्तु विज्ञानवान् भवति समनस्कः
always pure He that goal attains
 सदा शुचिः । स तु तत्पदमाप्नोति य-
whence again is not born
 स्माद् भूया न जायते ॥ ८ ॥

अ०—(यः, तु) (सदा) (शुचिः) परित्यक्तछलकपटादिदोषमलः शुद्धान्तःकरणः (समनस्कः) निगृहीतमानसः (विज्ञानवान्) विवेकशीलः (भवति) (सः, तु) (तत्, पदम्) परोक्षं प्राप्तुमर्हं ब्रह्म (आप्नोति) तेन सर्वदुःख विमुक्तो भवति (यस्मात्) स्वरूपावस्थानात् (भूयः) पुनः (न) जायते नात्पद्यते ॥

भा०—यथायस्य रथाध्यक्षस्य सारथिरश्वचालने कुशलः सन्नद्धो निगृहीतदृढरश्मिर्वशीकृताश्वो गन्तव्यस्थानेकलग्नमना निर्दिष्टं स्थानं सुखेनाप्नोति तथैवाप्रमादी परिक्षीणवितर्कजालः शुद्धशरीरेन्द्रियान्तःकरणो निगृहीतमानसो ब्रह्मप्राप्त्येकचेताः शाश्वतसुख

स्वरूपं ब्रह्माप्नोति यतः पुनर्दुःखसागरं
नाविशति ॥ ८ ॥

भाषार्थ—(यः, तु,) और जो पुरुष (सदा) सदा (शुचिः)
छल कपटादि दोष जिस ने छोड़ दिये इस से शुद्धान्तःकरण
(समनस्कः) मन को वस में रखने वाला (विज्ञानवान्)
विवेकशील (भवति) होता है (सः, तु) वह तो (तत्, -
पदम्) उस प्राप्त होने योग्य परीक्षित ब्रह्म को (आप्नोति)
प्राप्त होता है जिस से सब दुःखों से छूट जाता है (यस्मात्)
जिस स्वरूपावस्थिति से (भूयः) फिर (न, जायते) संसार
में उत्पन्न नहीं होता ॥

भा०—जैसे रथ के अध्यक्ष का भृत्य रथ चलाने में कुशल
सबद्ध लगान की रस्सी को ठीक २ पकड़े हुए घोड़ों को वश
में रखने वाला पशुंष ने की अभीष्ट स्थान ही में जिस का
चित्त लगा हुआ है वह सारथि विचार किये स्थान में कुछ
पूर्वक शीघ्र पशुंचता है । वैसे ही प्रमाद रहित, जिस का कु-
तर्क रूपी जाल नष्ट हो गया, शरीर इन्द्रिय और अन्तःकरण
जिस के शुद्ध शान्त हैं, मन को जिस ने वश में किया है, एक
ब्रह्म में ही जिस का चित्त लगा है, वह पुरुष सनातन कुछ
स्वरूप ब्रह्म को प्राप्त होता है जिस से फिर दुःख सागर में
नहीं गिरता ॥ ८ ॥

विज्ञानसारथियस्तु मनःप्रग्रहवात्सरः ।
साऽध्वनः पारमाप्नोति तद्विष्णोः परम-
पदम् ॥ ९ ॥

अ०—(यः, तु) (नरः) मनुष्यः (विज्ञान-
सारथिः) तपसा शोधिता विवेकशालिनी पर-

सार्थसाधनेषु तत्परा बुद्धिरेव सारथिरूपा
 यस्य (मनःप्रग्रहवान्) प्रगृहीतमना वशी-
 कृतान्तःकरणः (सः) (अध्वनः) गमनागमनाधि-
 करणजन्मजरणरूपमार्गस्य (पारम्) (विष्णोः)
 व्यापकस्य ब्रह्मणः वासुदेवाख्यस्य (परमम्)
 प्रकृष्टम् (तत्) अतीन्द्रियम् (पदम्) प्राप्यं
 स्वरूपम् (आप्नोति) प्राप्नोति तन्मयो भव-
 तीति यावत् ॥

भा०—अर्जुनस्य भगवान् श्रीकृष्ण इव
 यस्य रथस्वामिनो सारथिर्विज्ञः स्वामिकार्य-
 साधनैकचेताश्च भवति स दुर्गमपि पन्थानं यथा
 सुखेन गच्छति स्वेष्टं स्थानं चाप्नोति तथैव
 यस्य परमार्थविवेकशीला प्रज्ञा सारथिग्राह्यं
 रथनारूपं मनो यस्य वशीऽस्ति स संसाररूपम-
 संख्योपद्रवयुतं दुर्गं पन्थानं तीर्त्वा सर्वोपद्र-
 ववर्जितं शान्तमानन्दमयं ब्रह्माप्नोति ॥ ९ ॥

भाषार्थः—(यः तु) और जो (नरः) मनुष्य (विज्ञान-
 सारथिः) तप करके शुद्ध हुई सत् अस्त के विवेक से युक्त
 परमार्थ के साधनों में तत्पर बुद्धि ही जिस का सारथि है
 (मनःप्रग्रहवान्) अन्तःकरण रूप मनको जिसने वश में किया
 है (सः) बंध पुरुष (अध्वनः) जाने आनेके अधिकारण जन्म जरण
 रूप मार्ग के (पारम्) पार (विष्णोः) व्यापक वासुदेव नामक

*The subject are superior - objects are 5 Maha Bhuta
material elements out of which have come all
perceived through the 10 senses. The cause is
+ more pervasive than the effect. As the cause is
more pervasive than the effect, they are rich*

ब्रह्म के (परमम्) सर्वोत्तम (तत्) उस इन्द्रियासे आगम्य
परोक्ष (पदन्) प्राप्त होने योग्य स्वरूपको (आप्नोति) प्राप्त
होता वा तन्मय हो जाता है ॥

भा०—अर्जुनके सारथी श्रीकृष्ण भगवान् के तुल्य जिस
रथ के स्वामी का सारथी विचारशील, स्वामीके कार्यमें चित्त
को लगाने वाला होता है वह जैसे कठिन मार्ग को भी कुछ
पूर्वक व्यतीत करता और अभीष्ट स्थान वा वस्तु को प्राप्त हो
जाता है वैसे ही जिस पुरुष की परमार्थ में विवेकशील बुद्धि
तथा सारथि रूप बुद्धिके आधीन लगान की रस्सी के समान
जन जिस के वश में है वह असंख्य उपद्रवोंसे युक्त संसार रूप
कठिन मार्गके भी पार होकर सब उपद्रवोंसे रहित शान्त तथा
आनन्द स्वरूप ब्रह्म को प्राप्त होता है ॥ ९ ॥

*Ascending stream of existence
that the sense superior objects than the object
the mind than the mind*
इन्द्रियेभ्यः पराह्यथा अर्थेभ्यश्च पर
मनः । मनसस्तु परा बुद्धिबुद्धरात्मा महान्
Superior
परः ॥ १० ॥

Superior
अ०—इदानीं भौतिकेन्द्रियाण्यारभ्य सू-
क्ष्मसूक्ष्मतरक्रमेणाधिगन्तव्यस्य ब्रह्मणः प्रा-
प्तेरुपायउच्यते (इन्द्रियेभ्यः) भौतिकेभ्यः
(अर्थाः) रूपादयो विषयाः (पराः) सूक्ष्माः
(च) (अर्थेभ्यः) विषयेभ्यः (मनः) (परम्)
सूक्ष्मतरम् (च) (मनसः) (बुद्धिः) निश्चया-
त्मिका चित्तवृत्तिः (परा) सूक्ष्मतरा (बुद्धेः)
(महान्, आत्मा) हिरण्यगर्भो महत्तत्त्वाख्यः
(परः) सूक्ष्मः ॥

of the universe, which exists in the present & the
 the dream of universe 1980. This first conception of
 real life is a single whole, but it is aggregated of
 the individual soul, first concept of the universe
 be an intelligent aspect of universal substance. Div

मा०-स्थूलानिन्द्रियोणिशक्तिरूपाणि भू-
 तसूक्ष्मेभ्य उत्पद्यन्ते तद्यथा पृथिवीतन्मात्रा
 दुध्राणं जलतन्मात्राद्रसनाऽग्नि तन्मात्राच्चक्षु-
 र्वायुतन्मात्रात्स्पर्शनमाकाशतन्मात्राच्छ्रोत्रम्।
 कार्यात्कारणं परं सूक्ष्ममेव भवतीत्यत इन्द्रि-
 येभ्योऽर्थाः सूक्ष्माः। तन्मात्रभूतसूक्ष्माणां का-
 रणत्वाद्बह्वंकाररूपं मनः सूक्ष्मं तत्तन्माध्यवसा-
 यलक्षणा बुद्धिः परा ततोऽपि महत्तत्त्वं सूक्ष्म-
 तरम्। एवं मुमुक्षुणा सूक्ष्मात्सूक्ष्मे विचारः।
 प्रवर्त्तनीयः ॥ १० ॥

भाषार्थ-अब भौतिक इन्द्रियों से लेकर सूक्ष्म से अति सूक्ष्म
 क्रम से प्राप्त होने योग्य ब्रह्म की प्राप्ति का उपाय कहते हैं
 (इन्द्रियेभ्यः) पृथिव्यादि तत्त्वों से बने इन्द्रियों से (अर्थाः)
 गन्ध आदि विषय (पराः) सूक्ष्म (च) और (अर्थेभ्यः) विषयों
 से (मनः) मन (परम्) अति सूक्ष्म है (च) और (मनसः) मनसे
 (बुद्धिः) निश्चयात्मक ज्ञानरूप बुद्धि (परा) सूक्ष्म है (बुद्धेः) बुद्धि
 से (महान्) (आत्मा) हिरण्यगर्भ रूप महत्तत्त्व (परः) सूक्ष्म है ॥

भा०-स्थूल इन्द्रियों की विषय ग्राहक शक्ति सूक्ष्म भूतों से
 उत्पन्न होती है जैसे पृथिवी तन्मात्र से नासिका, जल से जिह्वा,
 अश्वितन्मात्र से नेत्र, वायु तन्मात्र से त्वचा और आकाश तन्मात्र
 से श्रोत्र उत्पन्न होते हैं इन सूक्ष्म भूतों से उत्पन्न होने के कारण
 ही वह २ इन्द्रिय उसी २ तत्त्व के गुण को ग्रहण करता है
 अर्थात् चक्षु से अग्नि के गुण रूप का ही ग्रहण होता है रस
 गन्धादि का नहीं इस नियम का कारण उस २ भूत से उत्पन्न

The great Human Hierarchy - the individual soul who is considered as the aggregate of the matter - energy or matter which is the first
 होना ही है अन्यथा कान से गन्ध का ग्रहण न होने/से

कोई बाधक नहीं कार्यसे कारण सूक्ष्म होता है इसी कारण इन्द्रियों से विषय सूक्ष्म कहे गये विषयों का कारण होने से गान उनसे भी सूक्ष्म है मनसे निश्चयात्मक बुद्धि पर है और महत्तरव उस से भी सूक्ष्म है। मुमुक्षु पुरुष को चाहिये कि इस प्रकार सूक्ष्म से सूक्ष्म में विचार को प्रवृत्त करे ॥१०॥

Then the next is to consider the manifest and the unmanifest
महत्: परमव्यक्तमव्यक्तात्पुरुष: पर:
Then the next is to consider the manifest and the unmanifest
पुरुषाच्च परं किञ्चित्सा काष्ठा सा परागति:

अ०—(महत्:) महत्तत्त्वात् (अव्यक्तम्) इत्यमिति व्यापारविर्जित सर्वकार्यकारणशक्ति समाहाररूपं प्रकृत्याख्यमव्याकृताकाशादिनामवाच्यं परमात्मन्योत्तमोत्तभावेनाश्रितं वटकणिकायां वटवृक्षशक्तिबन्महतः कारणम् (परम्) तस्मात् (अव्यक्तात्) (पुरुषः) पूर्णः परमात्मा (परः) सूक्ष्मतमः (पुरुषात्) (परम्) सूक्ष्मम् (किञ्चित्) किमपि (न) नास्ति किन्तु (सा) (काष्ठा) स्थितिः पर्यवसानम् (सा) (परा गतिः) यतः परा कस्यापि गतिर्नास्ति ॥

भा०—सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिस्तस्याः प्रथमः परिणामो महत्तत्त्वं तस्मादव्यक्तादपरिणतान्महत्तत्त्वं स्थूलं प्रकृतिश्च सर्ववस्तुभ्यः सूक्ष्मतमा ततश्च पुरि ब्र-

ह्याण्डे शयानइव शान्तः स्थितः सूक्ष्मतमः
 परमात्मास्ति । जगति यावद्वस्तुजातं सूक्ष्म-
 त्वे महत्त्वे च सावधिकं भवितुमर्हति । तेनै-
 वानवस्थापत्तिरूपं दूषणं शास्त्रकृद्भिर्निवार्यते
 यथा घटपटादिसर्ववस्तूनामधिकरणं पृथिवी
 तस्या वायुर्वायोरिकाशस्तस्यापि ब्रह्माधिक-
 रणम् । तत्र चाधाराधेयभावः परिसमाप्यते
 नास्ति ब्रह्मणः किमप्यधिकरणम् । यदि स्या-
 त्तिह तस्याप्यधिकरणकल्पनेऽनवस्थापत्तिरेव,
 अतो यः सर्वाधिकरणानामप्यधिकरणं स प-
 रमात्मास्ति तथैव यः सर्वसूक्ष्मवस्तुष्वपि सू-
 क्ष्मतमो यस्मात्परं सूक्ष्मं किमपि नास्ति सू-
 क्ष्मत्वमहत्वकर्मगत्यादीनां यत्रावधिः स प्र-
 त्यगात्मदृष्ट्या द्रष्टव्यः । यथेन्द्रियाणामर्था
 अर्थानां मनो मनसो बुद्धिर्बुद्धेर्महत्तत्त्वं मह-
 तोऽव्यक्तं परं परं पूर्वस्य पूर्वस्योपादानं तथैव
 प्रत्यगात्माऽव्यक्तस्योपादानं परम्परया च स-
 र्वस्योपादानमात्मैवास्त्यत एव सर्वं खल्विदं
 ब्रह्मेत्याशयः ॥ ११ ॥

भाषार्थः—(सहतः) सहत्तरवसे (अव्यक्तम्) इत्थं रूत
 कथन से रहित प्रकृति नामक सहत् कारण (परम्) पर है
 उस (अव्यक्तात्) अव्यक्त प्रकृति से (पुरुषः) सर्वत्र परिपूर्ण

परमात्मा (परः) अत्यन्त सूक्ष्म है और (पुरुषात्) परमात्मा से (परम्) सूक्ष्म (किंचित्) कुछ भी (न) नहीं है किन्तु (सा) वही (काष्ठा) स्थितिका अवधि [हृद्] तथा (सा) वही (परागतिः) पहुंचने की अवधि—हृद् है उस से आगे किसी की गति या सूक्ष्मता नहीं है ॥

भा०—सर्वगुण रजोगुण तमोगुण की साम्यावस्था जो प्रकृति है वह अपने परिणाम महत्तरवसे सूक्ष्म है और प्रकृति सब वस्तुओं से सूक्ष्म है और उस कारणावस्था प्रकृति से ब्रह्माण्ड रूप शरीर में सोते हुए के तुल्य शान्ति पूर्वक स्थित परमात्मा है । जगत् में सब पदार्थों के छोटे बड़े होने की हृद् होती है कि यहां तक यह छोटे से छोटा वा बड़े से बड़ा हो सकता है । इसी नियमसे शास्त्रकार लोग अनवस्था दोष को हटाते हैं । जैसे घट, पट आदि सब वस्तुओं का आधार पृथिवी उस का वायु, वायु का आकाश और आकाश का आधार ब्रह्म है । वहीं आधारार्थेय भाव सम्बन्ध समाप्त हो जाता है अर्थात् ब्रह्मका आधार कोई नहीं है । यदि ब्रह्म का आधार मानें तो उस आधार का भी अन्य आधार मानने में अनवस्थापत्ति दोष आता है इस लिये आधारोंका आधार परमात्मा है वैसे ही जो सब सूक्ष्म वस्तुओंमें अत्यन्त सूक्ष्म जिससे परे अन्य कोई सूक्ष्म नहीं किन्तु सूक्ष्मता बहुपन्न और कर्मगतियोंकी जहां अवधि है इन्द्रियोंकी शक्तिकी अन्तःकरणकी और मूकाके उसको देखना योग्य है । जैसे इन्द्रियोंके उपादान शब्द तन्मात्रादि विषय, विषयों का मन, मन का बुद्धि बुद्धिका महत् और महत्का अव्यक्त पर २ पूर्व २ का उपादान है वैसे ही प्रत्यगात्मा ईश्वर प्रकृति वा मायाका उपादान कारण है परम्परा से सबका उपादान वही है, इसी से यह सब जगत् परमात्म स्वरूप ही है ॥ ११ ॥

of all life & awareness. even comes in the Prakriti, which creates the Paramestha & the human & animal & vegetable life. The first conception of life is the aggregate of all the individual substances which are aggregated in the material aspect of universal substance.

मा०-स्थूलान्द्रियोणिकीरूपाणि भू-
तसूक्ष्मेभ्य उत्पद्यन्ते तद्यथा पृथिवीतन्मात्रा
दुष्माणजलतन्मात्राद्रसनाऽग्नितन्मात्राच्चक्षु-
र्वायुतन्मात्रात्स्पर्शनमाकाशतन्मात्राच्छ्रोत्रम्।
कार्यात्कारणं परं सूक्ष्ममेव भवतीत्यत इन्द्रि-
येभ्योऽर्थाः सूक्ष्माः। तन्मात्रभूतसूक्ष्माणां का-
रणत्वादहंकाररूपं मनः सूक्ष्मं तत्तन्मात्राध्यवसा-
यलक्षणा बुद्धिः परा ततोऽपि महत्तत्त्वं सूक्ष्म-
तरम्। एवं मुमुक्षुणा सूक्ष्मात्सूक्ष्मे विचारः
प्रवर्त्तनीयः ॥ १० ॥

भाषार्थ-अब भौतिक इन्द्रियों से लेकर सूक्ष्म से अति सूक्ष्म क्रम से प्राप्त होने योग्य ब्रह्म की प्राप्ति का उपाय कहते हैं (इन्द्रियेभ्यः) पृथिव्यादि तत्त्वों से बने इन्द्रियों से (अर्थाः) गन्ध आदि विषय (पराः) सूक्ष्म (च) और (अर्थेभ्यः) विषयों से (मनः) मन (परम्) अति सूक्ष्म है (च) और (मनसः) मन से (बुद्धिः) निश्चयात्मक ज्ञानरूप बुद्धि (परा) सूक्ष्म है (बुद्धेः) बुद्धि से (महान्) (आत्मा) हिरण्यगर्भ रूप महत्तत्त्व (परा) सूक्ष्म है ॥

मा०-स्थूल इन्द्रियों की विषय ग्रहण शक्ति सूक्ष्म भूतों से उत्पन्न होती है जैसे पृथिवी तन्मात्र से नासिका, जल से जिह्वा, अग्नि तन्मात्र से नेत्र, वायु तन्मात्र से त्वचा और आकाश तन्मात्र से श्रोत्र उत्पन्न होते हैं इन सूक्ष्म भूतों से उत्पन्न होने के कारण ही वह र इन्द्रिय उसी २ तत्त्व के गुण को ग्रहण करता है अर्थात् चक्षु से अग्नि के गुण रूप का ही ग्रहण होता है रस गन्धादि का नहीं इस नियम का कारण उस २ भूत से उत्पन्न

The great man is not in the world as we see it, but in the world as he is. He is not in the world as we see it, but in the world as he is. He is not in the world as we see it, but in the world as he is.
 होना ही है अन्यथा कान से गन्ध का ग्रहण न होने में कोई बाधक नहीं कार्यसे कारण सूक्ष्म होता है इसी कारण इन्द्रियों से विषय सूक्ष्म कहे गये विषयों का कारण होने से मन उनसे भी सूक्ष्म है मनसे निश्चयात्मक बुद्धि पर है और महत्तर उस से भी सूक्ष्म है। मुमुक्षु पुरुष को चाहिये कि इस प्रकार सूक्ष्म से सूक्ष्म में विचार को प्रवृत्त करे ॥ १० ॥

Show the Mahat is not in the world as we see it, but in the world as he is. He is not in the world as we see it, but in the world as he is.
महत्: परमव्यक्तमव्यक्तात्पुरुष: पर:
Show the Mahat is not in the world as we see it, but in the world as he is. He is not in the world as we see it, but in the world as he is.
पुरुषान्न परं किञ्चित्सा काष्ठा सा परागति:

अ०—(महत्:) महत्तत्त्वात् (अव्यक्तम्) इत्यमिति व्यापारविर्जित सर्वकार्यकारणशक्ति समाहाररूपं प्रकृत्याख्यमव्याकृताकाशादिनामवाच्यं परमात्मन्योतप्रोतभावेनाश्रितं वटकणिकायां वटवृक्षशक्तिवन्महत्: कारणम् (परम्) तस्मात् (अव्यक्तात्) (पुरुष:) पूर्ण: परमात्मा (पर:) सूक्ष्मतम: (पुरुषात्) (परम्) सूक्ष्मम् (किञ्चित्) किमपि (न) नास्ति किन्तु (सा) (काष्ठा) स्थिति: पर्यवसानम् (सा) (परा गति:) यत: परा कस्यापि गतिर्नास्ति ॥

भा०—सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्थां प्रकृतिस्तस्या: प्रथम: परिणामो महत्तत्त्वं तस्मादव्यक्तादपरिणतान्महत्तत्त्वं स्थूलं प्रकृतिश्च सर्ववस्तुभ्य: सूक्ष्मतमा ततश्च पुरि ब्र-

ह्याण्डे शब्दान्डे च शान्तः स्थितः सूक्ष्मतमः
 परमात्मास्ति । जगति यावद्वस्तुजातं सूक्ष्म-
 त्वे महत्त्वे च सावधिकं भवितुमर्हति । तेनै-
 वानवस्थापतिरूपं दूषणं शास्त्रकृद्भिर्निवार्यते
 यथा घटपटादिसर्ववस्तूनामधिकरणं पृथिवी
 तस्या वायुर्वायोराकाशस्तस्यापि ब्रह्माधिक-
 रणम् । तत्र चाध्वाराधेयभावः परिसमाप्यते
 नास्ति ब्रह्मणः किमप्यधिकरणम् । यदि स्या-
 त्तिह तस्याप्यधिकरणकल्पनेऽनवस्थापतिरेव,
 अतो यः सर्वाधिकरणानामप्यधिकरणं स प-
 रमात्मास्ति तथैव यः सर्वसूक्ष्मवस्तुष्वपि सू-
 क्ष्मतमो यस्मात्परं सूक्ष्मं किमपि नास्ति सू-
 क्ष्मत्वमहत्त्वकर्मगत्यादीनां यत्रावधिः स प्र-
 त्यगात्मदृष्ट्या द्रष्टव्यः । यथेन्द्रियाणामर्था
 अर्थानां मनो मनसो बुद्धिर्बुद्धेरहत्तत्त्वं मंह-
 तोऽव्यक्तं परं परं पूर्वस्य पूर्वस्योपादानं तथैव
 प्रत्यगात्माऽव्यक्तस्योपादानं परम्परया च स-
 र्वस्योपादानमात्मैवास्त्यत एव सर्वस्वत्वदं
 ब्रह्मेत्याशयः ॥ ११ ॥

भाषार्थः—(महत्तः) महत्तत्त्वसे (अव्यक्तम्) इत्यंभूत
 कथन से रहित प्रकृति नामक महत् कारण (परम्) पर है
 उस (अव्यक्तात्) अव्यक्त प्रकृति से (पुरुषः) सर्वत्र परिपूर्ण

परमात्मा (परः) अत्यन्त सूक्ष्म है और (पुरुषात्) परमात्मा से (परम्) सूक्ष्म (किञ्चित्) कुछ भी (न) नहीं है किन्तु (सा) वही (काष्ठा) स्थितिका अवधि [हृद्] तथा (सा) वही (परागतिः) पहुंचने की अवधि-हृद् है उस से आगे किसी की गति वा सूक्ष्मता नहीं है ॥

भा०-सर्वगुण रजोगुण तमोगुण की साम्यावस्था की प्रकृति है वह अपने परिणाम महत्तरवसे सूक्ष्म है और प्रकृति सब वस्तुओं से सूक्ष्म है और उस कारणावस्था प्रकृति से ब्रह्माण्ड रूप शरीर में सोते हुए के तुल्य शान्ति पूर्वक स्थित परमात्मा है । जगत् में सब पदार्थों के छोटे बड़े होने की हृद् होती है कि यहां तक यह छोटे से छोटा वा बड़े से बड़ा हो सकता है । इसी नियमसे शास्त्रकार लोग अनवस्था दोष को हटाते हैं । जैसे घट, पट आदि सब वस्तुओं का आधार पृथिवी उस का वायु, वायु का आकाश और आकाश का आधार ब्रह्म है । वहीं आधारार्थेय भाव सम्बन्ध समाप्त हो जाता है अर्थात् ब्रह्मका आधार कोई नहीं है । यदि ब्रह्म का आधार मानें तो उस आधार का भी अन्य आधार मानने में अनवस्थापत्ति दोष आता है इस लिये आधारोंका आधार परमात्मा है वैसे ही जो सब सूक्ष्म वस्तुओंमें अत्यन्त सूक्ष्म जिससे परे अन्य कोई सूक्ष्म नहीं किन्तु सूक्ष्मता बड़पन और कर्मगतियोंकी जहां अवधि है इन्द्रियोंकी शक्तिकी अन्तःकरणकी और भुकाके उसको देखना योग्य है । जैसे इन्द्रियोंके उपादान शब्द तन्मात्रादि विषय, विषयों का मन, मन का बुद्धि बुद्धिका महत् और महत्का अव्यक्त पर र पूर्व र का उपादान है वैसे ही प्रत्यगात्मा ईश्वर प्रकृति वा मायाका उपादान कारण है परम्परा से सबका उपादान वही है, इसी से यह सब जगत् परमात्म स्वरूप ही है ॥ ११ ॥

This All subtlest of all men does not shine
 एष सर्वेषु भूतेषु गूढात्मा न प्रकाशते ।
is seen as sharp intellect subtle By the subtle
 दृश्यते त्वग्यया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः ॥ १२ ॥
concentrated intellect 2 only as an instrument (the sharp discerning nature persons who can perceive the subtlest)

अ०—(एषः) सर्वनियन्ता योगिभिः कृ-

तप्रत्यक्षः (सर्वेषुभूतेषु) ब्रह्मादित्तत्त्वपर्यन्तेषु
 (गूढात्मा) गूढागुप्तश्चासावात्मा चालभ्यः
 बहुभिरध्वेषणातत्परैः सूक्ष्मत्वादतीन्द्रियत्वा-
 च्चालभ्योऽकृतप्रज्ञैः । वटवृक्षे वटवोजशक्ति-
 रिव गूढः । (न, प्रकाशते) विषयासक्तेन्द्रिया-
 धीनप्रज्ञया न ज्ञायते । (तु) अपितु (अग्न्या)
 कुशाग्रमिव प्रवेशनशीलया (सूक्ष्मया) इन्द्रि-
 येभ्यः पराह्यर्थादित्युक्तक्रमेण सूक्ष्मविचाराप-
 न्नास्पदया (बुद्ध्या) (सूक्ष्मदर्शिभिः) सू-
 क्ष्मविचारतत्परैः पण्डितैः (दृश्यते) ॥

भ०—इन्द्रियाधीनमना वहिर्मुखः कश्चि-
 त्सर्वस्मिञ्जगत्पन्वेषणतत्परोऽपि परमात्मानं
 ज्ञातुं नार्हति किन्तु य इन्द्रियशक्तिं बाह्या-
 न्निरुध्य सर्वप्राणिनिकायेषु काष्ठेऽग्निवद् व्या-
 प्तं परमात्मानं मन्यते स शान्तेन्द्रियमना
 प्रत्यगात्मनि परिवर्तितया सूक्ष्मात्सूक्ष्मतर-

इन्द्रियार्थमनोबुद्धिमहत्तत्त्वादिविचारे लब्धा-
स्पदया सूक्ष्मबुद्ध्या कारणानामपिकारणं
परमात्मानं प्रत्यगात्मरूपेण पश्यति ॥ १२ ॥

भाषार्थः—(एषः) सबको नियम में रखने वाला योगियों
ने जिस को प्रत्यक्ष किया ऐसा (सर्वेषु) ब्रह्मादि स्थावरान्त
प्राणिमात्र में (गूढ़ात्मा) गुप्त व्याप्त परमात्मा [बहुत लोग
उसके खोजने में लगे रहते हैं तो भी इन्द्रियों से अप्राप्त
अत्यन्त सूक्ष्म होने से प्राप्त नहीं होता इससे गुप्त कहा जाता
है किन्तु जैसे वस्त्र आदि से कोई वस्तु ढाँप दिया जाय वैसे
कहीं छिपा नहीं है [किन्तु बटके वृक्षमें बटके बीजकी शक्ति
के तुल्य गुप्त है] (न, प्रकाशते) विषयासक्त इन्द्रियोंके साथ
फंसी बुद्धि से नहीं जाना जाता (तु) किन्तु (अग्न्या) कुशकी
नोंक के तुल्य सूक्ष्म विषयों में प्रवेश करने वाली (सूक्ष्मया)
पूर्वाक्त क्रम से [इन्द्रियों से अर्थ, अर्थसे मन में] सूक्ष्मसे सूक्ष्म
में प्रवेश करने वाली (बुद्ध्या) बुद्धि करके (सूक्ष्मदर्शिभिः)
सूक्ष्मदर्शी पण्डित जनों से (दृश्यते) देखा जाता है ॥

भा०—जिसका मन इन्द्रियोंके अधीन है जिसकी विचार
शक्ति बाह्य विषयों में फैली है वह कोई पुरुष सब जगत्में
खोजता हुआ भी परमात्मा को नहीं प्राप्त हो सकता किन्तु
जो इन्द्रियों की शक्ति को बाहर से रोक के सब प्राणियों के
शरीर में व्याप्त परमात्माको मानता है तथा जिसके इन्द्रिय
वा मन शान्तिको प्राप्त हुए वह भीतरी विचारमें केरी हुई
इन्द्रिय, अर्थ, मन, बुद्धि और महत्तत्त्वादि सम्बन्धी सूक्ष्म से
सूक्ष्म विचारमें प्रवृत्त सूक्ष्म बुद्धिसे कारणोंके कारण परमात्मा
को अपने अन्तरात्मरूप से देखता है ॥ १२ ॥

Should not speak with mind the intellect should not
 यच्छेद्वाङ्मनसो प्राज्ञस्तद यच्छेज्ज्ञानं
 आत्मानि । ज्ञानमात्मानि महाति नियच्छे-
 तदयच्छेच्छान्त आत्मानि ॥१३॥

अ०—सूक्ष्मया बुद्ध्या सकथं द्रष्टव्य ई-

त्युच्यते (प्राज्ञः) प्रशस्तातिशयप्रज्ञावान्नरः
 (मनसो) मनसि । सुपांसुलुगिति विभक्तेरी-
 कारः (वाक्) वाचम् । अत्रविभक्तेर्लुक् । उभ-
 यत्र छान्दसं कार्यम् । वागित्युपलक्षणमिन्द्रि-
 याणाम् । (यच्छेत्) विषयेभ्यो निरुधयोपर-
 मयेत् (तत्) मनः (ज्ञाने) ज्ञानप्रकाशस्वरूपा-
 याम् (आत्मानि) अतति सततं मन आदौ-
 नोन्द्रियाणि प्राप्नोतीत्यात्मा बुद्धिस्तस्याम् (य-
 च्छेत्) उपरमयेत् (ज्ञानम्) बुद्धिम् (महति,
 आत्मानि) स्वकार्येषु व्याप्तिमतिं महत्तत्त्वे
 (नियच्छेत्) शान्तयेत् (तत्) महत्तत्त्वम्
 (शान्ते) शान्तस्वरूपे (आत्मानि) प्रत्यगात्म-
 रूपे परमात्मानि (यच्छेत्) नियतं कुर्यात् ॥

भा०—परमार्थज्ञानतत्परेण विदुषा स-
 र्वेन्द्रियाणि मनोऽधीनानि मनश्च सारथिरू-
 पबुद्धेर्वशे स्थापनीयम् । बुद्धिर्वसुप्रकृतिसमुदाये
 पारिगणिता सा ततः सूक्ष्मे महत्तत्त्वे निवेश-

to cross hand to hand. (The latter portion of that self-realisation) requires at most a telescoping to reach the goal of the path

नीया महत्तत्त्वं च सर्वबाधाविमुक्ते शान्ते
प्रत्यगात्मरूपे परमात्मनि प्रवेशनीयम् । एवं
सति सूक्ष्मतरा बुद्धिरन्तर्यामिणमात्मानं द्रष्टुं
समर्था भवति ॥ १३ ॥

भाषार्थः—वह परमात्मा सूक्ष्म बुद्धिसे कैसे देखने योग्य है
सो कहते हैं—(प्राज्ञः) अत्यन्त उत्तम बुद्धियुक्त पुरुष (मनशी)
मन में (वाक्) वाणी आदि इन्द्रियोंको (यच्छेत्) विषयों
से दौककर ठहरावे (तत्) उस मन को (आत्मनि) मन आदि
में निरन्तर प्राप्त होने वाली (ज्ञाने) ज्ञानप्रकाश स्वरूप बुद्धि
में (यच्छेत्) ठहरावे (ज्ञानम्) बुद्धि की (महति, आत्मनि)
अपने कार्य में व्याप्त महत्तत्त्वमें (नियच्छेत्) शान्त करे (तत्)
उस महत्तत्त्वको (शान्ते) शान्त स्वरूप (आत्मनि, अन्तरात्मा रूप
परमात्मा में (यच्छेत्) नियत करे ॥

भा०—परमार्थ सम्बन्धी ज्ञान में तत्पर विद्वान् को उचित
है कि सब इन्द्रियोंको मनके अधीन और सार शिखर बुद्धि
के अधीन मनको स्थिर करे । आठ प्रकृतियोंमें गिनाई हुई
बुद्धि को महत्तत्त्व में प्रवेश करे और महत्तत्त्व को सब दुःखों
से दूरे शान्त स्वरूप अन्तरात्मा परमात्मा में लगावे इस
प्रकार अति सूक्ष्म बुद्धि अन्तर्यामी परमात्मा को देखने को
समर्थ होती है ॥ १३ ॥

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य धारान्निबोधत ।
क्षरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गमपथः
स्तत्कवया वदन्ति ॥ १४ ॥

अ०—हे मनुष्या एवमुक्तप्रकारेण पर-
मात्मानं ज्ञातुम् (उत्तिष्ठत) अविद्यानिद्रातः

(जाग्रत) (वराण्) श्रेष्ठान् गुरुत्वेन स्वीकर्त्तव्या-
नाचार्यानुपदेशकान् वा गुरुन् (प्राप्य) (नि-
बोधत) सर्वान्तर्यामिणं परमात्मानं विजा-
नीत । नह्ययं सुगमो मार्गः किन्तु यथा (नि-
शिता) शिल्पिना तीक्ष्णीकृता (क्षुरस्य, धारा)
(दुरत्यया) पद्भ्यां दुःखेनात्येतुं योग्या भवति
तथैव (कवयः) क्रान्तदर्शिनो विद्वांसः (तत्)
तत्त्वज्ञानलक्षणम् (पथः) पन्थानम् (दुर्गम्)
दुःखेन गन्तुं योग्यम् (वदन्ति) कथयन्ति ॥

भा०—बहवो जना अभ्यस्तान्यनेकानि
कार्याण्युपलभ्य जानन्ति किमिदं कार्यम् । य-
दाऽऽरप्स्यामहे तदा सुगमतया सद्यो निष्पा-
दयिष्यामः । एतदर्थं विशिष्टप्रयोसो न का-
र्यइति तद्वदत्र न बोद्धव्यम् । एष दुर्गो मार्गः
एकगम्यः । यथा क्षुरस्य तीक्ष्णीकृतधाराया
उपरि पद्भ्यां गमनं क्लिष्टं भवति तथैव प-
रमात्मज्ञानोपायः क्लिष्टस्तदर्थं मनुष्येण म-
हान् प्रयासः कार्यः । निद्रालस्यप्रमोदाविद्या-
दीन् विहाय ज्ञानिगुरुसत्संगसेवाभ्यां परमा-
त्मज्ञानस्योपायः सेवनीयः । नात्र स्वस्थता
कार्या तस्मात्प्रजागरः कार्यः पुरुषेण दिवा-

निशम् । न मुष्णन्ति छलाद्यस्मात्कामक्रोधा-
दयोऽपि च ॥ १४ ॥

भाषार्थः—हे मनुष्यो ! इस वक्त प्रकारसे परमात्माके जानने को (उत्तिष्ठत) उठो अविद्या रूप निद्रा को छोड़ो (जाग्रत) जागो (वरान्) गुरुभावसे स्वीकार करने योग्य श्रेष्ठ विद्वान् आचार्यों वा उपदेशकों को (प्राप्य) प्राप्त होके सर्वान्तर्यामी परमात्मा को वा सत्यासत्य को (निबोधत) जानो यह मार्ग सुगम नहीं है जो आलस्य में पड़े रहने पर भी सहज में प्राप्त हो जावे । किन्तु जैसे (निशिता) बाढ़ कराई हुई (तुरस्य) छुरा की (धारा) धार (दुरत्यया) पगों से चलने में कठिन होती है वैसे ही (कवयः) दीर्घदर्शी विद्वान् लोग (तत्) उस तत्त्वज्ञानरूप (पथः) मार्ग को (दुर्गम्) दुख से प्राप्त होने योग्य (वदन्ति) कहते हैं ॥

भाव—बहुत मनुष्य अभ्यास किये अनेक कानों को प्राप्त हो कर जानते हैं कि यह काम ही क्या है । जब चाहेंगे कर डालेंगे । शीघ्र सिद्ध हो जायगा कठिन ही क्या है इसके लिये हमें विशेष परिश्रम की आवश्यकता नहीं । वैसा विचार इस प्रसंग में न करना चाहिये । यह परमार्थ साधक धर्म सम्बन्धी कठिन मार्ग है इस को पूर्ण विवेकी पुरुष ही प्राप्त हो सकता है इस मार्ग में ज्ञानी अज्ञानी और अज्ञ ज्ञानी माना जाता वा जान पड़ता है । जैसे छुरा की तीखी धार पर पगों से चलना कठिन होता वैसे ही आत्मज्ञान को उपाय वा धर्मानुष्ठान कठिन है । कभी धर्म करते २ अधर्म रूप कीच में फस जाता है इस लिये मनुष्य को उचित है कि बड़ा परिश्रम करे । निद्रा आलस्य प्रमाद और अविद्यादि को छोड़ कर ज्ञानी गुरु का सत्संग तथा सेवन कर के परमात्मज्ञान

के उपाय का सेवन करे किन्तु भूल में स्वस्थ न बैठा रहे
मनुष्य को काम क्रोधादि शत्रुओं से बचने के लिये दिनरात
सचेत रहना चाहिये ॥ १४ ॥

अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं तथाऽरसं नि-

ध्रुवं, निचाय्य तं, मृत्युमुखात्प्रमुच्यते ॥१५॥

शब्दगुणआकाशस्तस्माद्भिन्नमशून्यम् (अ-

स्पर्शम्) स्पर्शगुणो वायुस्तद्गुणाद्रहितम्

(अरूपम्) वह्न रूपगुणाद्भूतम् (तथा, अ-
रूपम्) रसमाणादिरसम् (न) (आमन्त्रयन्) म-

नन्धवती पृथिवी तस्याः पथगम्यतम् । अतएव

(अव्ययम्) न व्येति(नित्यम्)सदैकरसम्(अ-

नादि) न विद्यत आदिः कारणमस्य तत्का-

रणस्यापि कारणम् (अनन्तम्) न विद्यते-
 त्वं कार्यमस्य (मन्त्रः) मन्त्रमन्त्रः (मन्त्रः)

सक्षमतरम (ध्रुवम) अचलम (तत्) (निचाय्य)

विज्ञाय मनुष्यः (मृत्युमुखात्) जन्ममरण-

प्रवाहाद्दुःखसागरात् (प्रमुच्यते) ॥

भा०—तस्मान्निमित्तापादानोभयभूता-
द्वयसामान्य आकाशादि सर्वसामान्यं तद्व्यापकं

एवमेव आत्मनो जाकारादिवसमुत्पन्नसंस्कारिणः

कार्यं स्वरूपाद्व्येति स्वस्थोपादाने प्रलीयते-
ऽनित्यं भवति । न तथाऽऽत्मा कस्य चित्कार्य-
मतएव न व्येति न च क्वापि लीयते तस्मा-
न्नित्यम् । तमेवं भूतमात्मानं यो विजानाति
सएव दुःखाद्विमुक्तो भवितुमर्हति ॥ १५ ॥

भाषार्थः—(यत्) जो ब्रह्मात्मकनात्मतत्त्वम् (अशब्दम्)
शब्द गुण आकाश का है उस शून्य आकाश से विलक्षण है
(अस्पर्शम्) स्पर्शगुण से वायु जाना जाता है ब्रह्म नहीं (अ-
रूपम्) रूप गुण अग्नि का है उस से भिन्न (तथा, अरसम्)
जल के रस गुण से रहित (च) और (अगन्धवत्) पृथिवी
के गन्धगुण से भी पृथक् वर्तमान है शब्दादि गुण उस में
वा उसके नहीं इसी से वह (अव्ययम्) अविनाशी (नित्य-
म्) सदा एक रस (अनादि) उस का कोई आदि कारण
नहीं (अनन्तम्) और न वह किसी का कार्य है (महतः)
महत्तरे से भी (परम्) अत्यन्त सूक्ष्म (तत्) उस ब्रह्म को
जान के समुद्र (सत्यमुखात्) जन्म मरण के प्रवाह रूप दुःख
सागर से (प्रमुच्यते) छूट जाता है ॥

भा०—उस निमित्तोपादान कारण रूप परमात्मा से
आकाशादि सब जगत् उत्पन्न होता और कारण वाला कार्य
अपने स्वरूप से व्युत्पन्न होता ही है अर्थात् अपने उपादान
कारण में लीन हो जाता है इस से अनित्य है जैसे परमात्मा
किसी का कार्य नहीं किन्तु सब का कारण है इसी से न
स्वरूप से व्युत्पन्न होता और न किसी में लीन होता है इस
कारण नित्य है । उस ऐसे परमात्मा को जो यथार्थ रूप से
जानता है वही दुःख से छूट सकता है ॥ १५ ॥

world of Brahman
selected - being instructed himself by a
great teacher & teacher (122) imparted the same
to other aspiring souls.
to becoming one with the story told by death
man.
ancient being related to him *26 intelligent*
is glorified *in the world*
of Brahman

नाचिकेतमपाख्यानं मृत्युप्राक्तं सना-
तनम् । उक्त्वा श्रुत्वाच्च मेधावी ब्रह्मलोके
महीयते ॥१६॥

आ०—वल्लीत्रयेण प्रतिपादितं विषयं
स्तुवन्फलं दर्शयति (नाचिकेतम्) नाचिके-
तसा प्राप्तम् (मृत्युप्राक्तम्) मृत्युनाम्ना यमा-
चार्येण प्रोक्तम् (सनातनम्) वेदात्मकत्वा-
त्समूलं परम्परयोपदिश्यमानम् (उपाख्यान-
म्) गुरुशिष्यसम्बन्धव्याख्यानम् (उक्त्वा)
अधिकारिणे भक्त्यायोपदिश्य ब्रह्मनिष्ठादाचा-
र्याच्च (श्रुत्वा) (मेधावी) विवेकी विद्वान्
पुरुषः (ब्रह्मलोके) ब्रह्मैव लोकियो लोकस्तस्मिन्
(महीयते) उपासनादिफलेन पूजितो भवति ।

भा०—श्रद्धामन्तरेण मनुष्यः सम्यक्कार्यं
नानुतिष्ठति फलाख्यानं च सर्वत्र श्रद्धाविकृद्
ध्यर्थं क्रियते साहि कल्याणकारिणी जननीव
योगिनं पाति । अतो यः परमात्मानं जिज्ञा-
सेत स एतदुपाख्यानं श्रद्धया गुरुभ्यः शृणुया-
च्छिष्येभ्य उपदिशेत् । यथोक्तापायांश्च सततं
सेवेत तेन ब्रह्मज्ञानं सुलभं भवति ॥ १६ ॥

Brahmanam :- assembly of intelligent persons who only are able to understand the super-natural & glorious of Atman. Brahma is done in honor of the departed persons peace to them

भाषाणः—अब तीन बलिष्यों में कहे विषय को फल स्तुति दिखाते हैं (सत्युप्रोक्तम्) यमाचार्य जी ने कहे और (नाचिकेतम्) नाचिकेता ने ग्रहण किये (सनातनम्) परम्परा से उपदेश किये गये वेदस्वरूपहीने से सनातन (उपाख्यानम्) गुरु शिष्य संवाद से कथन किये गये विषय को (उक्त्वा) अधिकारी भक्त शिष्य को उपदेश कर और ब्रह्म वेत्ता आचार्य से (श्रुत्वा) सुनकर (मेधावी) विवेकी विद्वान् पुरुष (ब्रह्मलोके) ज्ञान दृष्टि से देखने योग्य ब्रह्म के बीच (महीयते) उपासनादि से हुए फल से उन्मुक्त सत्कार को प्राप्त होता है ॥

भा०—अर्द्धा के बिना अनुष्ण क्षीर २ कार्य का सेवन नहीं कर सकता । और अर्द्धा खढ़ाने के लिये फल का कथन किया जाता है वह अर्द्धा कल्याण कारिणी माता के तुल्य योगीकी रक्षा करती है । इससे जो परमेश्वर को जानने की इच्छा करे वह इस संवाद को अर्द्धा पूर्वक गुरुजनों से सुने और शिष्यों के लिये उपदेश करे और इस प्रसङ्ग में कहे उपायों का निरन्तर सेवन करे जिसमें ब्रह्मज्ञान सुगम हो जाता है ॥ १६ ॥

Who this Supreme Spirit exists in the assembly with great devotion to the teacher or that for important benefit
 य इमं परमं गुह्यं श्रावयद्ब्रह्मसमादि प्रयतः श्राद्धकाले वा तदानन्त्याय कल्पते तदानन्त्याय कल्पत इति ॥ १७ ॥

अ०—(यः) पुरुषः (प्रयतः) शुद्धशान्तशरीरेन्द्रियमत्ता भूत्वा (इमम्) (परमम्) (गुह्यम्) अधिकारणे रहसि वस्तुतः ब्रह्मज्ञानोपदेशम् (ब्रह्मसंसदि) ब्राह्मणसदसि

(वा) अथवा (आहुकाले) मृतान् प्राणिन उद्दिश्य यथाविधि आहुतानुष्ठानकाले (आव-
येत्) विप्रेषु भुञ्जानेषु पठेत् (तत्) आवणम्
बहुकर्णगतत्वात्संस्कारवासनारूपेण (आन-
न्त्याय) अनन्तभावाय (कल्पते) समर्थं
भवति द्विर्वचनं ब्रह्मसमाप्त्यर्थम् ॥

भा०—यथाऽनेकयोग्यक्षेत्रेषूत्तं बीजं कु-
त्रचिद्विशिष्टफलप्रदं जायते तथैवानेकाधि-
कारिशिष्यसमुदाये आहुकाले वा कृतो ब्रह्म-
ज्ञानोपदेशः कस्मिंश्चिद्विशेषोपकारी भवति
यावेता प्रयत्नेनैकः श्रोतवस्तावतैव बहवस्त-
स्माच्छिष्यसमुदाये कृतो ज्ञानोपदेशो लाघ-
वेन विशिष्टफलसाधकः । यस्य विषयस्य य-
स्तत्त्वं ज्ञातुं शक्तः स तस्याधिकारी । अन-
धिकारिणे कृतउपदेशोऽन्यथाप्रतिपक्षोऽनर्थाय
स्यादिति सम्भवमतः सर्वस्मै सर्वं नोपदेश्यम् ।
न बुद्धिभेदं जनयेदज्ञानां कर्मसंगिनामिति
गीतासु ॥ १७ ॥

इति तृतीयावल्ली प्रथमोऽध्यायश्च समाप्तः ।

भाषार्थः—(यः) जो पुरुष (प्रयतः) जिसके शरीर इन्द्रिय
और मन शुद्ध शान्त हों ऐसा होके (इत्थम्) इस (परमम्)

turn his eyes on eyes (194)

उत्तम (शुभम्) अधिकारी पुरुष के लिये एकान्त में कहने योग्य ब्रह्मज्ञान संबन्धी उपदेश को (ब्रह्मसंसदि) ब्राह्मणों की सभा में (वा) अथवा (आहुकाले) मृत पितादि के चर्द्देश से विधिपूर्वक किये आहुतलुण्ठान के समय (आवयेत्) भोजन करते हुए ब्राह्मणों की पङ्क्ति सुनावे (तत्) वह उपदेश बहुत कानों में पहुंचने से संस्कार बासना रूप से (आनन्त्याय) अनन्त होने को (कल्पते) समर्थ होता है ।

भा०—जैसे अनेक खेतों में बोया बीज किसी में विशेष फल देता है वैसे ही अनेक अधिकारी शिष्यों के समुदाय में वा आहुकाल में किया ब्रह्मज्ञान का उपदेश विशेष उपकारी होता है । जितने परिश्रम वा समय में एक को उपदेश किया जावे उतने में ही बहुतों को हो सकता है इसलिये अनेक के समुदाय में उपदेश करना विशेष फलदायक है । जिस विषय के तत्त्व को जो जान सकता है वही उसका अधिकारी है । अनधिकारी के लिये किया ज्ञानोपदेश उलटा पङ्क्ति के अनर्थ कराने वाला हो जाय यह संभव है । इस कारण सबके लिये सब विषय का उपदेश नहीं करना चाहिये ॥ १७ ॥

यह तृतीय बल्लो और प्रथमाध्याय समाप्त हुआ ॥

पराञ्चि खानि व्यतृणत्स्वयम्भूस्तस्मात्पराङ् पश्यति नान्तरात्मन् । कश्चिद्भीरुः प्रत्यगात्मानमैक्षदावृत्तचक्षुरमृतत्वमिच्छन् ॥ १ ॥

अ०—गतबल्ल्यां सूक्ष्मप्रज्ञायात्मा दुरयत इत्युक्तम् । तत्र चित्तवृत्तिनिरोधकारणमस्यां

बहुयां वक्तुमारभते—(स्वयम्भू.) यः स्वयं प्रा-
 दुर्भवति स स्वतन्त्रः परमेश्वरः (स्वानि) इन्द्रि-
 याणि (पराङ्घ्रि) परान् शब्दादिविषयानञ्ज-
 न्ति गच्छन्ति पतन्ति तद्गुर्मकानि (व्यवृणत्)
 व्यरचयत् । धातूनामनेकार्थत्वात्तृहधातोर्नि-
 र्माणार्थप्रतिपत्तिः (तस्मात्) कारणात् म-
 नुष्यः (पराङ्घ्र) बाह्यविषयम् (पश्यति)
 किन्तु (न, अन्तरात्मन्) अन्तरात्मानं न
 पश्यति । छान्दसो विभक्तेर्लुक् (कश्चित्)
 (धीरः) ध्यानशीलः (आवृत्तचक्षुः) आ-
 वृत्ते चक्षुषी यस्य स पुरुषः (अमृतत्वम्)
 मोक्षभावम् (इच्छन्) (प्रत्यगात्मानम्)
 अन्तःकरणे व्याप्तं परमात्मानम् (ऐक्षत्)
 ईक्षते ध्यानेन पश्यति ॥

भा०—परमेश्वरेण मनुष्यस्येन्द्रियाणि
 विषयग्राहकाणि विषयोन्मुखानि निर्भितानि
 तस्मात्स विषयानेव पश्यति । आत्ममनःसं-
 योगमन्तरेणेन्द्रियैर्विषया ग्रहीतुमशक्याः ।
 आत्मा मनसा संयुज्यते मन इन्द्रियेणेन्द्रियं
 विषयेणेति तदा विषयं विजानाति । अतो
 ब्रह्मज्ञानस्येन्द्रियैर्विषयग्रहणमेव निरोधकम् ।

यः कोऽपि मुमुक्षुर्भवेत्तेन चक्षुरादीनां विषय
पतनशक्तिः शनैः शिथिलीकार्यः । अन्तःक-
रणस्था बुद्धिवृत्तयो या इन्द्रियछिद्रद्वारा व-
हिर्निस्सरन्ति तास्मामन्तर्मुखत्वेन निरोधे ज्ञा-
नवर्धनाद्बुद्धान्ततत्परः परमात्मानं ज्ञातुं श-
क्नोति । प्रज्ञाचक्षुषां बुद्धेस्तीव्रताया एतदेव
कारणम् । प्रज्ञायां बुद्धौ चक्षुषी यस्य स प्र-
ज्ञाचक्षुः । इदं च सर्वसाधारणैरप्यनुभूतं य-
त्प्रज्ञाचक्षुषां बुद्धिरितरेभ्यो विशिष्टा जायते
नह्योतेन प्रमाणेन चक्षुषोर्घातः सम्यगपितु
विषयग्रहणाभ्यासो मुमुक्षुणा शिथिलीकार्यः १॥

भाषार्थः—गत तृतीय बल्ली में सूक्ष्म बुद्धि से परमेश्वर
देखा जाता है ऐसा कहा है सो सूक्ष्म बुद्धि के बिना न दीख
पड़ने के कारण चित्त वृत्तियों के निरोध को इस बल्ली में
कहने का प्रारम्भ करते हैं (स्वयम्भूः) जिसकी प्रकटता बिना
किसी आधार वा कारण के होती है उस स्वतन्त्र परमेश्वर ने
(खानि) कान आदि इन्द्रियों को (पराङ्मुखि) शब्द आदि
विषयों पर गिरने रूप स्वभाव से युक्त (व्यवृणत्) बनाया
है (तस्मात्) तिसी कारण मनुष्य (पराङ्मुख) बाह्य विषयको
(पश्यति) देखता है किन्तु (न, अन्तरात्मन्) अन्तरात्मा
को नहीं देखता । यथा (कश्चित्) कोई (आवृत्तचक्षुः) जिस
ने अपने नेत्र वक्षादि से ढाँचे वा सींचे हैं ऐसा (धीरः)
ध्यानशील पुरुष (अमृतत्वम्) मोक्ष होने की (इच्छन्)

इच्छा करता हुआ (प्रत्यगात्मानम्) अन्तःकरण में विद्यमान आत्मा को (ऐक्य) ध्यान दृष्टि से देखता है ॥

भा०-परमेश्वर ने मनुष्य के इन्द्रिय विषयों के ग्रहण करने वाले अर्थात् विषयों की ओर झुकने वाले बनाये हैं। इसलिये वह विषयोंको ही देखता है। आत्मा और मन का संयोग हुये बिना इन्द्रियोंसे विषयोंका ग्रहण नहीं हो सकता जीवात्मा मनके साथ मन इन्द्रियके साथ और इन्द्रिय विषयके साथ संयुक्त हो तभी शब्दादि विषयका ज्ञान होता है। इससे इन्द्रियों से विषय का ज्ञान होना ही ब्रह्मज्ञान के न होनेमें कारण है। जो कोई मुमुक्षु हो उस को चक्षु आदि इन्द्रियों की विषयों पर गिरता रूप शक्ति धीरे २ शिथिल करनी चाहिये। अन्तःकरण में स्थित जो बुद्धि की लहरें इन्द्रियों के चिह्नों द्वारा बाहर निकलती हैं उनको भीतरी ओर फेरकर रोकने में ज्ञान के बढ़ने से ध्यान में तत्पर पुरुष परमात्मा को जान सकता है। प्रज्ञाचक्षु लोगोंकी बुद्धिके तीव्र होने का यही कारण है अर्थात् नेत्रों की बाहर फैलने वाली शक्ति जिस की बुद्धि में पहुँच गई वह प्रज्ञाचक्षु वा अन्धा कहाता है। और यह सर्व साधारण लोगों ने भी निश्चित अनुभव किया है कि अन्य की अपेक्षा प्रज्ञाचक्षु की बुद्धि विशेष हो जाती है। इस से यह प्रयोजन नहीं है कि नेत्र कोइ डालने चाहिये किन्तु मुमुक्षु पुरुष को विषय ग्रहण का अभ्यास शिथिल कर देना वा घटाते जाना चाहिये ॥ १ ॥

पराचः कामाननुयान्ति वालास्त मत्या-
र्यन्ति विततस्य पाशम्। अथ धीरा अमृत-
त्वं विदित्वा ध्रुवमध्रुवाप्यहं न प्राथयन्ते ॥ २ ॥

अ०—ये (बालाः) अज्ञाः । अज्ञो भवति
 वै बाल इति मनुवचनात् (पराचः) स्वशरीरा
 द्वहिर्भूतानेव (कामान्) चन्द्रमुखीदर्शनादिवि-
 षयभोगसंकल्पान् (अनुयन्ति) अनुगच्छन्ति
 (ते) (विततस्य) प्राणिमात्रेण्यप्तस्य (मृत्योः)
 (पाशम्) बन्धनहेतुं देहेन्द्रियमनोबुद्धिवेदना-
 संघातं संयोगवियोगरूपम् (यन्ति) प्राप्नु-
 वन्ति (अथ) ये (घोराः) विषयभोगांचछान्ता
 धैर्यमापन्नाः (ध्रुवम् अमृतत्वम्) - मुक्तिद-
 शायाः सुखं स्थालीपुलाकन्यायेन (विदित्वा)
 (अध्रुवेषु) अनित्यविषयसुखभोगेषु किञ्चित्सु-
 खम् (न, प्रार्थयन्ते) सांसारिकं सुखं किमपि
 न याचन्ते ॥

भा०—ये मनुष्या विषयानन्दएवास-
 क्तास्ते विषयसुखापेक्षया मोक्षसम्बन्धिवहुत-
 रसुखाज्ञानादज्ञाः सदा दुःखबहुले जगत्येव
 भ्रमन्ति ये च विद्वांसस्ते मोक्षदशाया दृढं
 महत्सुखमनुभूयविषयभोगान्नेच्छन्ति ॥२॥

भाषार्थः—(ये) जो (बालाः) अज्ञानी पुरुष (पराचः) शरीरसे
 भिन्न वस्तुओंसे होने वाले (कामान्) चन्द्रमाके सदृश सुख
 वाली स्त्री की देखना आदि विषय भोग के संकल्पों के (अ-

my which... a pure state of the mind... the sense percept... (138) for mind!

नुयन्ति) अनुकूल भागते हैं (ते) वे (विततस्य) प्राणिमात्र में फैले हुए (सृत्योः) सृत्यु की (पाशम्) शरीर इन्द्रिय मन बुद्धि आदि के अनित्य समुदाय बन्धन के हेतु फांसी की [यन्ति] प्राप्त होते हैं (अथ) इन से अनन्तर जो [धीराः] विषय भोग से शान्त धैर्य को प्राप्त विद्वान् लोग (भ्रुवम्) निश्चल (असृतत्वम्) मुक्ति दशा के सुख को (विदित्वा) स्थालीपुलाकन्यायसे जानके (अभ्रुवेषु) अनित्य विषयसुख के भोगों में से किसी सुख की (न, प्रार्थयन्ते) याचना नहीं करते अर्थात् किसी प्रकार संसार के किसी सुखको नहीं चाहते ॥

भा०—जो मनुष्य विषयों के आनन्द में ही आसक्त हैं उन को विषय सुख की अपेक्षा मोक्ष संबन्धी बहुत सुख का ज्ञान न होनेसे अज्ञानी कहाते हैं । वे सदा सहत् दुःख वाली जगत् में ही अना करते हैं । और जो विद्वान् लोग हैं वे मोक्ष दशा के दृढ़ सहत् सुख का अनुभव कर विषय भोग को नहीं चाहते ॥ २ ॥

येन रूपं रसं गन्धं शब्दान् स्पर्शाश्च
मैथुनान् । एतेनैव विजानाति किमत्र प-
रिशिष्यते । एतद्वै तत् ॥३॥

अ० (येन) सूर्यवत्सर्वचैतन्यप्रकाशकेन सर्वत्रस्तुज्ञानस्य निमित्तभूतेन विज्ञानस्वरूपेण परमात्मना (एतेन, एव) सतैव मनुष्यः (रूपम्, रसम्, गन्धम्, शब्दान्, स्पर्शान्) (च) (मैथुनान्,) मैथुननिमित्तान् सुख-प्रत्ययान् (विजानाति) (किमत्र, परिशिष्यते)

न किमपि सर्वं ज्ञेयमात्मसत्तयैव विजाना-
तीति भावः (वै) (एतत्) सत्तात्मकं सर्व-
ज्ञेयहेतुभूतं ब्रह्म (तम्) यत्त्वया नचिकेतसा
पृष्टं यत्र दैवैरपि विचिकित्सितम् । यदुर्मा-
दिभ्योऽन्यद्विष्णोः परमं पदं चास्ति तदिदमेव ।

भा०—यद्यपि रूपस्य दर्शनेऽदर्शनेऽन्य-
थादर्शने वा चक्षुः स्वतन्त्रं तथापि सूर्यादेः
प्रकाशसाहाय्यमन्तरेण रूपं द्रष्टुमसमर्थं भ-
वति । एवमत्रापि जीवात्मा पुण्यपापे कर्तु-
मकर्तुमन्यथा कर्तुं वा स्वतन्त्रस्तथापि परमा-
त्मसत्तामन्तरेण किमपि कर्तुं न शक्नोति ।
यद्यप्ययस्कान्तमन्तरेण लोहः प्रचलितुमशक्नो-
यथा वा रश्मिमन्तरेण चक्षू रूपं द्रष्टुमशक्तं
तथापि सूर्यायस्कान्तयोरप्रयोजकत्वादित्यं
कुर्यादिति च्छाभावाच्च तौ फलभागिनौ न भव-
तस्तथैव परमेश्वरः सर्वचैतन्यजन्यक्रियाणां
निमित्तीऽप्यविकारित्वहेतुना न क्वापि लिप्य-
ते । रूपादयो विषया जगदीश्वरेणैव निर्मि-
तास्तेषामुत्पत्तिस्थित्योः कारणं स एव तेन
विना तेषां स्थितेरभावाद्रूपादीनां ज्ञानमपि

कस्यचिन्न स्यात् । किमपि तद्वस्तु नास्ति य-
त्तत्सत्तया विना प्राणिन उपकारि स्यात् ॥३॥

भाषार्थः—(येन) जैसे सूर्य जगत् के सब पदार्थों का प्र-
काशक है वैसे चेतनमात्र का प्रकाशक, सब पदार्थों के ज्ञान
हीने में जो निमित्त उस विज्ञान स्वरूप (एतेन, एव) पर-
मात्मा के विद्यमान रहने ही से मनुष्य (शब्दान्, स्पर्शान्,
रूपम्, रसम् गन्धम्) शब्द स्पर्श रूप रस गन्धों (च) और
(मैथुनान्) मैथुन जिन का निमित्त है ऐसे सुखानुभवों को
(विजानाति) जानता है तो (किन्त्र, परिशिष्यते) इस
जगत् में क्या जानना बाकी रहा ? क्योंकि इन्हीं शब्दादि
में सब ज्ञातव्य विषय का ग्रहण हो जाता है अर्थात् जानने
योग्य सब विषय की आत्मा की सत्ता से ही जान सकता है
(वै) निश्चय कर (एतत्) यह सर्वदा विद्यमान सब वस्तु
ज्ञान का हेतु (तत्) वही ब्रह्म है जिसकी तुफ नचिकेताने
पूछा था जिस के हीने में देवों ने भी सन्देह किये जो धर्मा-
धर्म से भिन्न व्यापक स्वरूप है यही ब्रह्म है ॥

भा०—यद्यपि रूप के देखने न देखने वा अन्यथा देखने
में आंख स्वतन्त्र है तो भी सूर्यादि के प्रकाश की सहायताके
विना रूपको नहीं देख सकती । इसी प्रकार यहां भी चिदाभास
जीव पुण्य पाप के करने न करने वा अन्यथा करने में स्व-
तन्त्र है तो भी परमात्मा की सत्ता के विना कुछ नहीं कर
सकता । यद्यपि चुम्बक के विना लोहा चलने की सनर्थ नहीं
तथा सूर्य के विना आंख रूप को नहीं देख सकती तो भी चु-
म्बक वा सूर्य प्रेरणा नहीं करता और न चाहता है कि यह
ऐसा करे वा देखे इस से वे दोनों लोहे वा नेत्र के साथ फल
भागी नहीं होते । वैसेही परमेश्वर शरीरेन्द्रियोसे होने वाली

(Through which one becomes :- Atman is that pure which makes no comparison of our sleep, or dream awake and state. (१३३))

सब क्रियाओंका निमित्त भी है पर विकारी न होनेसे कहीं लित नहीं होता । रूपादि विषय परमेश्वर ने ही बनाये हैं उन की उत्पत्तिस्थिति का वही कारण है उस के बिना उन की स्थिति नहीं रह सकती तो उन रूपादि का ज्ञान भी किसी को नहीं हो सकता । अर्थात् जगत् में कोई वस्तु ऐसा नहीं जो उसकी सत्ताके बिना प्राणीका उपकारी हो ॥३॥

the sleep is in the sleep, waking and both think
स्वप्नान्तं जागरितान्तं चोभौ येनानु-
See great the all the M. man having realised the 2nd
पश्यति । महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरो
gives with
न शोचति ॥४॥

अ०—उक्तार्थमेव दृढयक्ताह—यो मनुष्यः (स्वप्नान्तम्) स्वप्नसमाप्तिं जागरितावस्थाम् स्वप्ननाशं वा (जागरितान्तम्) जागरितसंघसमाप्तिं स्वप्नावस्थाम् (च) (उभौ) (येन) सत्तात्मकेनैकेन व्याप्तचेतनेन (अनुपश्यति) अनुकूलं पश्यति स (धीरः) ध्यानशीलो विद्वान् (आत्मानम्) (महान्तं, विभुम्) (मत्वा) ज्ञात्वा (न, शोचति) शोकाकुलो न भवति ॥

भा०—स्वप्नान्ते जागरितारम्भे जागरितान्ते च स्वप्नारम्भे यान्यान् शब्दादिविषयान् श्रोत्रादिज्ञानेन्द्रियैर्मनसा च येन प्रदीपादिवद्दृशकेन चेतनेन साधकतमेन पुरुषः पश्यत्य-

no more. This is only that.
 - within this body as the very self.
 - the consequences of Karma (138)

नुभवति स एवैको महान् विभुश्चेतन आत्मा-
 स्ति । इन्द्रियाण्यन्तःकरणं च सर्वं जडं सदा-
 त्मनैव चेतनं क्रियते तदेव स्वरूपं मत्वा धीरः
 शोकं जहाति ॥ ४ ॥

भावार्थः—पूर्व कहे विषय को दूढ़ करते हैं—जो मनुष्य
 (स्वप्नान्तम्) स्वप्न की समाप्ति जागरित अवस्था वा स्वप्न
 के नाश (च) तथा (जागरितान्तम्) जागने की समाप्ति
 स्वप्नावस्था (उभौ) इन दोनों की (येन) जिस विद्यमान
 स्वरूप एक व्याप्त चेतन रूप प्रदीप से (अनुपश्यति) अनु-
 कूल देखता है वह (धीरः) ध्यानशील विद्वान् (आत्मा-
 नम्) अपने को (महान्तम्) सर्वोत्कृष्ट (विभुम्) व्यापक
 (मत्वा) जान के (न, ज्ञोयति) शोकसे व्याकुल नहीं होता ॥

भा०—जागने और सोनेके आरम्भ में जिन २ शब्दादि
 विषयों की श्रोत्रादि ज्ञानेन्द्रियों तथा मन के द्वारा मनुष्य
 जिस चेतनता के आश्रय से देखता अनुभव करता है, वही
 एक चेतन विभु व्यापक आत्मा है, वही ब्रह्म है, इन्द्रियां
 और अन्तःकरण सभी जड़ होते हुए भी एक चेतन आत्मा से
 ही चेतन हो जाते हैं वही चेतन मैं हूँ ऐसा मानकर विद्वान्
 शोकरहित हो जाता है ॥ ४ ॥

यइम मध्वद वेद आत्मानं जीवम-
 न्तिकात् । इशानं भूतमव्ययं न ततो
 विजुगुप्सत । एतद्वै तत् ॥ ५ ॥

अ०—(यः) पुरुषोदेहादिसंघातः (मध्व-

दम्) मधु मिष्टं कर्मफलमस्ति स मध्वत् तम्
 (जीवम्) प्राणधारिणम् (इमम्) प्रत्यक्षे
 देहाभिमानिनम् (आत्मानम्) (अन्तिकात्)
 समीपे विद्यमानम् (भूतभव्यस्य) अतीता-
 नागतयोः (ईशानम्) स्वामिनमधिष्ठातार-
 म्परमात्मानं वेद स विवेकी (ततः) ज्ञानात्
 (न, विजुगुप्सते) अभयप्राप्तत्वाच्च गोपायि-
 तुमिच्छति (एतद्वै, तत्) एतदेव तज्ज्ञानफलं
 यत्त्वया नचिकेतसा पृष्टम् ॥

भा०—अतीतानागतयोश्चराचरयोरधि-
 ष्ठाता यः परमेश्वरोऽस्ति स एवायमन्तःकरणो-
 पाध्यवच्छिन्नः सन्निहितः कर्मफलभोक्ता जीव
 आत्मा प्रत्यक्षइति यो जानाति न स भया-
 त्स्वात्मानं रक्षितुमिच्छति ॥

भाषार्थः—(यः) जो पुरुष (मध्वदम्) रोचक कर्मफलों
 के भोगने-वाले [जीवम्] प्राणों के धारक [इमम्] इस प्र-
 त्यक्ष देह के अभिमानी (अन्तिकात्) समीप में विद्यमान
 [आत्मानम्] जीवात्मा को [वेद] जानता अर्थात् [भूत-
 भव्यस्य] भूत में हुए तथा भविष्यत् में होने वाले जगत् के
 [ईशानम्] स्वामी अधिष्ठाता परमात्मा को जानता है
 वह विद्वानी पुरुष [ततः] उस ज्ञान के होने से फिर [न
 विजुगुप्सते] निर्भय हो जाने से अपनी रक्षाकी चिन्ता नहीं
 करता [एतद्वैतत्] यही उस के ज्ञान का फल है जो तुम्ह
 नचिकेता ने पूछा था ॥

here means all the ... dwelling with ...
the dwelling - we win (334) the body which is made
dwelling

भा०—भूत भविष्य काल में होने वाले संसार का जो
अधिष्ठाता परमेश्वर है, वही अन्तःकरण उपाध्यवच्छिन्न
समीपवर्ती कर्मफल भोक्ता जीवात्मा रूप से प्रत्यक्ष है ऐसा
जो जानता है वह निर्भय हो जाने के भय के हेतुओं कारण
से अपनी रक्षा को चेष्टा नहीं करता ॥ ५ ॥

यः पूर्वं तपसा जातमदभ्यः पूर्वमजा-
यत । गुहां प्रविश्य तिष्ठन्त यो भूतभिर्य-
पश्यत । एतद्वै तत् ॥ ६ ॥

अ०—(यः) सदसद्विवेकी मुमुक्षुः पुरुषो
जीवात्मा (अदभ्यः) अप्सहितपञ्चभूतेभ्यः
(पूर्वम्) (अजायत) प्रादुर्बभूव तम् (तपसः)
ज्ञानादिरूपाद्ब्रह्मणः (पूर्व, जातम्) जगत्स-
ज्जाय प्रकटम् (व्यपश्यत) विशेषतया प-
श्यति जानाति (यः) यश्च (गुहाम्) बुद्धावन्तः-
करणे (प्रविश्य) (तिष्ठन्तम्) (भूतेभिः)
पञ्चभूतैः सहावस्थितं परमेश्वरम् (व्यपश्यत)
विपश्यति तदाकारचैतास्तमेव प्रतिक्षणं ध्या-
यति । (एतद्वै तत्) यद्विद्वान् विपश्यति तदे-
तदेव ब्रह्मात्मतत्त्वं बोद्धव्यम् ॥

भा०—सर्गारम्भे परमात्मा सर्व निर्मा-
नुमादावोक्षतइत्येतत्सर्वस्मात्पूर्वं तस्य प्राक-
ट्यम् । ततः पश्चात्तमेानुदः प्रकाशो जायते

Aditi - Shriyagurubhagavate is the cause of all the world - the source of all (१३९) - whole universe.
 Praman - Shriyagurubhagavate - the cosmic witness.

ततोऽखिलं जगन्निर्माय तस्मिन्नन्तर्यामितया
 प्रविश्य तिष्ठति तं जीवात्मा सर्वभूतैः सहो-
 वस्थितं स्वान्तःकरणे पश्यति । एतदेव तस्य
 ज्ञानं विदुषा कार्यमिति ॥ ६ ॥

भाषार्थः—[यः] जो सत्यासत्य का विवेक करने वाला
 मुमुक्षु जीवात्मा [अदृश्यः] जल सहित पांच भूतोंसे [पूर्वम्]
 पहिले ही [अजायत] प्रकट हुआ उस [तपसः] ज्ञानादि
 स्वरूप ब्रह्मा से (पूर्वम्) पहिले (जातम्) जगत्को उत्पन्न
 करने के अर्थ प्रकट हुए परमेश्वर को [व्यपश्यत्] विशेष
 कर देखता है अर्थात् जानता है और [यः] जो विद्वान्
 [गुह्यम्] बुद्धि में [प्रविश्य] प्रवेशकर [तिष्ठन्तम्] स्थित
 परमात्मा को [भूतेभिः] पंचभूतमय शरीर वा संसार के
 साथ अवस्थित जानता है अर्थात् एकाग्रचित्त होकर प्रति-
 क्षेप उसी का ध्यान करता है [एतद्वैतत्] । वह ब्रह्म यही
 है जिसकी विद्वान् लोग ही जानते हैं ।

भा०—सृष्टि के आरम्भ में परमात्मा सब को रचने के
 अर्थ पहिले अनुसन्धान करता है यह सब से पहिले उस की
 प्रकटता है तिस पीछे अन्धकार नाशक प्रकाश उत्पन्न होता
 तिस पीछे सब जगत् को बना उसमें अन्तर्यामी रूपसे प्रवेशकर
 स्थित है । उस को जीवात्मा सब भूत पृथिव्यादि के साथ
 स्थित अपने अन्तःकरण में देखता है यही उस का ज्ञान
 विद्वान् को करना चाहिये ॥ ६ ॥

या प्राणिनं सम्भवत्यादितिद्वेतामया ।
 गुहां प्रविश्य तिष्ठन्ता या भूतामव्यजायत ।
 एतद्वैतत् ॥१॥

अ०—(या) (देवतामयी) सर्वदेवात्मिका दिव्यज्ञानप्रकाशस्वरूपा (अदितिः) शब्दादिविषयाणामदनाददितिः (प्राणेन) हिरण्यगर्भरूपेण परब्रह्मतः (सम्भवति) (या) (भूतेभिः) भौतिकशरीरेण पञ्चमहामूतैर्वा समन्विता (व्यजायत) उत्पद्यते ताम् (गुहाम्) अन्तःकरणे (प्रविश्य) व्यष्टिरूपेण [तिष्ठन्तीम्] विद्वान् जानीयात् [एतद्वैतत्] तदेतद्ब्रह्महिरण्यगर्भदेवतारूपेणावस्थितं ज्ञेयम् ॥

भा०—हिरण्यगर्भरूपेण याऽऽखण्डनीया देवतोत्पन्ना या भूतैः सहिता बुद्धौ प्रविष्टा व्यज्यते तदपि ब्रह्मणएवैकं रूपं विज्ञेयम् ॥७॥

भाषार्थः—(या) जो (देवतामयी) सब देवोंकी सन्धि उत्तमज्ञान प्रकाशरूप (अदितिः) शब्दादि विषयों का अद्वय ग्रहण करने से अदिति देवता । प्राणेन) हिरण्यगर्भरूप परब्रह्म से (सम्भवति) उत्पन्न होती (या) जो देवता (भूतेभिः) भौतिक शरीर के साथ वा पांच महाभूतों से युक्त (व्यजायत) प्रकट होती उस (गुहाम्) अन्तःकरण में (प्रविश्य) प्रवेश कर (तिष्ठन्तीम्) व्यष्टिरूप से ठहरी हुई देवता की जो विद्वान् जानता है (एतद्वैतत्) वही ब्रह्म हिरण्यगर्भदेवतारूप से अवस्थित होता जानो ॥

भा०—हिरण्यगर्भरूपसे जो देवता प्रकट होती जो अन्तःकरण में प्रविष्ट भूतों के साथ शरीर रूप से उत्पन्न होती वह भी ब्रह्म का ही एक रूप जानना चाहिये ॥ ७ ॥

अरण्यानिहिता जातवेदा गर्भइव सु-
 भूता गभिणीभिः । दिवेदिव ईड्यो जागृव-
 द्विहविष्मद्विर्मनुष्येभिरग्निः । एतद्वैतत् ॥८॥

अ०—(अरण्योः) अधियज्ञे द्वयोः का-
 ष्ठयोर्मध्ये (निहितः) अन्तर्व्याप्तो यथा म-
 न्धनेन (अग्निः) निस्सरति तथा (जागृवद्विः)
 सत्त्वगुणस्थैः । सत्त्वं जागरणकारणमिति सु-
 श्रुते (हविष्मद्विः) ऋत्विग्भिर्ध्यानभाव-
 नातत्परैः (मनुष्येभिः) मनुष्यैः (जात-
 वेदाः) जातं वेदा धनं वेदरूपं ज्ञानं वाऽस्मात्स
 परमेश्वरो ध्याननिर्मथनाभ्यासेन द्रष्टव्यः (ग-
 भिणीभिः) (सुभूतः) सुष्ठु धृतः (गर्भइव)
 धारणीयः (दिवेदिवे) प्रतिदिनं वेदमन्त्रपा-
 ठेन तदर्थानुसन्धानेन च (ईड्यः) स्तोतव्यः
 (एतद्वैतत्) एतदेव ब्रह्मज्ञातव्यमस्ति ॥

भा०—यथाऽरणीद्वये व्याप्तोऽप्यग्निर्मन्थन-
 मन्तरेण न निस्सरति तथैवान्तःकरणे व्या-
 प्तोऽपि जगदीश्वरो योगाभ्यासेन विना न प्र-
 कटो भवति । यथा नार्थ्यो गर्भाशये गर्भं वि-
 ज्ञाय प्रतिदिनं तद्गतमानसा गर्भं धरन्ति

पुष्पन्ति च तथैव जिज्ञासुभिर्ध्यानयुक्तैः स-
त्त्वगुणप्रधानचेताभिर्भूत्वाऽस्मद्बृहदस्थित ई-
श्वर इति मत्वा विस्मृतिं विहाय धारणीयः ।
अहर्निशं स्तोतव्यउपास्यश्च यज्ञोपव्रज्यात्म-
नि चाग्निनामरूपाभ्यां यत्तत्त्वं प्रतीयते तद्-
ब्रह्मैव बोध्यम् ॥ ८ ॥

भाषार्थः—जैसे (अरण्योः) यज्ञ में दो लकड़ियों के बीच
(निहितः) भीतर व्यास भी (अग्निः) अग्नि नयने से नि-
कलता है वैसे (जागृवद्भिः) तनीगुण के कार्य निद्रा आ-
लस्य प्रमाद से रहित सत्त्व गुण में स्थित (हविष्मद्भिः)
ध्यान की भावना में तत्पर ऋत्विज् लोग वा योगी (सनु-
ष्येभिः) सनुष्यों को (जातवेदाः) वेदरूप ज्ञान वा धन जिस
से उत्पन्न हुआ ऐसा अग्नि वा परमेश्वर वार २ ध्यान के
अभ्यास से देखने योग्य है (गर्भिणीभिः) गर्भवती स्त्रियां
जैसे (सुभृतः) अपने गर्भ को अच्छे प्रकार स्मरण रख के
धारण करतीं वैसे धारण करने योग्य और (दिवे दिवे)
प्रति दिन वेद सन्त्रों के पाठ वा अर्थ विचार से (ईड्यः)
स्तुति करने योग्य है (एतद्वै तत्) इसी को ब्रह्म ज्ञान का
बड़ा साधन जानना चाहिये ॥

भा०—जैसे दो अरणियों में व्यास भी अग्नि बिना सधे
नहीं निकलता वैसे ही अन्तःकरण में व्यास भी परमेश्वर
योगाभ्यास किये बिना प्रकट नहीं होता । जैसे स्त्रियां गर्भा-
शय में गर्भ को जान के प्रति दिन उस में चित्त रखतीं और
यज्ञ से धारण पोषण करती हैं वैसे ही जिज्ञासु ध्यानयुक्त
सत्त्वगुण में ही जिन का चित्त स्थिर है उन पुरुषों को उचित

Gods are tried - i.e. the spirit is a test 4
(१४९)

है कि हमारे हृदय में अवस्थित ईश्वर है ऐसा मानके सदा स्मरण रखें कि हमारा पेट ईश्वर के बिना शून्य नहीं ऐसे दिन रात धारण कर स्तुति वा उपासना करें अर्थात् यज्ञों में तथा शरीरों में अग्नि नाम रूप से जो तत्त्व प्रतीत होता है वही ब्रह्म है जिसे तुम नचिकेता ने पूछा था ॥ ८ ॥

what is the result of the sacrifice of the body and the senses
that gods are satisfied that transcends mere
यतश्चोदेति सूर्यास्तं यत्र च गच्छति ।
13 Karly
तन्दिवाः सर्वेऽपितास्तदु नात्येति कश्चन ।
एतद्वै तत् ॥९॥

अ०—(सूर्यः) (यतः) यस्मात्प्राणात्
(च) (उदेति) उत्तिष्ठति (यत्र, च) य-
स्मिन्नेवाहन्यहनि (अस्तम्) तिग्लोचनम्
(गच्छति) (तम्) प्राणमात्मानम् (सर्वे)
(देवाः) अचिदैवतमग्न्यादयोऽध्यात्मं वा-
गाद्यभिमानिनश्च (अपिताः) प्राप्तास्तदाचा-
रास्तिष्ठन्तीति यावत् । स प्राणोऽपि ब्रह्मा-
त्मकएवास्ति । स्वार्थे णिच् (उ) (तत्) त-
त्सर्वात्मकं ब्रह्म (कश्चन) कश्चिदपि (न)
(अत्येति) तदात्मकतामतीत्य तदन्यत्वं न-
कोऽपि गच्छति (एतद्वै तत्) ॥

भा०—यः सूर्यादिलोकलोकान्तराणामु-
दयास्तादिनियतक्रियाणां नियामकः कारणम् ।

Various births & deaths through his ignorance of life & death. The Being (383) is manifested & absolute & the difference between the two is not material or different.

तदाश्रयेणैव चराचर जगत्स्वस्वनियमान्न वि-
चलति तदेतदेव ब्रह्म विज्ञातव्यं यत्त्रया
पृष्ठमिति ॥ ९ ॥

भाषार्थः—[सूर्यः] सूर्यलोक [यतः] जिस कारणात्मक
प्राणशक्ति से [च] ही [उदेति] उदय की प्राप्त होता [यत्र,
च] और प्रतिदिन जिसमें [अस्तम्] लीन [गच्छति] हो
जाता है [तम्] उस प्राणनाम रूप आत्मा को [सर्वे] सब
[देवाः] अधिदेव पक्षमें अग्नि आदि तथा अज्यात्म पक्षमें
बाणी आदि के अभिमानी देव [अर्पिताः] प्राप्त हैं अर्थात्
उसके आधार पर स्थित हैं [च] और [तत्] उस सर्वात्मक
ब्रह्म का [कथन] कोई [न, अत्येति] उलंघन नहीं करता
अर्थात् तदात्मकता को छोड़ के उससे भिन्न रूप कोई नहीं
हो सकता (एतद्वैतत्) इसी को ब्रह्म जानो ॥

भा०—जो सूर्यादि लोक लोकान्तरों के उदय अस्त आदि
नियत कामों का नियन्ता कारण है उसी के आश्रय से जड़
चेतन सब जगत् अपने २ नियम से चलायमान नहीं होता
उसी ब्रह्म को जानना चाहिये जिस को तुम नधिकेता ने
पूछा था ॥ ९ ॥ *No difference*

what is the absolute and accordingly after death he death means who are as different
यदेवैह तदमुत्र यदमुत्र तदन्वह ।
मृत्याः स मृत्युमाप्नोति य इह नानव-
पश्यति ॥ १० ॥

अ०—(यत्, एव) ब्रह्म (इह) अ-
स्मिन् जन्मनि शरीरे प्रत्यक्षे स्थूले च जीवरू-
पेण देहादीनां पालकं चारकं प्रकाशकं चा-

स्ति (तत्, अमुत्र) तदेव जन्मान्तरेषु सूक्ष्मे
 शरीरे च (यत्, अमुत्र) संसारस्य सर्वधर्म-
 वर्जितं नित्यविज्ञानघनस्वभावं निराकार-
 ममरमजरं परोक्षं ब्रह्म (तत्, अनु, इह)
 तदेव मनुष्यपशुपक्ष्याद्युपाधिषु जीवनामरू-
 पाभ्यामवस्थितमस्ति (यः) पुरुषः (इह)
 ब्रह्मणि (नानेत्र) भिन्नत्वमित्र (पश्यति)
 (सः) (मृत्योः) (मृत्युम्) (आप्नेति)
 मुहुर्मुहुर्जन्ममरणे एवाप्नेति ॥

भा०—यच्चेतनमात्मनश्चमिह मर्त्यलोके
 मनुष्यपशुपक्षिकोटपतङ्गस्थावरादिषु । जिदा-
 नन्दरूपेण सर्वं चेतयते नियमयति वा तदे-
 व स्वर्गादिपरोक्षलोकेष्वपि देवादिनामरूपा-
 भ्यां तत्रत्यान् चेतयते नियमयति वा । अ-
 र्थात् यत्प्रत्यक्षं तदेव परोक्षं यत्स्थूलं तदेव
 सूक्ष्मं बोध्यम् । जीवादिरूपेण यो भिन्नं प-
 श्यति नासौ मुच्यते ॥१०॥

भाषार्थः—(यत्, एव) जो ही ब्रह्म (इह) इस जन्म में
 वा स्थूल प्रत्यक्ष शरीरमें जीवरूप से देहेन्द्रियादि का धारण
 पालन वा प्रकाश करने वाला है (तत्, अमुत्र) वही जन्मा-
 न्तरों में तथा सूक्ष्म और अति सूक्ष्म कारण शरीरों में है
 (यत्, अमुत्र) जो परोक्ष में संसारस्य सब धर्मों से वर्जित

*is not - Having noticed Brahman by pure
operation that this universe is only the
an expression, of the same Brahman & so
no difference from it*

नित्य विज्ञान घन स्वभाव निराकार अजर अमर परोक्ष
ब्रह्म है (तत्) वही (अनु, इह) यहां मनुष्य पशु पक्षी
आदि उपाधियों में जीव नाम रूपों से अवस्थित है (यः) जो
पुरुष (इह) इस ब्रह्ममें (नानेव) भिन्नता को (पश्यति)
देखता है कि जीव तथा ईश्वर स्वभाव से ही पृथक् २ हैं (सः)
वह (मृत्योः) मृत्यु से (मृत्युम्) मृत्यु को (आप्नोति) पार २
पाता है अर्थात् मुक्त नहीं होता ॥

भा०—जो चेतन आत्मतत्त्व इस मर्त्यलोक में मनुष्य
पशु पक्षी कीट पतङ्ग और स्थावरादि में व्याप्त सज्जिदानन्द
रूपसे सब जड़ोंको चेतन करता वा नियनमें चलाता है वही
स्वर्गादि परोक्ष लोक में भी देवादि नाम रूपों से स्वर्गादिस्थ
प्राणियोंको चेतन करता वा नियन बहु चलाता है । अर्थात्
जो प्रत्यक्षमें है वही परोक्ष में है जो स्थूल है वही सूक्ष्म है
अर्थात् जो मनुष्य जीवादि रूप को ईश्वर से भिन्न देखता है
वह मुक्त नहीं हो सकता ॥१०॥

*By himself, this, to be attained, is very difficult, & is a
whatsoever from death, he is death, goes who lives
as different & sees*
मनसैव दमसिच्यं नेह नानास्ति किं-
चन । मृत्याः स मृत्यु गच्छति य इह
नानेव पश्यति ॥११॥

अ०—(इदम्) उक्तप्रकारेण सजाती-
यविजातीयस्वगतभेदशून्यमेकमद्वैतं ब्रह्मेति
(मनसैव) शास्त्रसंस्कारेण शुद्धया सूक्ष्मप्र-
ज्ञयैव (मनोत्रबुद्धिरित्यभिप्रेतम् । न संकल्प-
विकल्पात्मिका वृत्तिः) (आप्नोष्यम्) (इह)
ब्रह्मणि (किंचन) किमपि (नाना) प्रका-
शान्तरम् (नास्ति) (यः) (इह) (नानेव)

(पश्यति) (सः, मृत्योः, मृत्युम्, गच्छति) ॥

भा०—मनसैवेदमेकरसं सर्वस्मिंस्तत्तन्नामरूपैर्विद्यमानं ब्रह्म बोद्धव्यं नानात्वकारिकाया अविद्याया निवृत्तत्वादल्पतरमप्यनेकत्वं ब्रह्मणि न विद्यते । यस्त्वविद्यादृष्टिं न मुञ्चति किन्तु ब्रह्मणि नानात्वं जीवादिरूपेण पश्यति स जन्ममरणप्रवाहे पतत्येव ॥ ११ ॥

भाषार्थः—(इदम्) उक्त प्रकार से सजातीय विजातीय स्वगत भेद जिसमें नहीं, कोई द्वितीय ईश्वर नहीं है, विजातीय जीव वा प्रकृति भी स्वतन्त्र कोई नहीं तथा स्वगत भेद भी जिसमें नहीं ऐसा एक अद्वैत ब्रह्म है इस प्रकार ब्रह्मका (मनसैव) शास्त्रान्यास से शुद्ध हुई सूक्ष्म बुद्धि से ही (आसव्यम्) निश्चय करना चाहिये कि (इह) इस ब्रह्ममें [किंचन] कुछ भी [नाना] प्रकारान्तर (नास्ति) नहीं है [यः] जो पुरुष [इह] इस एक ब्रह्ममें [नानेव] अनेकता को [पश्यति] देखता है [सः, मृत्योःमृत्युम्, गच्छति] वह मृत्यु से फिर मृत्यु को प्राप्त होता है ॥

भा०—सब वस्तुओं में उस २ नाम रूप से विद्यमान एक रस ब्रह्मकी मनसे ही जानना चाहिये, भेदकारिणी अविद्याके निवृत्त होजाने से ब्रह्ममें अत्यल्प भेद भी नहीं दीखता । जो पुरुष अविद्या दृष्टि को नहीं छोड़ता किन्तु जीवादि रूप से ब्रह्ममें अनेकता को देखता है वह मनुष्य जन्म मरण से नहीं छूट सकता ॥११॥

1st man so called for a living in the city (पुत्री/496)
fills the whole (पुत्री) (पुत्री)

अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो मध्य आत्मनि
तिष्ठति । ईशानो भूतभव्यस्य न ततो
विजुगुप्सते । एतद्वै तत् ॥१२॥

अ०—निर्मलदर्पण रूपमिवास्मिन्नेव शुद्धे
शरीरस्थान्तःकरणे परमात्मोपलभ्यतइत्यु-
क्तम् । स कस्मिन् प्रदेशे तिष्ठतीत्युच्यते (मध्ये)
(आत्मनि) शरीरे (अङ्गुष्ठमात्रः) अङ्गुष्ठ-
परिमाणं हृदयरूपं वेश्म यत्र लिङ्गशरीरेण
साकं चिदाभासरूपो जीवस्तिष्ठति तदेव पर-
मात्मनःस्वरूपमनोऽङ्गुष्ठमात्रस्थानोपलभ्यत्वा-
दङ्गुष्ठमात्रइत्युच्यते (पुरुषः) सर्वत्र पूर्णो
व्याप्तः (तिष्ठति) (भूतभव्यस्य) अतीता
नागतसर्ववस्तुजातस्य (ईशानः) अध्यक्षा-
ऽस्ति (ततः) तस्मादात्मनः कोपि (न वि-
जुगुप्सते) न ग्लायति दीर्घमनस्य वा न भवति
तज्ज्ञानस्य दुःखवारकत्वात् (एतद्वै, तत्)
यत्त्वया पृष्ठं तदेतदेव ब्रह्मास्तीति विजानीहि ॥

भा०—योऽतीतानागतसर्ववस्तूनामध्यक्षः
परमेश्वरः स एव दर्पणवत्स्वच्छे बुद्धिर्ज्योति-
ष्यङ्गुष्ठमात्रपरिमितहृदये लभ्यत्वादङ्गुष्ठ-

*He is very old - He must immortally, through
times past, future & present.*

मात्र इत्थं च्यते । स एवाभासरूपेण जीवाऽस्ति त
ये जानन्ति न ते ग्लायन्ति किन्तु प्रसीदन्त्येव ॥१२॥

भाषार्थः—निर्मल दर्पण में जैसे रूप दीखता है वैसे इसी
शरीरस्थ शुद्ध अन्तःकरण में परमात्मा का ज्ञान होता यह
पहिले कई बार कहा है वह शरीर के किस स्थल में रहता
है सो कहते हैं—(अंगुष्ठमात्रः) अंगुठेकी घरावर हृदयरूप
घर में स्थित अर्थात् वहां लिङ्ग शरीर सहित त्रिदाभासरूप
जीवात्मा रहता है वही परमात्मा का स्वरूप है इस लिये
अंगुष्ठमात्र स्थान में प्राप्त होने से अंगुष्ठ मात्र कहा गया
[पुरुषः] सर्वत्र परिपूर्ण व्याप्त परमात्मा [आत्मनि] [मध्यं]
शरीर के बीच में [तिष्ठति] विराजमान है वह [भूतभव्यस्य]
भूत भविष्यत्में होने वाले सब पदार्थोंका [ईशानः] स्वामी है
[ततः] उस आत्मासे कोई [न, विदुः] गुप्तते ग्लानिको प्राप्त नहीं
होता अर्थात् उसका जानना दुःख नाशक है इस कारण किसी
को दुःख नहीं होता । [एतद्वै तत्] जिस को तुम न भिकेता ने
पूछा या वह यही ब्रह्म है ऐसा तुम जानो ॥

भा०—जो भूत भविष्य में होने वाले सब वस्तुओं का
स्वामी परमेश्वर है वही दर्पण के तुल्य स्वच्छ प्रकाशमान
अंगुष्ठ परिमित हृदयस्थ बुद्धि में प्रतिबिम्बित होने से प्राप्त
होने योग्य अंगुष्ठ मात्र कहाता है । वही त्रिदाभासरूप
जीव है उस आत्मा को जानने वालों को ग्लानि न होकर
प्रसन्नता होती है ॥१२॥

signifying as pure like light smokeless
अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो ज्योतिरिवाधूमकः ।
It is not so pure as the truly, smokeless
ईशानी भूतभव्यस्य स एवाद्यस उ इवः ।

एतद्वै तत् ॥१३॥

120 the one really appears to be the
 the roughness of the ground makes the water
 many directions (1845) roughness of life
 to the same units of half the distance
 the same sides of the hill down the same
 far as—[अङ्गप्रमात्रः] स एवाङ्गप्रमात्रस्या-
 नीयः (पुरुषः) पुरि ब्रह्माण्डे विशेषण श-

रीरैकदेशे हृदये वा शयानो विद्यमानो जी-
 वामिन्नः परमेश्वरः (अधूमकः) अधूमकं धू-
 मरहितं निर्मलम्। लिङ्गव्यत्ययः [ज्योतिरिव]
 ज्ञानप्रकाशमयः [भूतभव्यस्य] [ईशानः]
 [स एव] [अद्य] सर्वाध्यक्षः [स, उ, इवः] स ए-
 वांगामिनि दिवसेऽपि सर्वस्वामी भविष्यति
 (एतद्वै तत्) तदेतदेव ब्रह्मास्ति ॥

भा०—यद्या लोके राज्याद्यधिकारिणां
 स्थितिरनित्यास्ति कश्चिन्म्रियते तदाऽन्योऽध्य-
 क्षस्तत्र तिष्ठति निर्बलं पूराजित्य बलवान्
 वाधिकारी भवति । एवं सर्वाधिकारिणां व्य-
 त्ययो दृश्यते । तथा ज्ञानप्रकाशस्वरूपस्य
 सदैकरसस्य साम्यातिशयविनिर्मुक्तैश्वर्यवत-
 स्सर्वोपरिवलवतः परमेश्वरस्याधिकारे न क-
 श्चित्कदाचित्तिष्ठति स्यातुमर्हति वा स्वका-
 र्यस्य सर्वथा स्वयमेवाध्यक्षः सोऽस्ति प्रेते श-
 रीरे योऽत्रशिष्टः स एव जीवेश्वरयोरभेदेन स-
 दैक एवात्माऽस्ति ॥१३॥

*man not clean. Probable in various the
man water suffer destruction & defilement
at the hill side, all according to unity &
no the man who sees difference in life the for
adjustment*

सोधीये (अहं गुणमात्रः) वही अगुठा भर स्थानमें प्राप्त
होने योग्य (पुरुषः) ब्रह्माण्ड वा विशेषकर शरीरस्थ हृदय
में विद्यमान जीवसे अमिबं परमेश्वर (अधूमकः) घूम रहित
निर्मल (ज्योतिरिव) ज्योति के समान ज्ञान प्रकाश स्वरूप
(भूतभृद्यस्य) भूतभविष्यत् का (ईशानः) स्वामी (स एव)
(अद्य) वही आज सब का अध्यक्ष है (स, उ, इवः) और
वही काल रहेगा (एतद्वै तत्) वह यही ब्रह्म है ॥

भा०—जैसे लोक में राज्याधिकारियों की स्थिरता अ-
नित्य है कोई मर जाता है तो उस के अधिकार पर दूसरा
नियत किया जाता अथवा निर्बल राजा को बलवान् हराके
अधिकारी बन बैठता है इसी प्रकार संसार में सब अधिका-
रों की बदली होती रहती है वैसे ज्ञानप्रकाश स्वरूप सदा
एकरस सर्वोपरि ऐश्वर्यवान् तथा बलवान् परमेश्वर के अधि-
कार पर कभी कोई स्थित नहीं होता तथा न होने योग्य है
अर्थात् वह एक ही स्वयं सदा अपने कामों का अधिष्ठाता
है मनुष्य के मरजाने पर जो आत्मा नहीं मरता किन्तु वि-
द्यमान रहता है, वही जीव और वही ईश्वर सदा एक रूप
एक ही आत्मा है ॥ १३ ॥

*as the rain falls on the hill sides
no attributes different mountains peaks*
यथादिकं दुर्गे वृष्टं पर्वतेषु विधावति ।
एवं धर्मान् पृथक् पश्यस्तानवानुविधा-
वति ॥ १४ ॥

अ०—(यथा) (दुर्गे) दुर्गमें विषम
प्रदेशे (वृष्टम्) (उदकम्) (पर्वतेषु) नि-
म्नप्रदेशेषु (विधावति) (एवम्) (धर्मान्)

*acquires the self - the self of the self who
when purged of is (१५०) dross, the ego by the
+ knowledge becomes one with the universe
+ Brahman.*

धर्मितः (पृथक्) (पश्यन्) (तानेव) ध-
र्मानिव (अनुविधावति) पश्चाद्गच्छति ॥

भा०—द्वैतभेददर्शिना निन्द्या दर्शयति
यथोक्तपदेषु वृष्टं जलं पर्ववन्प्रदेशेषु विली-
यते तथैव नानाभेदहेतून् धर्मानिकात्मतः पृ-
थक् विजानन् तानेव शरीरभेदान् पुनः पुन-
राप्नोति संसारान्न मुच्यन् इत्याशयः ॥ १४ ॥

भाषार्थः—(यथा) जैसे (दुर्गे) दुर्गस विषस जंचे नीचे
स्थलमें (वृष्टम्) वर्षा (उदकम्) जल (पर्वतेषु) नीचे स्थलों
में (विधावति) भागता २ नष्ट हो जाता है [एवम्] इसी
प्रकार (धर्मान्) धर्मों वा गुणों को आत्मासे (पृथक्) भिन्न द्वैत
रूपसे (पश्यन्) देखता हुआ (तानेव) उन्हीं भेदक धर्मों का
अनुविधावति] अनुगामी होता अर्थात् शरीर भेदोंमें पुनः २
उत्पन्न होते हैं, धर्मों को भिन्न देखना सोलका बाधक है ॥

भा०—द्वैतवादी वा भेदवादी की निन्द्या दिखाते हैं—जैसे
जंचे पहाड़ पर वर्षा जल नीचे के भागों में पड़ता २ नष्ट हो
जाता है । वैसे ही अनेक भेद होने के कारणों को एक आत्म
वस्तु से पृथक् जानता हुआ उन्हीं अनेकविध योनियों को
बार २ प्राप्त होता है अर्थात् संसार से मुक्त नहीं होता अ-
र्थात् भेदकारक हेतु स्वतन्त्र आत्मा से भिन्न स्वाधीन वस्तु
नहीं हैं ॥ १४ ॥

becomes pure
यथोक्तं शुद्धे शुद्धमासिक्तं तादृगिव
becomes pure
भवाति । एव मुनाविजानत आत्मा भवाति
becomes pure
गौतम ॥ १५ ॥

अ०—हे (गौतम) गौतमवंशोत्पन्न न-
चिकेतः (यथा) (शुद्धे) प्रसन्ने (शुद्धम्)
(आसिक्तम्) समन्तात् सिक्तम् (उदकम्)
(तादृगेव) शुद्धमेव (भवति) (एवं, वि-
जानतः, मुनेः) एकत्वमद्वैतमभेदं विज्ञातव-
तोऽल्पभाषिणो ज्ञानिनः (आत्मा) एकत्व-
मापन्नः (भवति) जायते ॥

भा०—उपाधिभूतं भेदज्ञानं यस्य नष्टं
यश्च विशुद्धविज्ञानघनैकरसमद्वितीयमात्मा-
नं पश्यति तस्य शुद्धजलयोः सम्पर्कवत्पर-
मात्मन्येकत्वं भवति न स पुनरावर्त्तते ॥१५॥

॥ इति चतुर्थी बल्लो समाप्ता ॥

भावार्थः—हे (गौतम) गौतम वंशी नचिकेता (यथा) जैसे
(शुद्धे) शुद्ध जलमें (आसिक्तम्) अच्छे प्रकार सींचा हुआ (शुद्धम्)
शुद्ध निर्मल (उदकम्) जल (तादृगेव) शुद्ध एकात्मक जलही
(भवति) हो जाता है (एवं) इसी प्रकार एक अद्वैतरूप
अभेदको (विजानतः) जानते हुए (मुनेः) अल्पभाषी ज्ञानी
पुरुष का (आत्मा) आत्मा एक अद्वैत भाव को प्राप्त (भवति)
हो जाता है ॥

भा०—शरीर सम्बन्धित उपाधि से होने वाला जिसका
भेदज्ञान नष्ट हो गया और जो शुद्ध विज्ञानस्वरूप एकरस अ-
द्वैत आत्मा को देखता है । दो शुद्ध जलों का ठीक एकाकार
मेल होजाने के तुल्य उस अनुब्य की परमात्मा के साथ एक-

the free (from birth & death) this is really the
 5 - 7 in head, 1 in (1942) a lower one, 1 in the
 The Self 15

ता हो जातो है उसकी पुनरावृत्ति फिर नहीं होती ॥ १५ ॥

यह चौथी बल्ली समाप्त हुई ।

पुरमेकादशद्वारमजस्यविक्रचेतसः । अ-
 नुष्ठाय न शोचति विमुक्तश्च विमुच्यते

एतद्वै तत् ॥ १ ॥

अ०—अथ पञ्चमो बल्ली प्रारभ्यते त-
 स्यामादितः प्रत्यगात्मविज्ञानं वक्तुं प्रक्रमते
 (अजस्यचेतसः) अवक्रमकुटलं चेतो वि-
 ज्ञानमस्य तथाभूतस्य (अजस्य) कुतश्चि-
 त्कारणादनुत्पन्नस्यानादेर्नित्यात्मनः (एका-
 दशद्वारम्) शिरसि सप्त पायूपस्थनाभयस्त्रो-
 ष्यधस्यानि मूर्द्धन्येकमित्येकादशछिद्रसम्पन्न-
 म् (पुरम्) पत्तनमिव राजस्थानीयं भोग-
 साधनं स्थूलं शरीरमस्ति (अनुष्ठाय) य-
 स्योक्तविधं पुरं तं पुरस्वामिनं परमेश्वरं ध्या-
 त्वा सर्वैषणाविनिर्मुक्तः सन् सर्वभूतस्थं समं
 ध्यात्वा (न, शोचति) ऋणत्रयात् (विमु-
 क्तश्च) शरीरादपि (विमुच्यते) पुनर्न जा-
 यते (एतत्, वै, तत्) एतदेव तत्त्वया पृ-
 ष्टमात्मतत्त्वं विद्धि ॥

भा०—यथा यस्मिन् परितः कृतप्राकारे प-

त्तने गमनागमनाय द्वाराणि भवन्ति तत्स-
म्यग्विज्ञानसम्पन्नः पुरस्वामी राजा राजधर्म-
पुरस्सरं संसेवते धर्मानुकूलवर्त्ती सन् शोका-
कुलो न जायते तथैव परित्यक्तमिध्याज्ञानः
सम्यग्दर्शनसम्पन्नः कार्यसाधकैकादशछिद्रे-
न्द्रियसहितं नगरस्थानीयं शरीरमाश्रमत्रये
धर्मानुकूलं संसेव्य चतुर्थाश्रमस्थः पुरुषो तत्त्वं
जानन् न शोचति शरीरं विहाय मुक्तश्च
भवत्येतदेव ब्रह्मात्मतत्त्वम् ॥ १ ॥

भाषार्थः—अब पांचवीं वस्ती का प्रारम्भ किया जाता है उसके प्रारम्भ से शरीर में जीवरूप से स्थित अन्तरात्माके जानने का उपाय कहते हैं (अवक्रचेतसः) जिसका कुटिल वा उलटा ज्ञान नहीं उस (अजस्य) किसी उपादान कारण से न उत्पन्न होने वाले अनादि नित्य आत्मा राजा के (एकादशद्वारम्) ग्यारह दरवाजे (आंख के दो नाक के दो कान के दो एक मुख का, गुदा, लिङ्ग, दो नीचे के एक नाभि एक मस्तक में ये ग्यारह छिद्र रूप शरीर में द्वार हैं) वाले (पुरुष) शरीर रूप नगरको (अनुष्ठाय) उक्त प्रकार का नगर वाले राजमहल के स्वामी परमेश्वर का ध्यान करके सब प्रकार की वासनात्मक इच्छाओं से मुक्त हुआ अपने को सब में एक रूप से स्थित जान के (न, शोचति) शोच नहीं करता और ऋषि देव और पितृ सम्बन्धी तीनों ऋणोंसे (विमुक्तश्च) छूटा अर्थात् तीन आश्रमों धर्मोंके सेवन से तीनों ऋण चुका के शरीरसे भी (विमुच्यते) छूट जाता है (एतद्देव तत्) सो यही शरीरस्थ आत्मा ब्रह्म है ॥

mountains; the 3rd The Greek present native of At 194 is essential here. - as aquatic animals & insects - from plants, trees etc.

मौन-जैसे जिस नगर में सब ओर से परकोटा खिंचा हो और आने जाने के लिये कई दरवाजे नियत कर दिये जायें उसको सम्यग् ज्ञान शील नगराधीश राजा राजधर्म के अनुकूल सेवन करे वह राजा धर्मानुकूल वर्ताव करने से शोकातुर नहीं होता वैसे ही जिसने सिध्याज्ञान छोड़ दिया वह तत्त्वज्ञानी पुत्र्य कार्यों से सिद्ध करने वाले ११ छिद्रों (सात शिर में दो नीचे इस में ९ छिद्र तो प्रसिद्ध हैं १ नाभि जिसके द्वारा रस पहुंच कर गर्भ का शरीर बनता है । १ छिद्र सूर्धा में होता है वहां गर्भावस्था में सूदन त्वचा पुर जाती है डढ़ दो वर्ष तक के बच्चों का वही स्थल सूर्धा में फड़कता रहता है वही द्वार है वे ११ छिद्र हैं । स्त्री के उपर्य में दो छिद्र होते हैं १ सूत्र का एक जनने का उसके १२ होंगे यहां पुरुष के ११ छिद्र कहे हैं) वाले नगरस्थानी शरीर का तीन आश्रनोंमें धर्मानुकूल सेवन कर पुरुष चौथे संन्यास आश्रम में शोकातुर नहीं होता और शरीर को छोड़के मुक्त हो जाता है यही देहस्य आत्मा है ॥ १ ॥

The Sun is the source of all life in the universe. The Sun is the source of all life in the universe. The Sun is the source of all life in the universe.

हंसः शुचिषट्सुरन्तरिक्षमद्वाता वदिष-
दातिथिदेराणसत् । नषट्सदृत्सद्व्योम-
सद्वजा गाजा ऋतजा आद्रजा ऋतम्बु-
हत् ॥ २ ॥ *self is all in all*

अ०--अस्यैवं शरीरस्थस्यात्मनः सर्वत्र स्थितिं दर्शयति (हंसः) हन्ति शराराच्छरा-
रान्तरं गच्छतीति हंसः । ओणादिकः सः प्र-
त्ययः (शुचिषत्) शुचावकाशे व्युल्लोका-

दित्यात्मना सीदति (वसुः) यो वसति मनुष्य-
 दिशरीरेषु वासयति वा सर्वान् सः (अन्तरिक्षसत्)
 मध्यवर्त्तिन्यन्तरिक्षे यो वाय्वात्मना सीदति सः
 (हाता) अग्निरूपेण सर्वगः (वेदिषत्) वेद्यां
 पृथिव्यां सीदति चराचररूपेण । इयं वेदिः
 परो अन्तःपृथिव्या इति वेदमन्त्रप्रामाण्याद्वे-
 दिशब्देन पृथिवी गृह्यते । (अतिथिः) अति-
 थिवदादरणीयः सोमः (दुरोणसत्) दुरोणे
 गृहे कुट्यादौ सीदति यद्वा दुरोणे द्रोणकलशे
 सीदतीति दुरोणसत् (नृषत्) मनुष्यशरीरे
 सीदति (वरसत्) वरे श्रेष्ठे देवब्रह्मर्ष्यादि
 विग्रहे सीदति (ऋतसत्) ऋते यज्ञे सत्ये
 ब्रह्मणि वा सीदति (व्योमसत्) व्योम्नि--आ-
 काशे तदात्मना सीदति (अब्जाः) अप्सु
 जलजन्तुमकरादिरूपेण जायते (गोजाः) गवि
 पृथिव्यां ब्रीहियवघासादिस्थावररूपेण जायते
 (ऋतजाः) ऋताद्ब्रह्मणो जायत उत्पद्यते
 (अद्रिजाः) अद्रिभ्यः पर्वतेभ्यो नद्यादिरूपेण
 जायते (ऋतम्) स्वयमपि सत्यस्वरूपम्
 (बृहत्) सर्वकारणत्वान्महत्परिमाणम् ॥

भा०—स्वात्मानमेव सर्वात्मकं पश्येत् ।
सर्वस्मिन् ब्रह्माण्डे सर्ववस्त्वाकारेणाहमेवा-
स्मीति ध्यायन् शोकमोहौ जहाति ॥ २ ॥

भाषार्थ—इसी पूर्वोक्त शरीरस्थ आत्मा की सर्वत्रस्थिति दिखाते हैं (हंसः) एक शरीरसे दूसरे शरीरमें जाने (शुचि-
पत्) पवित्र स्थल स्वर्गमें आदित्य रूप से स्थित होने (वसुः)
मनुष्यादि योनियों में वसने वा सबको वसाने वाला (अ-
न्तरिक्षत्) मध्यवर्ती अन्तरिक्षमें वायु रूप से रहने (होता)
अग्निरूप से सब में व्याप्त (वेदिपत्) चराचर जीवरूप से
वेदिनाम पृथिवी में रहने (इयंवेदिः०)—इस मंत्र में वेदि
शब्द पृथिवीका वाचक है इसलिये वेदि शब्दसे पृथिवी ली
गई (अतिथिः) जिसके आने जानेकी तिथि नियत नहीं ऐसे
अतिथि के तुल्य पूजनीय सोम (दुरोणसत्) अपने आश्रम जुटी
आदि घरमें वा द्रोण कलशमें ठहरने (नृषत्) मनुष्य शरीर
धारण करने (वरसत्) श्रेष्ठ देवता वा ब्रह्मर्षि आदिके शरीरमें
रहने (ऋतसत्) यज्ञ वा सत्य ब्रह्ममें स्थिर होने (व्योमसत्
आकाशमें अपने स्वरूप से ठहरने (अव्जाः) जलमें मगर-आदि
जल जन्तु रूपसे उत्पन्न होने (गोजाः) वृक्ष वनस्पत्यादि वा
व्रीहि यवादि रूप से पृथिवी में उत्पन्न होने और (ऋतजाः)
ऋत नाम ब्रह्म का भी है उस से उत्पन्न (अद्रिजाः) पर्वतोंसे
नदी आदिके रूपसे उत्पन्न होने वाला (ऋतम्) सत्यस्वरूप
(वृहत्) संनका कारण होने से महाप्रमाणा वाला है ॥

भा०—अपने को ही सर्व रूप से विद्यमान देखें । सब
ब्रह्माण्डमें सब वस्तु स्वरूपसे मैं ही विद्यमान हूँ देखें । व्यापन
करता हुआ शोक मोह को त्याग देता हूँ ॥ २ ॥

from the outside world & present even to him the
worship. All the suns of 949 } & Pranas became as
the Atman.

उध्व प्राणिमन्त्रयत्युपानं प्रत्यगस्यति ।
मध्यं वामनमासानं विश्वं देवा उपासते ॥३॥

अ०-यो जीवात्मा योगाभ्यासावसरे (प्रा-
णम्) हृदिस्थितं प्राणवायुम् (ऊर्ध्वम्) (उ-
क्षयति) (अपानम्) गुदेन्द्रियसंचारिणं वायुम्
(प्रत्यक्) अधः (अस्थति) क्षिपति तम् (मध्ये)
नाभिकण्ठयोर्मध्ये (आसीनम्) (वामनम्)
वामं नित्यप्रशस्तं शुद्धं ज्योतिःस्वरूपं विद्य-
तेऽस्य सवामनः । पामादित्वावस्तद्धितः । एवं
भूतमात्मानं प्रजा राजानमिव (विश्वे)
सर्वे (देवाः) ज्ञानेन्द्रियाभिगानिनो देवाः
(उपासते) सेवन्ते ॥

भा०—शारीर आत्मा यदा योगाङ्गानुष्ठानेन
स्वरूपेऽवतिष्ठते तदा प्रत्यगात्मभूता इन्द्रिय-
शक्तय आसनमध्यासीनं राजानमिव तमा-
त्मानमन्तःकरणरूपे सदस्युपासते ॥ ३ ॥

भाषार्थः—जो जीवात्मा योगाभ्यास के समय (प्राणस्) हृदयमें रहने वाले प्राण वायु को (ऊर्ध्वस्) ऊपर ब्रह्माण्ड में (उन्नयति) आकर्षण करता (अपानस्) गुदाद्वारा नीचेको चलाने वाले वायु को (प्रत्यक्) नीचे (अत्यति) फैकता है उस (मध्ये) नाभी और कण्ठके बीच अन्तःकरणमें (आसीनस्) स्थित (वासनम्) प्रशस्त नित्य शुद्ध प्रकाशस्वरूप यक्त आत्मा

की (जैसे प्रजाजन राजा को वैसे) (विश्वे) सब (देवाः) व्यवहार साधक इन्द्रियोंके अभिनानी देवता लोग (उपासते) सेवन करते हैं ॥

भा०—शरीरस्थ आत्मा जब यम, नियम, आसन प्राणा-यानादि योग के अवयवों के सेवन से अपने स्वरूप में स्थित होता है तब भीतर अन्तःकरण की ओर फिरी हुई इन्द्रियों की शक्तियां राजगद्दी पर बैठे राजा के तुल्य उस आत्माको अन्तःकरण रूप समामें सेवन करते (अर्दलीमें हाज़िर रहते) हैं अर्थात् जितेन्द्रिय हो जाता है ॥ ३ ॥

^{as this} अस्य ^{When Who is separated existing with the body} विस्मयमानस्य ^{as from the body (one) from the body who has} शरीरस्थस्य ^{of him who has} देहिनः । ^{what he} देहाद्विमुच्यमानस्य ^{seems} किमत्र परि-
शिष्यते । एतद्वै तत् ॥ ४ ॥

अ०—(अस्य) (शरीरस्थस्य) (देहिनः) देहः शरीरमस्योस्तीति सम्बन्ध इतिः (विस्मय-समानस्य) अश्चयमानस्यार्थात् (देहात्) कलेवरात् (विमुच्यमानस्य) (किम्) लक्ष्म (अत्र) (परिशिष्यते) न किमपीत्यर्थः । यस्य च भ्रंशो देहाद्विमोचनं वा न भवति (एतद्वैतत्) एतदेव ब्रह्मास्तीति बोध्यम् ॥

भा०—यदा जीवोऽऽश्माच्छरीरान्निस्सरति तदा तस्य सर्वा प्राणेन्द्रियशक्तयस्तेन साक-मेव बहिर्निस्सरन्ति न किमप्यत्र परिशिष्यते

यच्च विस्त्रंसनविमोचनाभ्यां पृथगवशिष्यते
तदेव ब्रह्मास्तीति ज्ञेयम् ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(अस्य) इस (शरीरस्थस्य) शरीर में रहने वाले (देहिनः) शरीर के स्वामीके (विस्त्रंसनानस्य) पृथक् होते अर्थात् (देहात्) शरीर को (विमुक्त्यमानस्य) छोड़ते हुए जीवात्मा का (किम्) क्या चिन्ह (अत्र) इस शरीरमें (परिशिष्यते) शेष रह जाता है ? अर्थात् कोई नहीं और जिस को दुःखमें गिरना वा शरीर से पृथक् होना नहीं होता (एतद्वैतत्) वह यही ब्रह्म है सो जानना चाहिये ॥

भा०—जब मरण समय जीवात्मा इस शरीरसे निकलता है तब उसके इन्द्रिय और प्राणों की सब शक्ति उसके साथ ही निकल जाती हैं किन्तु शरीरमें चेतनका कोई चिन्ह शेष नहीं रह जाता और जिसको शरीर के संयोग वियोगसे दुःख नहीं पहुंचता वही ब्रह्म जानने योग्य है ॥ ४ ॥

न प्राणन नापानन मर्त्यो जीवति
कश्चन । इतरेण तु जीवन्ति यस्मिन्ना-
वुपाश्रितौ ॥ ५ ॥

अ०—(कश्चन) (मर्त्यः) मरणधर्मा देहेन्द्रियसंघातो मनुष्यः (न, प्राणेन) (न, अपानेन) (जीवति) किन्तु (यस्मिन्) अन्तरात्मनि (एतौ) प्राणापानौ (उपाश्रितौ) तेन (इतरेण) प्राणापानाभ्यां भिन्नेनात्मना (जीवन्ति) देहेन्द्रियबुद्धिमनःसंघाता इति शेषः ॥

भा०-अज्ञा लौकिका जानन्ति वदन्ति
 च प्राणापाननिरोधएव देहिनां मरणमिति ।
 अतएव ते निर्बीजसमाधिस्थान् योगिनेऽपि
 मृत्नां ज्ञातुं शक्नुवन्ति तच्च मिथ्याज्ञान-
 मिति । प्राणापाननिरोधेऽपि प्राणापानाधिक-
 रणेन विद्यमानेनात्मना मर्त्यो जीवत्येव एत-
 देव परमात्मनो रूपम् ॥ ५ ॥

भाषार्थः—(कच्चन) कोई (मर्त्यः) मनुष्य (न, प्राणेन)
 न प्राण से और (न, अपानेन) न अपानसे (जीवति) जीता है
 किन्तु (यस्मिन्) जिस अन्तरात्मा में (एतौ) ये दोनों प्राण
 अपान (उपाश्रितौ) आश्रित हैं (इतरेण) प्राण-अपान से
 भिन्न वर्तमान उस आत्मा की सत्ता से जड़ चेतन के संयोग
 से बने शरीर समुदाय (जीवन्ति) जीवित रहते हैं ॥

भा —संसारी अज्ञ मनुष्य जानते वा कहते हैं कि प्राण
 अपान का बन्द होना ही मनुष्य का मरना है । इसी लिये
 वे निर्बीज समाधिस्थ योगियों को भी मरे जान ले सकते हैं
 सो मिथ्या ज्ञान है क्योंकि प्राणापान के बन्द होने पर भी
 उनके आधार विद्यमान आत्मा से मनुष्य जीता ही है यही
 अन्तरात्मा साक्षात् परमेश्वर है इससे भिन्न जीव कोई अ-
 न्य नहीं है ॥ ५ ॥

हन्त ते इदं प्रवक्ष्यामि गुह्यं ब्रह्म
 सनातनम् । यथा च मरण प्राप्य आत्मा
 भवति गौतम ॥ ६ ॥

अ०—हे (गौतम) गौतमवंशावतंस नचिकेतः ! (हन्त) अनुकम्पायाम् (ते) तुभ्यम् (इदम्) प्रस्तुनम् (सनातनम्) (गुह्यम्) अधिकारिणएव त्वादृशे कस्मैचिदे कान्त उपदेश्यम् (ब्रह्म) (प्रवक्ष्यामि) उपदेक्ष्यामि त्वमेकाग्रमनाः शृणु (यथा, च) यस्याविज्ञानात् (मरणम्) (प्राप्य) (आत्मा) निरन्तरं देहाद्देहान्तरं गन्ता (भवति) तदपि त्वं शृण्वति वाक्यशेषः ॥

भा०—यद्यपि ब्रह्मज्ञानोपदेशं कर्तुं पूर्वत-
एव मोदेवः प्रवृत्तस्तथाप्यनुकम्पायुक्तः पुन-
राह—इदानीं सनातनस्य ब्रह्मणो ज्ञानमेव
प्राधान्येन वक्ष्यामि यदविज्ञाय मनुष्यः संसा-
रचक्रेऽनिशं भ्रमति तदपि वक्ष्यामि त्वं शृणु ॥६॥

भाषार्थः— हे (गौतम) गौतम कुल के दीपक (हन्त)
कृपा करने योग्य नचिकेतः (ते) तेरे लिये (इदम्) इस (स-
नातनम्) सनातन (गुह्यम्) तेरे लिये किसी अधिकारी की
ही उपदेश करने योग्य (ब्रह्म) ब्रह्म का (प्रवक्ष्यामि) उपदेश
करूंगा तू एकाग्र चित्त होकर सुन (च) और मनुष्य (यथा)
जैसे अर्थात् अपने स्वरूपको न जानने से (मरणम्) मरण
को (प्राप्य) प्राप्त होकर (आत्मा) शरीर से शरीरान्तरको
जाने वाला (भवति) होता है अर्थात् बार २ जन्म मरण प्र-
वाह में पड़ता है सो भी कहूंगा तुम सुनो ॥

*in our case. speaks of the Law of Karma & re-
 nation. According to the Salt pie Law & the
 re-birth rule from the plane of lower life*

भा०—यद्यपि ब्रह्मज्ञानको उपदेश करने को यमराज पहिले
 से ही प्रवृत्त हैं तो भी कृपायुक्त होकर फिर बोले कि ब्रह्म
 मुख्य कर सनातन ब्रह्म का ज्ञान ही कहूंगा जिस को न जान
 कर संसार चक्र में मनुष्य प्रतिदिन असता है उस को भी
 कहूंगा तुम सुनो ॥ ६ ॥

*Woman after go to have a body some what
 in body some go according to work according to knowledge*

योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय दोह-
 नः । स्थाणुमन्येऽनुसंयन्ति यथाकर्म यथा-

श्रुतम् ॥ ७ ॥

अ०—(अन्ये) ब्रह्मज्ञानविमुखाः (दे-
 हिनः) मनुष्याः (यथाकर्म) यादृशं यस्य
 कर्म यावच्च (यथाश्रुतम्) यादृशं यावच्च
 शास्त्रविज्ञानं लब्धं तादृशसंस्कारजन्यवास-
 नाद्भुजुभिराकृष्यमणाः केचित् (शरीरत्वाय)
 मनुष्यादिशरीरभावाय शरीरग्रहणार्थम् (यो-
 निम्) शुक्रशोणितसंयुतम् योनिद्वारम् (प्र-
 पद्यन्ते) प्राप्नुवन्ति (अन्ये) केचित् मा-
 नसपापकारिणः । मानसैः कर्मदोषैर्याति स्था-
 वरतां नरः । मनु० अ० १२ (स्थाणुम्) वृक्षा-
 दिस्थावरभावम् (अनुसंयन्ति) अनुगच्छन्ति ।

भा०—ये ब्रह्मज्ञानाय न प्रयतन्ते ते
 मूढा जन्मान्तरे पूर्वसंचितकर्मानुसारमुत्तम-

*no man can see all the worlds & none can transcend
 truly this is that. (1963)
 (Shaping is only in dream.)*

मध्यमलिकृष्टयोनीः प्राप्य दुःखान्येव भुञ्जते
 योनिमन्यइति कथनात्प्रतीयते यच्छुक्रशो-
 णिताभ्यां सहैव गर्भाशये जीवः प्रविशति ॥७॥

भाषार्थः—[अन्ये] ब्रह्मज्ञानी से अन्य [देहिनः] मनुष्य
 [यथाकर्म] जैसा वा जितना जिसका कर्म हो वा [यथाश्रु-
 तम्] जैसा वा जितना शास्त्रज्ञान जिसको प्राप्त हुआ हो वैसे
 संस्कारों से हुई वासना रूप रस्सियों से बंधे खिंचे हुए [श-
 रीरत्वाय] मनुष्यादि का शरीर धारण करने के लिये [यो-
 निम्] वीर्य और रुधिर संयुक्त गर्भाशयको [प्रपद्यन्ते] प्राप्त
 होते हैं [अन्ये] और कोई मनसे पाप करने वाले अति निकृष्ट
 विचार के प्राणी [स्थाणुम्] वृद्धादि स्थावर योनियों को
 [अनुसंयन्ति] सरणानन्तर प्राप्त होते हैं ॥

भा०-जो लोग ब्रह्मज्ञान होने के लिये प्रयत्न नहीं करते
 वे मूर्ख पूर्व जन्मान्तरों में किये कर्मों के अनुसार उत्तम म-
 ध्यम निकृष्ट योनियोंको प्राप्त होके दुःख ही भोगते हैं । इसी
 मन्त्र में [योनिमन्ये०] कृष्णसे सिद्ध होता है कि शुक्र शो-
 णित के साथ ही जीव गर्भाशय में प्रवेश करता है ॥ ७ ॥

य एष सुप्तः जागते काम कामं
 पुरुषा निमिमाणाः । तदेव शुक्र तदब्रह्म
 तदेवामृतमुच्यते । तस्मै लोकाः श्रिताः
 सर्वे तदु नात्पति कश्चन एतद्वै तत् ॥८॥

अ०- (यः, एषः) आत्मा (पुरुषः) पुरि
 ब्रह्माण्डे शयानो व्याप्तः (कामकामम्) तं

तमभिप्रेतम् वोप्सायां द्विर्वचनम् (निर्दिष्टाणः)
 स्वप्ने कान्तादिरूपं विषयमविद्याया प्रकल्प-
 यन् (सुप्तेषु) श्रोत्रादीन्द्रियेषु सुप्तेषु सत्सु
 (जागर्त्ति) स्वप्नान्पश्यति सुषुप्तौ च स्वसत्तया
 तिष्ठति (तदेव) (शुक्रम्) शुद्धम् (तद्ब्रह्म)
 सर्वस्माद्बृहद्ब्रह्म गुह्यं ब्रह्म (तदेव) (अमृतम्)
 अविनश्यरम् (उच्यते) शास्त्रेषु इति शेषः
 (तस्मिन्) ब्रह्मणि (सर्वे) (लोकाः) पृ-
 थिव्यादयः (मिताः) (तत्) ब्रह्म (कश्चन)
 लोकः (नात्येति) नाल्लङ्घयति (एतद्वै-
 तत्) एतदेव तद्ब्रह्मास्ति यत् त्वया पृष्ठम् ॥

भा०—कर्मेन्द्रियेषु ज्ञानेन्द्रियेषु च सुप्तेषु
 स्वस्वविषयग्रहणादुपरतेषु स्वप्नावस्थायां सु-
 षुप्तौ च जागर्त्ति चिद्रूपेण प्रकाशते स्वप्नांश्चावि-
 द्यायाऽभिलषितान् पश्यति तन्नित्यशुद्धं सर्वा-
 धारमचलनियमं नित्यमुक्तं साम्यातिशयवि-
 निर्मुक्तस्वरूपं जीवाभिन्नं ब्रह्म कल्याणेप्सुना
 विज्ञातव्यम् ॥ ८ ॥

भाषार्थः—(यः, एषः) जो यह आत्मा (पुरुषः) सब ब्रह्माण्ड
 में व्याप्त (कामं कामम्) उस २ असीम की आदि रूप
 विषय की (निर्दिष्टाणः) स्वप्न के समय अविद्या से

things appear in different ways. A.C. Code
different objects (if 944) entered & (exists) r

कल्पित करता हुआ (उभेपु) ओत्रादि इन्द्रियों के सोनेपर (जागर्त्ति) जागता स्वप्नों की देखता और झुपुप्ति के समय अपनी सत्ता से उदरता है (तदेव) वही (शुक्रम्) शुद्ध (तद्ब्रह्म) वही सच से दृष्टा शुद्ध ब्रह्म (तदेव) वही (असृत्तम्) शास्त्रों में अविनाशी रूप (उच्यते) कहा जाता है (तस्मिन्) उस ब्रह्ममें (सर्वे) सच (लोकाः) पृथिवी आदि लोक (त्रिताः) उदरे हुए हैं (तत्) उसका (कथन) कोई लोक वा मनुष्य (न, अत्येति) उल्लंघन नहीं कर सकता (एतः, एतत्) यही वाद् ब्रह्म है जिसको तुम नचिन्ता ने पृच्छा था ॥

भा०—कर्मन्ध्रियों और ज्ञानेन्द्रियों के अपने २ विषय प्रत्यक्ष से दृढजाने रूप सोजाने पर स्वप्न और सुषुप्ति के समय जो आत्मा अज्ञानसे अभिलाषित विषयोंको देखता हुआ जागता है वह नित्य शुद्ध सत्य का आधार जिसका नियम अचल है नित्य मुक्त और जिसके तुल्य वा जिससे अधिक किसीका स्वरूप नहीं वह जीवसे सदा अभिन्न स्वरूप ब्रह्म कल्याणकी इच्छा वाले को जानने योग्य है ॥ ५ ॥ *Having to the de*

अग्नि यथैको भुवनं प्रावृणो रूपं रूपं
प्रतिरूपो बभूव । एकस्तथा सर्वभूतान्त-
रात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च ॥ ४ ॥

अ० (यथा) (एकः, अग्निः) विद्युत्स्व
रूपः (भुवनम्) भेषन्ति भूतानि यस्मिन्स्वयं
वा भुवत्युत्पद्यते कथं रूपेण जायत इति भुवनं
लेखिकम् (प्रतिरूपम्) प्रतिवस्तु व्याप्तः (रूपरू-
पम्) यावद्द्वस्तु रूपम् (प्रतिरूपः) तत्तद्वस्तु-

स्वरूपः (वभूव) (तथा) (एकः) जीवेश्वरयोर-
भेदेनैकत्वम् (सर्वभूतान्तरात्मा) (रूपं रूपम्)
(प्रतिरूपः) वभूव (च) सर्वस्थूलवस्तुभ्यः
(वहिः) पृथगपि व्योमवद् व्याप्तः ॥

भा०—यथाऽग्निर्विद्युद्रूपेण सर्वस्थूलपदा-
र्थेषु व्याप्तस्तत्तद्वस्तुरूपान्निनो न लक्ष्यतेऽपितु
तत्तत्पदार्थरूपेणैव तत्रतत्रावस्थितोऽतिसूक्ष्म
त्वात्पृथङ् न ज्ञायते तथैवात्मापि सर्वकार्य
कारणवस्तुषु व्याप्तोऽतिसूक्ष्मत्वात् न दृश्यते
तत्तत्पदार्थस्वरूपेणैव तस्मिंस्तस्मिन्नवति-
ष्ठते यत्र पदार्था न सन्ति तत्रापि परमात्मा
व्याप्त आकाशवदनन्तत्वात् ॥ ९ ॥

भाषार्थः—(यथा) जैसे (एकः) एक ही (अग्निः) अग्नि
(भुवनम्) सब प्राणियों के आधार वा स्वयं कार्यरूप से उ-
त्पन्न होने वाले संसार में (प्रविष्टः) व्याप्त (रूपं रूपम्)
प्रत्येक रूपवान् वस्तु के (प्रतिरूपः) तुल्य रूप वाला (वभू-
व) हो रहा है (तथा) वैसे (एकः) जीव ईश्वर का भेद न होने
से एक (सर्वभूतान्तरात्मा) सब प्राणियों का अन्तर्यामी परमा-
त्मा (रूपं रूपम्) प्रत्येक रूपवान् पदार्थ के साथ (प्रतिरूपः)
वसी के जैसे रूपवाला (वभूव) हो रहा है (च) और सब
स्थूल पदार्थोंसे (वहिः) पृथक् भी आकाशके तुल्य व्याप्त है ॥

भा०—जैसे अग्नि विद्युत् रूप से सब स्थूल पदार्थों में
व्याप्त भी उस २ वस्तु के रूप से भिन्न नहीं दीखता किन्तु
उस २ पदार्थ के रूप से ही उस २ में स्थित अतिमूक्ष्म होने

5
 (it enters), + forms accordingly the diff. (it enters), + unit 119. also with out.

से पृथक् नहीं जाना जाता वैसे ही परमात्मा भी सब कार्य
 कारण वस्तुओं में व्याप्त अति सूक्ष्म होने से नहीं दीखता
 किन्तु उस २ पदार्थ के रूप से उस २ में अवस्थित है और
 जहाँ पदार्थ नहीं वहाँ भी आकाश के तुल्य अनन्त होने से
 परमात्मा व्याप्त है ॥ ९॥

air is one single & well mixed to every form
 वायुयुक्तो भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं
alike form becomes one single
 प्रतिरूपो बभूव । एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिःश्च ॥ १० ॥
to every alike and outside

अ०- (यथा, एकः, वायुः) (भुवनम् प्र-
 विष्टः) (रूपंरूपम्) (प्रतिरूपः) (बभूव)
 (तथा, एकः) (सर्वभूतान्तरात्मा) (रूपंरूप-
 पम्) प्रतिरूपः (च) (बहिः) सर्वस्मिन्
 ब्रह्माण्डे सूत्रात्मनो व्याप्तः ॥

भा०—यथा वायुः सूक्ष्मरूपेण सर्ववस्तुषु
 व्याप्तस्तत्तद्वस्तुस्वरूपद्विलक्षणो नोपलभ्यते व-
 धैव सर्वस्मिन् चरन्चरे जगति व्याप्तः परमा-
 त्मापि तत्तद्वस्तुस्वरूपात्पृथङ्नोपलभ्यते ॥ १० ॥

भाषार्थ—[यथा] जैसे [एकः] एक [वायुः] वायु [भु-
 वं] संसार में [प्रविष्टः] व्याप्त [रूपंरूपम्] प्रत्येक वस्तु के
 रूप के [प्रतिरूपः] तुल्य रूप वाला [बभूव] हो रहा है [तथा]
 वैसे [एकः] एक अद्वैत सजातीय विजातीय स्वगत भेद शून्य
 [सर्वभूतान्तरात्मा] सब भूतों का अन्तर्यामी [रूपं रूपम्]

...an that resides in a universe, is never free
 miseries of the world (as it is) beyond (the world)

परमात्मा प्रत्येक-वस्तुके रूपके तुल्य [प्रतिरूपः] रूपवाला
 हो रहा है [च] और [वहिः] सब ब्रह्माण्ड में सूत्रात्मा
 रूप से भी आत्मा व्याप्त है ॥

भा०—जैसे वायु सूक्ष्म रूपसे सब वस्तुओंमें व्याप्त उत्तर
 वस्तुके स्वरूपसे विलक्षण नहीं प्रतीत होता वैसे ही सब चरा-
 चर जगत् में व्याप्त परमात्मा भी उस २ वस्तु के स्वरूप से
 पृथक् नहीं प्राप्त होता ॥ १० ॥

as the Being exp. is not
 सूर्या यथा सर्वलोकस्य चक्षुर्न लि-
as the ocular perception of all beings does not get attached to the mirror
 प्यते चाक्षुषबाह्यदोषैः । एकस्तथा सर्व-
Separate or beyond
 भूतान्तरात्मा न लिप्यते लोकदुःखेन
 बाह्यः ॥ ११ ॥

faulty exp. अ०—(यथा) (सर्वलोकस्य) क-
 र्मेणि षष्ठो (चक्षुः) दर्शनहेतुः । करण औ-
 णादिक उप्तिः प्रत्ययः (सूर्यः) सन्नपि
 (चाक्षुषैः) भ्रमान्मिथ्यादर्शनैरशुच्यादिद-
 र्शनैर्वा (बाह्यदोषैः) संसर्गदोषैः (न, लि-
 प्यते) (तथा) (सर्वभूतान्तरात्मा) सर्व
 प्राणिनामन्तर्यामी (एकः) (बाह्यः) सर्वव-
 स्तुनि व्याप्तोपि तद्दोषेणालिप्तः परमेश्वरः
 (लोकदुःखेन) संसारोत्पन्नदोषेण (न, लि-
 प्यते) नानुसज्यते ॥

भा०—यथा यतो हेतोः सूर्यप्रकाशमन्तरा

incomprehensible or beyond knowledge that has super-
the phenomena of personality in the world - the
the mind - upon the transcendental Atman
phenomena of matter is superimposed upon

काश्चित्किञ्चिदपि न पश्यति रजन्यामपि
चन्द्रादयः सूर्यप्रकाशानुग्रहेणैव किञ्चिदर्शयन्ति
तस्मात्सूर्य एव रूपज्ञानमात्रस्य कारणम् ।
एवं सत्यपि भ्रमादन्यथादर्शनादिजन्यविप-
रीतफलभाक् सूर्यो न भवति तथैव जीवरूपेण
सर्वजनहृद्देशस्यः परमेश्वरः सूर्यवत्स्वाभावि-
कशक्त्या सर्व प्राणिकृत्यं प्रकाशयन्नपि मनो-
बुद्ध्याद्यन्तःकरणकृतशुभाशुभकर्मफलेन न
सम्बध्यते ॥ ११ ॥

भाषार्थः—(यथा) जैसे (सर्वलोकस्य) सब संसार की
(चक्षुः) दिखाने वाला होता हुआ भी (सूर्यः) सूर्य (बाह्यैः)
भ्रमसे अन्यको अन्य देखने वा मलिन देखने आदि (बाह्य-
दोषैः) बाहरी दोषों से (न, लिप्यते) लिप्त नहीं होता
(तथा) वैसे (सर्वभूतान्तरात्मा) सब प्राणियों का अन्त-
र्यामी (एकः) एक (बाह्यः) सब वस्तुमें व्याप्त भी उस
वस्तुके दोषसे युक्त न होने वाला अन्तरात्मा (लोकदुःखेन)
संसारी दुःखसे वास्तव में (न, लिप्यते) दुखित नहीं होता ॥

भा०—जैसे जिस कारण सूर्य के प्रकाश बिना कोई कुंक्ष
भी नहीं देखता, रात्री में भी चन्द्रमा आदि सूर्यके प्रकाश की
सहायता से ही कुंक्ष २ प्रकाश करते हैं इस कारण सूर्य ही
सब रूप ज्ञान का कारण है ऐसा होने पर भी अन्यथा दे-
खने वा प्रतिकूल देखने आदिसे हुए विपरीत फल का भागी
सूर्य नहीं होता वैसे ही सब मनुष्यादि के हृदय में जीवरूप
से स्थित परमेश्वर सूर्यके तुल्य स्वाभाविक शक्तिसे सब प्राणियों

the longest eternal happiness to none else. *199* Bless 12-14.

के कृत्य का प्रकाश करता हुआ भी मन बुद्धि आदि अन्तःकरण के किये शुभ अशुभ कर्मफलसे सम्बद्ध नहीं होता ॥ ११ ॥

one Controller the soul, all his, ourself, manifest who does this, not alter
 एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा एक रूप बहुधा यः करोति । तमात्मस्थेऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां सुखशश्वतं नतरेषाम् ॥ १२ ॥

अ०—(सर्वभूतान्तरात्मा) (एकः) (वशी) सर्वे स्थावरजङ्गमं वशी तिष्ठति यस्य सः (यः) (एकम्) विशुद्धविज्ञानमेकरसमद्वैतं चिन्मयम् (रूपम्) (बहुधा) नामरूपाद्यशुद्धोपाधिभेदेन बहुप्रकारकं बहुरूपं स्थूलम् (करोति) उत्पादयति (ये) (धीराः) ध्यानशोलाः निवृत्तबाह्यवृत्तयो विद्वांसः (तम्) (आत्मस्थम्) स्वात्मनि हृदयाकाशे बुद्धौ चैतन्याकारेणाभिव्यक्तम् (अनुपश्यन्ति) आचार्योपदेशानन्तरं पश्यन्ति (तेषाम्) (शाश्वतम्) सनातनम् मुक्त्याख्यम् (सुखम्) भवति (नतरेषाम्) ॥

भा०—ये जनाः सर्वस्रष्टारं सर्वनियन्तारं सर्वस्य हृदि संस्थितं जगदीश्वरमेव स्वात्मनि चिदाभासजीवरूपेणावस्थितं योगाभ्यासेन ध्यायन्ति तेषु सनातनसुखभागिनो जायन्ते नतरे मूढाः ॥ १२ ॥

the eternal peace of the soul is not to be found in the material world. It is to be found in the spiritual world. It is to be found in the inner world. It is to be found in the world of the soul.

भाषार्थः—(सर्वभूतान्तरीत्मा) सब प्राणियों का अन्त-
र्यामी (एकः) एक अद्वैत (वशी) सब चराचर जगत् जिस
के वश में है ऐसा (यः) जो (एकम्) अद्वैत एकरस विशुद्ध
विज्ञानात्मक चेतन ऐसे एक (रूपम्) रूप को (बहुधा)
बहुत प्रकार का स्थूल कार्यरूप (करोति) उत्पन्न करता (ये)
जो (धीराः) ध्यानशील विद्वान् लोग (तम्) उस (आत्म-
स्थम्) अपने हृदयस्थ बुद्धितत्त्व में चेतन स्वरूप से प्रकट रह-
ने वाले आत्माको (अनुपश्यन्ति) गुरु से उपदेश पाकर
देखते या अनुभव करते हैं (तेषाम्) उनको (शाश्वतम्)
सनातन मुक्ति का (सुखम्) सुख प्राप्त होता है (नेतरेषाम्)
अन्यों को नहीं ॥

भा०—जो लोग सब को खूँटा सब के नियन्ता और
सब के हृदय में स्थित अपने अन्तःकरण में चिदाभास जीव-
रूपसे अवस्थित जगदीश्वर का ही योगाभ्यास द्वारा ध्यान
करते हैं वे ही सनातन नित्य सुख के भागी होते हैं अन्य
मूर्ख नहीं ॥ १२ ॥

the eternal peace of the soul is not to be found in the material world. It is to be found in the spiritual world. It is to be found in the inner world. It is to be found in the world of the soul.

नित्याऽनित्यानां चेतनश्चेतनानामेका
बहुना या विदधाति कामान् । तमात्मस्थ
यऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां शान्तिः शाश्वती
नेतरेषाम् ॥ १३ ॥

अ०—(अनित्यानाम्) उत्पत्तिधर्मकाणां
विनाशवतां मायात्मकघटपटादिकार्यपदा-
र्थानां मध्ये (नित्यः) अविनाशी (चेतना-
नाम्) ब्रह्मादीनां मध्ये (चेतनः) सदैव

चैतन्यस्वरूपएव (बहूनाम्) परिच्छिन्नानां
चराचरवस्तूनां मध्येऽपरिच्छिन्नोऽतएव (एकः)
एवंभूतः (यः) (कामान्) कर्मफलानि (विद-
धाति) यथायोग्यं ददाति (ये, धीराः) वि-
द्वांसः (तम्, आत्मस्थम्, अनुपश्यन्ति)
चिदाभासरूपेण बुद्ध्यावस्थितं श्रवणमननान-
न्तरं ध्यायन्ति (तेषाम्) (शाश्वतो) (शान्तिः)
भवति (नेतरेषां) अज्ञानाम् ॥

भा०—यच्चैतन्यमाश्रित्य स्वयमचेतना
जीवाः स्वकार्यं कर्तुं प्रभवन्ति तमेकं नित्यं
कर्मफलप्रदमात्मन्यवस्थितं जगदीश्वरं ये
ध्यायन्ति त एव निरन्तरं शान्ता भवन्ति
नातो भिन्ना बहिर्मुखा विषयानन्दलिप्ताः ॥१३॥

भाषार्थः—(अनित्यानाम्) उत्पत्ति धर्मेक होने से वि-
नष्ट होने वाले मायात्मक घटपटादि कार्य पदार्थों के बीच
(नित्यः) अविनाशी (चेतनानाम्) ब्रह्मादि चेतनोंके बीच
भी (चेतनः) सदा चेतनता रूप ही है अर्थात् चेतनों को
भी चेतन करने वाला (बहूनाम्) परिच्छिन्न चराचर व-
स्तुओं में (एकः) एक अपरिच्छिन्न परमेश्वर है (यः) जो
जीवों के लिये (कामान्) यथायोग्य कर्मों का फल (विद-
धाति) देता है (ये) जो (धीराः) विद्वान् लोग (तम्)
उस (आत्मस्थम्) चिदाभासरूप से अपने आत्मा में स्थित
परमात्मा की (अनुपश्यन्ति) गुरु आदि से सुने विचार के

अनुकूल ध्यानि करते (तैषाम्) उन्म को (शान्तवती) सदा निरन्तर ठहरने वाली (शान्तिः) शान्ति प्राप्त होती है (न, इतरेषाम्) किन्तु अन्य अज्ञानियों को नहीं ॥

भा०—जिस की चेतनता का आश्रय लेकर स्वयं जीवात्मा अपने कार्य करने को समर्थ होते हैं उस कर्मफल दाता अपने अन्तःकरण में अवस्थित एक नित्य वर्तमान जगदीश्वर का जो लोग ध्यान करते हैं वे ही निरन्तर शान्त होते हैं इस से विपरीत विषयों का आनन्द भोगने में लिप्त बाह्य वृत्ति रखने वाले लम्पट पुरुष शान्त नहीं होते ॥ १३ ॥

तदेतदिति मन्यन्तेऽनिर्देश्यं परमं सुखम् । कथन्नु तद्विजानीयां किमु भाति विभाति वा ॥ १४ ॥

अ०—नचिकेता आह—(अनिर्देश्यम्) अंगुल्यादिसंकेतेन निर्देष्टुमशक्यम् (परमम्, सुखम्) सर्वोत्तमसुखमयं ब्रह्म भवादृशा विद्वांसः (तदेतत्) प्रत्यक्षमेवेति (मन्यन्ते) (तत्) ब्रह्म (किमु) (भाति) दीप्यते प्रकाशात्मकं भवति (वा) आहोस्वित् (विभाति) विरूपष्टं दृश्यते किंवा नेति एतदहम् (कथन्नु) (विजानीयाम्) तथा ब्रूहीति शेषः ॥

भा०—परमसुखात्मकमात्मतत्त्वमंगुल्यादिनाऽनिर्देश्यमपि कथं विरक्ता ज्ञानिनः

प्रत्यक्षं मन्यन्ते किं तद् रूपगुणयुक्तमाहो-
स्विदरूपम् ॥ १४ ॥

भाषार्थः—नचिकेता फिर बोला कि—(अनिर्देश्यम्) अं-
गुलि आदि उठाकर जिस का बताना नहीं हो सकता (प-
रमम्, सुखम्) सर्वोत्तम सुख स्वरूप ब्रह्म को आप जैसे वि-
द्वान् लोग (तदेतदिति) वह यही प्रत्यक्ष है ऐसा (मन्यन्ते)
मानते हैं (तत्) वह ब्रह्म (किन्तु) क्या (भाति) प्रकाश
रूप होता (वा) अथवा क्या (विभाति) विस्पष्ट दीखता
है वा नहीं यह मैं (कथन्तु) कैसे (विजानीयम्) जानूं
वैसा आप कहिये ॥

भा०—अत्यन्त सुख स्वरूप आत्मतत्त्व अंगुली आदि उठा
के बताने योग्य न होने पर भी विरक्त ज्ञानी लोग उस को
प्रत्यक्ष कैसे मानते हैं? क्या वह रूप गुणयुक्त है? अ-
थवा नहीं? ॥ १४ ॥

न तत्र सूर्या भाति न चन्द्रतारक
नमा विद्युता भान्ति कुतोऽयमाग्निः । तमव
भान्तमनुभाति सर्वे तस्य भासा सर्वमिदं
विभाति ॥ १५ ॥

अ०—(तत्र) तस्मिन् ब्रह्मणि (न)
(सूर्यः) (न) (चन्द्रतारकम्) चन्द्रश्च तार-
काश्चेति द्वन्द्व एकवत् (भाति) (इमाः)
प्रत्यक्षाः (विद्युतः) चाक्षुषतेजोऽभिभादुका
अपि (न, भान्ति) तर्हि (अयम्) भौतिकः

पार्थिवः (अग्निः) (कुतः) भायात् किन्तु
 (तमेव) (भान्तम्) प्रकाशयन्तम् (सर्वम्)
 सूर्यादिकम् (अनुभाति) . तद्वत्प्रकाशमाप्यैव
 प्रकाशते (तस्य) परमेश्वरस्य (भासा)
 दोष्यता (इदम्) (सर्वम्) सूर्यादि (विभाति)
 विस्पष्टं प्रकाशते ॥

भा०—यदिदं सूर्यादिप्रकाशकं जगत्प्रत्य-
 क्षतयोपलभ्यते तद्विभाति तेषु च स्वतः प्र-
 काशो नास्ति किन्तु परमात्मा तान् सूर्यादीन्
 भाति स्वदत्तेन तेजसा प्रकाशयति सूर्याद-
 यश्च तं प्रकाशयितुमशक्ताः । तस्य ततोऽधि-
 कतेजस्कत्वात् । अतएव ब्रह्मज्ञानोपायेषु सू-
 र्यादेः प्रकाशस्तस्यैव परमात्मनः प्रकाश इति
 प्रत्यक्षतया द्रष्टव्यः । अतएवोक्तम्—यदादित्य
 गतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम् । यच्चन्द्रमसि-
 यच्चाग्नौ तत्तेजोविद्धिमामकम् ॥ इति भगवद्-
 गीतासु, तथा शुक्लयजुषि अ० ३ । अग्निर्ज्यो-
 तिर्य्योतिरग्निः । सूर्योऽज्योतिर्य्योतिः सूर्यः ।
 इत्यादि प्रमाणैः सिद्धं यद्भौतिकप्रकाशाद-
 भिन्नमेवात्मतत्त्वमतएव तदेतदितिवादिनः प्र-

तयक्षंमन्यन्ते तत्रमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासीत्यत्र
ब्रह्मणो वायुरूपेण प्रत्यक्षत्वं दर्शितम् ॥ १५ ॥

भाषार्थः—(तत्र) उस ब्रह्म-में (न) न (सूर्यः) सूर्य
(न) न [चन्द्रतारकम्] चन्द्रमा और तारे [भाति] प्र-
काश करते तथा [इनाः] ये प्रत्यक्ष चक्कने और [विद्युतः]
नेत्र सम्बन्धी तेज को दवाने वाली भी बिजली [न, भान्ति]
प्रकाश नहीं करती तो [अयम्] यह पृथिवी पर प्रसिद्ध भौ-
तिक [अग्निः] अग्नि [कुतः] कहां से प्रकाश करे क्योंकि
सूर्य का प्रकाश अग्निसे प्रबल है और भौतिक अग्नि का का-
रण भी सूर्य है जब कारणका उस में प्रकाश नहीं पहुंचता तो
कार्य का क्या पहुंचेगा । किन्तु [तमेव] उसी [भान्तम्]
स्वयं प्रकाशमान हुए के पीछे [सर्वम्] सब सूर्यादि [अनुभा-
ति] उस के दिये प्रकाश को पा कर ही प्रकाशित होते हैं
(तस्य) उस परमेश्वर की [भासा] दीप्तिसे [इदम्] यह
[सर्वम्] सब सूर्यादि [विभाति] स्पष्टता पूर्वक प्रत्यक्ष प्र-
काश करते हैं ॥

भा०—जो यह सूर्यादि प्रकाशक जगत् प्रत्यक्षता से प्राप्त
होता वही प्रकाशित है उनमें अपना स्वतः प्रकाश नहीं किन्तु
परमात्मा उन सूर्यादि को अपने दिये तेज से प्रकाशित करता
है और सूर्यादि उस को प्रकाशित नहीं कर सकते क्योंकि
परमेश्वर उन से अधिक तेज वाला है इसी से ब्रह्मज्ञान के
उपायों में सूर्यादि के प्रकाश को उसी परमेश्वर के प्रकाशरूप
से प्रत्यक्ष देखना चाहिये—भगवद्गीता में कहा है कि “सूर्य
चन्द्रमा और अग्नि में विद्यमान जो तेज सब जगत् को प्रका-
शित करता है हे अर्जुन ! वह तेज मुझ ईश्वर का है ” तथा
शुक्ल यजुर्वेद में कहा है कि जो अग्नि और सूर्याभिमानी च-

तनात्मा है वही ज्योति है और जो प्रकाश है वही चेतन अग्नि आदित्य है । इन प्रमाणोंसे भौतिक प्रकाश और आत्मा का अभेद सिद्ध है । इस कारण वह यही है ऐसा कहने वाले ईश्वर को अग्नि वायु सूर्य और चन्द्रमादि रूप से प्रत्यक्ष जानते हैं ॥ १५ ॥ यह पांचवी बरली समाप्त हुई ॥

with roots spread with branches like a tree
ऊर्ध्वमूलाऽवाक्शाख एषाऽश्वत्थः सना-

That was the tree that grew that tree that tree that tree
तनः । तदेव शुक्रं तदेव ब्रह्म तदेवामृतमुच्यते । तस्मिन्लोकाः श्रिताः सर्वे तदुनात्यति कश्चन ॥ एतद्वै तत् ॥ १ ॥

अ०—(ऊर्ध्वमूलः) ऊर्ध्वमुपरिष्ठान्मूलं-
विष्णोः परमं पदमस्य सोऽयमव्यक्तादिस्थाव-
रान्तः संसारवृक्षः । अध्यात्मं मानवदेहो वा
(अवाक्शाखः) अवागधस्ताच्छाखाः स्वर्गन-
रकमर्त्यलोकादिरूपा यस्य सः (एषः) प्रत्यक्षः
प्रवाहेणानादित्वाच्चिरप्रवृत्तः (सनातनः)
(अश्वत्थः) श्वः स्थास्यति नवेति संशयापन्नो-
ऽश्वत्थवृक्षवत्स्वरूपेणानित्यः । यदस्यसंसार-
वृक्षस्यमूलम् (तदेव) (शुक्रम्) शुक्रं निर्मलं
निष्कलङ्कंचैतन्यात्मज्योतिःस्वभावम् (तत्)
(ब्रह्म) बृहत् (तदेव) (अमृतम्) अविनश्वरं
शास्त्रेषु विद्वद्भिः (उच्यते) कथ्यते सत्यत्वात्

(तस्मिन्) ब्रह्मणि (सर्वे) (लोकाः) ग-
 न्धर्वनगरमरीच्युदकमायासमा भूरादयश्चतु-
 र्दश लोकाः (श्रिताः) धृताः (तत्, उ) ब्रह्म
 (कश्चन) लोकः पुरुषो वा (न, अत्येति)
 नोल्लङ्घयति (एतद्वै तत्) तदेतदेव ब्रह्मास्ति ॥

भा०—यथाऽऽश्वत्थादिवृक्षविशेषाणामु-
 रिष्ठाच्छाखाअधस्ताच्च मूलं भवति तस्माद्वि-
 परोतोऽयंसंसारवृक्षो देहवृक्षो वा यस्य मूलमु-
 परि शाखाऽअधः स्वरूपेणायमनित्यः सृष्टि-
 प्रवाहेण नित्यश्च तस्य संसारवृक्षस्य वेदान्त-
 निर्धारितमात्मतत्त्वमेव मूलं त्रिगुणात्मिका
 माया स्कन्धाः भूरादयो लोकाः शाखाः, श्रु-
 तिस्मृतिन्यायादिविद्याः पत्राणि, यज्ञदानतप-
 आद्यनेकक्रियाः पुष्पाणि बहुविधसुखदुःखवे-
 दनादीनि फलानि सन्ति सच जन्ममरणजरा-
 शोकाद्यनेकानर्थात्मको ब्रह्मनाद्वृक्षइत्युच्यते
 अस्य सर्वस्य स्रष्टारमस्मिन्नेवसंसारवृक्षे देहे-
 वाऽवस्थितं शुद्धमविनाशिनं सर्वाधारं सर्वो-
 परिविराजमानं ज्ञातुं यः प्रयतते स एव दुःख-
 सागरं तरति ॥ १ ॥

भाषार्थः—(कर्ध्वमूलः) विष्णु भगवान् का परम पद रूप जिस की जड़ ऊपर की है ऐसा (अवाक्शाखः) नीचे की जिस की डाली हैं ऐसा (एषः) यह प्रत्यक्ष प्रकृति से लेकर स्थावर पर्यन्त संसार रूप वृक्ष वा अध्यात्म में मनुष्य शरीर (सनातनः) प्रवाह से अनादि होनेके कारण सनातन (अश्वत्थः) कल ठहरेगा वा नहीं इस प्रकार जिसकी सत्ता वा जीवन अनित्य है अर्थात् पीपल वृक्ष के समान स्वरूप से अनित्य है । जो इस संसार वृक्ष का मूल कारण है (तदेव) वही (शुक्रम्) शुद्ध निष्कलंक निर्मल चैतन्य आत्मव्योति स्वभाव है (तत्, व) वही (ब्रह्म) बड़ा (तदेव) वही सत्य होने से (असृतम्) अविनाशी है ऐसा विद्वान् लोगों ने शाखाओं में (उच्यते) कहा है (तस्मिन्) उसी ब्रह्म में (सर्वे) सब (लोकाः) गन्धर्व नगर और चतुर्दश लोक तुल्य पृथिव्यादि चतुर्दश लोक (श्रिताः) ठहरे हुए हैं (तत्) उस ब्रह्म की (कश्चन) कोई लोक वा पुरुष (न, अत्येति) उल्लङ्घन नहीं कर सकता (एतद्वै तत्) वह यही ब्रह्म है ॥

भा०—जैसे पीपल आदि वृक्षों की ऊपर की शाखा नीचे की जड़ होती है उस से विपरीत यह संसार रूप वा शरीर रूप वृक्ष है जिस की जड़ें वा शिर ऊपर की और स्वर्गादि वा बाहु अङ्गुली गोड़ आदि शाखा (डाली) नीचे की बनी हैं यदि मनुष्य का शिर नीचे करके उल्टा खड़ा किया जाय तो ठीक वृक्षाकार जान पड़ता है । सो यह संसार रूप वा देह रूप वृक्ष स्वरूप से अनित्य और सृष्टि के प्रवाह से नित्य है उस संसार वृक्ष का वेदान्त में निश्चित किया आत्मतत्त्व ही मूल कारण है त्रिगुण प्रकृति वा साया ही उस के स्कन्ध [गुद्दे] हैं, भूः भुवः आदि चतुर्दश लोक ही

Thunderbolt :- one who respects the law, & is under its control, nothing can be selected to break the law.
जिस की आशा है भुति स्थिति न्यायादि विद्या ही जिस की

पत्ते हैं यज्ञ दान तप आदि अनेक विध कर्म ही जिसके पुष्प हैं और बहुविध सुख दुःखादि का अनुभव होना ही जिस के फल हैं जन्म मरण जरावस्था और शोकःदि अनेक अ-
वर्णों रूप ब्रश्चन नाम विध्वंस होने से वृक्ष कहाता है ।
इस विशदकाय कार्य के रचने वाले इसी संसार एव में वा देह में व्याप्त शुद्ध अविनाशी सबके आधार सर्वोपरि विराजमान परमेश्वर के जानने का ज्ञेय प्रियतम है वही दुःखसागर के पार हो जाता है ॥ १ ॥

Whisper this यदि किञ्च जगत्सर्वं प्राप्नोति
comes out of the Great Terror raised by this निःसृतम् । महद्भयं वज्रबुध्नस्त य एतादृ-
comes in the form of the life दुरमृतास्ति भवन्ति ॥ २ ॥

अ०—प्रलयानन्तरं परमेश्वरादेव (निः-
सृतम्) उत्पन्नम् (यत्, इदम्) (किञ्च)
अनन्तपरमात्मापेक्षयाऽल्पं तुच्छं च (जगत्)
अस्ति तत् (सर्वम्) (प्राणे) प्रकृष्टतयाऽ-
निति जीवयति सर्वान् प्राणिन इति सर्वस्य
जीवनहेतौ परमात्मनि सत्येव (एजति)
कम्पते स्वस्वकर्मणि प्रवर्त्तते किंभूतं जगत्
(महद्भयम्) विवेकिना महद्भयहेतुकम् (व-
ज्रम्) वज्रबुध्न्यातकम् (उद्यतम्) जन्मम-
रणप्रवृत्तिहेतुकम् । यद्वा महद्भयमित्यादि-

शब्दत्रयं ब्रह्मणएव विशेषणं तदित्थं उच्यते
 वज्रमित्र महद्भयहेतुकम् । यथा खड्गोद्यत-
 करं स्वामिनं दृष्ट्वा भूत्वाः स्वस्वकर्मणि निय-
 मेन प्रवर्तन्ते तथैव सूर्यादि सकल जगत्तस्य
 भयादिव यथावन्वियमेनास्तोदयादौ प्रवर्तन्ते
 (ये) जनाः (एतत्) ब्रह्म (विदुः) जा-
 नन्ति (ते) (असृताः) मुक्ताः (भवन्ति) ॥

भा०—जीवकरूपेणाखिलशरीरेष्वव-
 वस्थितः परमेश्वरः सर्वस्य जीवनहेतुत्वा-
 त्प्राणस्तस्मिन्सर्वसत्ताहेतुके सत्येव सर्वं चरा-
 चरं जगत्स्वस्वकर्मणि नियमेन चेष्टते तमेव
 ज्ञात्वा दुःखाद्विमुच्यते ॥ २ ॥

भाषार्थः—प्रलय की समाप्ति में परमेश्वर से ही (नि-
 स्सृतम्) उत्पन्न हुआ (यत्, इदम्) जो यह (किं च) कुछ
 (अनन्त परमेश्वर की अपेक्षा) छोटा था तुच्छ (जगत्) ज-
 गत् है वह (सर्वम्) सब (प्राणी) सब प्राणियों के जीवनके
 हेतु परमात्मा की विद्यमानता में ही (एजति) अपने २
 कर्म में प्रवृत्त होता है अर्थात् ईश्वर ही जीवरूप से सबमें प्र-
 विष्ट होकर खड़ शरीरादि को चेतन बनाता है । यह जगत्
 कैसा है कि (महद्भयम्) विवेकिजन को बड़े भय का दुःख
 का हेतु (जैसे आँख में पड़ा तिनका अधिक दुःख देता वही
 लृण अन्यत्र शरीर पर दुःख नहीं देता वैसेही संचारी छोटे २
 दुःख भी विवेकी पुरुष को बड़े २ प्रतीत होते हैं) (वज्रम्)

वज्र के तुल्य पीड़ा देने वाला (उद्यतम्) जन्म नरक के अ-
वाह को बढ़ाने वाला जगत् है अथवा (महद्भयम्) इत्या-
दि तीन पद ब्रह्म के ही विशेषण माने जावें तो अनुचित
नहीं जैसे उठाये हुए शस्त्र के तुल्य ब्रह्म बड़े भय का हेतु है
जैसे लहंग हाथ में लिए हुए स्वामी को देखकर भृत्य लोग
नियम पूर्वक अपना २ काम करते हैं वैसे सूर्यादि सब जगत्
उस परमेश्वर के भय से उदय अस्त आदि काम में नियम
पूर्वक यथावत् प्रवृत्त रहता है (ये) जो ननुप्य (एतत्)
इस ब्रह्म को (विदुः) जानते हैं (ते) वे (श्रमताः) मुक्त
(भवन्ति) होते हैं ।

भा०—जीव ज्ञान रूप से सब शरीरों में विद्यमान परम-
ेश्वर सब के जीवन का हेतु होने से आरा नानक है सब की
विद्यमानता के तुल्य उस के विद्यमान होने से ही सब
चराचर जगत् अपने २ काम में नियम पूर्वक चला करता है
उसी को जानके दुःख से बूट सकते हैं ॥ २ ॥

from the 1st, 2nd, 3rd, 4th, 5th, 6th, 7th, 8th, 9th, 10th, 11th, 12th, 13th, 14th, 15th, 16th, 17th, 18th, 19th, 20th, 21st, 22nd, 23rd, 24th, 25th, 26th, 27th, 28th, 29th, 30th, 31st, 32nd, 33rd, 34th, 35th, 36th, 37th, 38th, 39th, 40th, 41st, 42nd, 43rd, 44th, 45th, 46th, 47th, 48th, 49th, 50th, 51st, 52nd, 53rd, 54th, 55th, 56th, 57th, 58th, 59th, 60th, 61st, 62nd, 63rd, 64th, 65th, 66th, 67th, 68th, 69th, 70th, 71st, 72nd, 73rd, 74th, 75th, 76th, 77th, 78th, 79th, 80th, 81st, 82nd, 83rd, 84th, 85th, 86th, 87th, 88th, 89th, 90th, 91st, 92nd, 93rd, 94th, 95th, 96th, 97th, 98th, 99th, 100th, 101st, 102nd, 103rd, 104th, 105th, 106th, 107th, 108th, 109th, 110th, 111th, 112th, 113th, 114th, 115th, 116th, 117th, 118th, 119th, 120th, 121st, 122nd, 123rd, 124th, 125th, 126th, 127th, 128th, 129th, 130th, 131st, 132nd, 133rd, 134th, 135th, 136th, 137th, 138th, 139th, 140th, 141st, 142nd, 143rd, 144th, 145th, 146th, 147th, 148th, 149th, 150th, 151st, 152nd, 153rd, 154th, 155th, 156th, 157th, 158th, 159th, 160th, 161st, 162nd, 163rd, 164th, 165th, 166th, 167th, 168th, 169th, 170th, 171st, 172nd, 173rd, 174th, 175th, 176th, 177th, 178th, 179th, 180th, 181st, 182nd, 183rd, 184th, 185th, 186th, 187th, 188th, 189th, 190th, 191st, 192nd, 193rd, 194th, 195th, 196th, 197th, 198th, 199th, 200th, 201st, 202nd, 203rd, 204th, 205th, 206th, 207th, 208th, 209th, 210th, 211st, 212nd, 213th, 214th, 215th, 216th, 217th, 218th, 219th, 220th, 221st, 222nd, 223rd, 224th, 225th, 226th, 227th, 228th, 229th, 230th, 231st, 232nd, 233rd, 234th, 235th, 236th, 237th, 238th, 239th, 240th, 241st, 242nd, 243rd, 244th, 245th, 246th, 247th, 248th, 249th, 250th, 251st, 252nd, 253rd, 254th, 255th, 256th, 257th, 258th, 259th, 260th, 261st, 262nd, 263rd, 264th, 265th, 266th, 267th, 268th, 269th, 270th, 271st, 272nd, 273rd, 274th, 275th, 276th, 277th, 278th, 279th, 280th, 281st, 282nd, 283rd, 284th, 285th, 286th, 287th, 288th, 289th, 290th, 291st, 292nd, 293rd, 294th, 295th, 296th, 297th, 298th, 299th, 300th, 301st, 302nd, 303rd, 304th, 305th, 306th, 307th, 308th, 309th, 310th, 311st, 312nd, 313th, 314th, 315th, 316th, 317th, 318th, 319th, 320th, 321st, 322nd, 323rd, 324th, 325th, 326th, 327th, 328th, 329th, 330th, 331st, 332nd, 333rd, 334th, 335th, 336th, 337th, 338th, 339th, 340th, 341st, 342nd, 343rd, 344th, 345th, 346th, 347th, 348th, 349th, 350th, 351st, 352nd, 353rd, 354th, 355th, 356th, 357th, 358th, 359th, 360th, 361st, 362nd, 363rd, 364th, 365th, 366th, 367th, 368th, 369th, 370th, 371st, 372nd, 373rd, 374th, 375th, 376th, 377th, 378th, 379th, 380th, 381st, 382nd, 383rd, 384th, 385th, 386th, 387th, 388th, 389th, 390th, 391st, 392nd, 393rd, 394th, 395th, 396th, 397th, 398th, 399th, 400th, 401st, 402nd, 403rd, 404th, 405th, 406th, 407th, 408th, 409th, 410th, 411st, 412nd, 413th, 414th, 415th, 416th, 417th, 418th, 419th, 420th, 421st, 422nd, 423rd, 424th, 425th, 426th, 427th, 428th, 429th, 430th, 431st, 432nd, 433rd, 434th, 435th, 436th, 437th, 438th, 439th, 440th, 441st, 442nd, 443rd, 444th, 445th, 446th, 447th, 448th, 449th, 450th, 451st, 452nd, 453rd, 454th, 455th, 456th, 457th, 458th, 459th, 460th, 461st, 462nd, 463rd, 464th, 465th, 466th, 467th, 468th, 469th, 470th, 471st, 472nd, 473rd, 474th, 475th, 476th, 477th, 478th, 479th, 480th, 481st, 482nd, 483rd, 484th, 485th, 486th, 487th, 488th, 489th, 490th, 491st, 492nd, 493rd, 494th, 495th, 496th, 497th, 498th, 499th, 500th, 501st, 502nd, 503rd, 504th, 505th, 506th, 507th, 508th, 509th, 510th, 511st, 512nd, 513th, 514th, 515th, 516th, 517th, 518th, 519th, 520th, 521st, 522nd, 523rd, 524th, 525th, 526th, 527th, 528th, 529th, 530th, 531st, 532nd, 533rd, 534th, 535th, 536th, 537th, 538th, 539th, 540th, 541st, 542nd, 543rd, 544th, 545th, 546th, 547th, 548th, 549th, 550th, 551st, 552nd, 553rd, 554th, 555th, 556th, 557th, 558th, 559th, 560th, 561st, 562nd, 563rd, 564th, 565th, 566th, 567th, 568th, 569th, 570th, 571st, 572nd, 573rd, 574th, 575th, 576th, 577th, 578th, 579th, 580th, 581st, 582nd, 583rd, 584th, 585th, 586th, 587th, 588th, 589th, 590th, 591st, 592nd, 593rd, 594th, 595th, 596th, 597th, 598th, 599th, 600th, 601st, 602nd, 603rd, 604th, 605th, 606th, 607th, 608th, 609th, 610th, 611st, 612nd, 613th, 614th, 615th, 616th, 617th, 618th, 619th, 620th, 621st, 622nd, 623rd, 624th, 625th, 626th, 627th, 628th, 629th, 630th, 631st, 632nd, 633rd, 634th, 635th, 636th, 637th, 638th, 639th, 640th, 641st, 642nd, 643rd, 644th, 645th, 646th, 647th, 648th, 649th, 650th, 651st, 652nd, 653rd, 654th, 655th, 656th, 657th, 658th, 659th, 660th, 661st, 662nd, 663rd, 664th, 665th, 666th, 667th, 668th, 669th, 670th, 671st, 672nd, 673rd, 674th, 675th, 676th, 677th, 678th, 679th, 680th, 681st, 682nd, 683rd, 684th, 685th, 686th, 687th, 688th, 689th, 690th, 691st, 692nd, 693rd, 694th, 695th, 696th, 697th, 698th, 699th, 700th, 701st, 702nd, 703rd, 704th, 705th, 706th, 707th, 708th, 709th, 710th, 711st, 712nd, 713th, 714th, 715th, 716th, 717th, 718th, 719th, 720th, 721st, 722nd, 723rd, 724th, 725th, 726th, 727th, 728th, 729th, 730th, 731st, 732nd, 733rd, 734th, 735th, 736th, 737th, 738th, 739th, 740th, 741st, 742nd, 743rd, 744th, 745th, 746th, 747th, 748th, 749th, 750th, 751st, 752nd, 753rd, 754th, 755th, 756th, 757th, 758th, 759th, 760th, 761st, 762nd, 763rd, 764th, 765th, 766th, 767th, 768th, 769th, 770th, 771st, 772nd, 773rd, 774th, 775th, 776th, 777th, 778th, 779th, 780th, 781st, 782nd, 783rd, 784th, 785th, 786th, 787th, 788th, 789th, 790th, 791st, 792nd, 793rd, 794th, 795th, 796th, 797th, 798th, 799th, 800th, 801st, 802nd, 803rd, 804th, 805th, 806th, 807th, 808th, 809th, 810th, 811st, 812nd, 813th, 814th, 815th, 816th, 817th, 818th, 819th, 820th, 821st, 822nd, 823rd, 824th, 825th, 826th, 827th, 828th, 829th, 830th, 831st, 832nd, 833rd, 834th, 835th, 836th, 837th, 838th, 839th, 840th, 841st, 842nd, 843rd, 844th, 845th, 846th, 847th, 848th, 849th, 850th, 851st, 852nd, 853rd, 854th, 855th, 856th, 857th, 858th, 859th, 860th, 861st, 862nd, 863rd, 864th, 865th, 866th, 867th, 868th, 869th, 870th, 871st, 872nd, 873rd, 874th, 875th, 876th, 877th, 878th, 879th, 880th, 881st, 882nd, 883rd, 884th, 885th, 886th, 887th, 888th, 889th, 890th, 891st, 892nd, 893rd, 894th, 895th, 896th, 897th, 898th, 899th, 900th, 901st, 902nd, 903rd, 904th, 905th, 906th, 907th, 908th, 909th, 910th, 911st, 912nd, 913th, 914th, 915th, 916th, 917th, 918th, 919th, 920th, 921st, 922nd, 923rd, 924th, 925th, 926th, 927th, 928th, 929th, 930th, 931st, 932nd, 933rd, 934th, 935th, 936th, 937th, 938th, 939th, 940th, 941st, 942nd, 943rd, 944th, 945th, 946th, 947th, 948th, 949th, 950th, 951st, 952nd, 953rd, 954th, 955th, 956th, 957th, 958th, 959th, 960th, 961st, 962nd, 963rd, 964th, 965th, 966th, 967th, 968th, 969th, 970th, 971st, 972nd, 973rd, 974th, 975th, 976th, 977th, 978th, 979th, 980th, 981st, 982nd, 983rd, 984th, 985th, 986th, 987th, 988th, 989th, 990th, 991st, 992nd, 993rd, 994th, 995th, 996th, 997th, 998th, 999th, 1000th, 1001st, 1002nd, 1003rd, 1004th, 1005th, 1006th, 1007th, 1008th, 1009th, 1010th, 1011st, 1012nd, 1013th, 1014th, 1015th, 1016th, 1017th, 1018th, 1019th, 1020th, 1021st, 1022nd, 1023rd, 1024th, 1025th, 1026th, 1027th, 1028th, 1029th, 1030th, 1031st, 1032nd, 1033rd, 1034th, 1035th, 1036th, 1037th, 1038th, 1039th, 1040th, 1041st, 1042nd, 1043rd, 1044th, 1045th, 1046th, 1047th, 1048th, 1049th, 1050th, 1051st, 1052nd, 1053rd, 1054th, 1055th, 1056th, 1057th, 1058th, 1059th, 1060th, 1061st, 1062nd, 1063rd, 1064th, 1065th, 1066th, 1067th, 1068th, 1069th, 1070th, 1071st, 1072nd, 1073rd, 1074th, 1075th, 1076th, 1077th, 1078th, 1079th, 1080th, 1081st, 1082nd, 1083rd, 1084th, 1085th, 1086th, 1087th, 1088th, 1089th, 1090th, 1091st, 1092nd, 1093rd, 1094th, 1095th, 1096th, 1097th, 1098th, 1099th, 1100th, 1101st, 1102nd, 1103rd, 1104th, 1105th, 1106th, 1107th, 1108th, 1109th, 1110th, 1111st, 1112nd, 1113th, 1114th, 1115th, 1116th, 1117th, 1118th, 1119th, 1120th, 1121st, 1122nd, 1123rd, 1124th, 1125th, 1126th, 1127th, 1128th, 1129th, 1130th, 1131st, 1132nd, 1133rd, 1134th, 1135th, 1136th, 1137th, 1138th, 1139th, 1140th, 1141st, 1142nd, 1143rd, 1144th, 1145th, 1146th, 1147th, 1148th, 1149th, 1150th, 1151st, 1152nd, 1153rd, 1154th, 1155th, 1156th, 1157th, 1158th, 1159th, 1160th, 1161st, 1162nd, 1163rd, 1164th, 1165th, 1166th, 1167th, 1168th, 1169th, 1170th, 1171st, 1172nd, 1173rd, 1174th, 1175th, 1176th, 1177th, 1178th, 1179th, 1180th, 1181st, 1182nd, 1183rd, 1184th, 1185th, 1186th, 1187th, 1188th, 1189th, 1190th, 1191st, 1192nd, 1193rd, 1194th, 1195th, 1196th, 1197th, 1198th, 1199th, 1200th, 1201st, 1202nd, 1203rd, 1204th, 1205th, 1206th, 1207th, 1208th, 1209th, 1210th, 1211st, 1212nd, 1213th, 1214th, 1215th, 1216th, 1217th, 1218th, 1219th, 1220th, 1221st, 1222nd, 1223rd, 1224th, 1225th, 1226th, 1227th, 1228th, 1229th, 1230th, 1231st, 1232nd, 1233rd, 1234th, 1235th, 1236th, 1237th, 1238th, 1239th, 1240th, 1241st, 1242nd, 1243rd, 1244th, 1245th, 1246th, 1247th, 1248th, 1249th, 1250th, 1251st, 1252nd, 1253rd, 1254th, 1255th, 1256th, 1257th, 1258th, 1259th, 1260th, 1261st, 1262nd, 1263rd, 1264th, 1265th, 1266th, 1267th, 1268th, 1269th, 1270th, 1271st, 1272nd, 1273rd, 1274th, 1275th, 1276th, 1277th, 1278th, 1279th, 1280th, 1281st, 1282nd, 1283rd, 1284th, 1285th, 1286th, 1287th, 1288th, 1289th, 1290th, 1291st, 1292nd, 1293rd, 1294th, 1295th, 1296th, 1297th, 1298th, 1299th, 1300th, 1301st, 1302nd, 1303rd, 1304th, 1305th, 1306th, 1307th, 1308th, 1309th, 1310th, 1311st, 1312nd, 1313th, 1314th, 1315th, 1316th, 1317th, 1318th, 1319th, 1320th, 1321st, 1322nd, 1323rd, 1324th, 1325th, 1326th, 1327th, 1328th, 1329th, 1330th, 1331st, 1332nd, 1333rd, 1334th, 1335th, 1336th, 1337th, 1338th, 1339th, 1340th, 1341st, 1342nd, 1343rd, 1344th, 1345th, 1346th, 1347th, 1348th, 1349th, 1350th, 1351st, 1352nd, 1353rd, 1354th, 1355th, 1356th, 1357th, 1358th, 1359th, 1360th, 1361st, 1362nd, 1363rd, 1364th, 1365th, 1366th, 1367th, 1368th, 1369th, 1370th, 1371st, 1372nd, 1373rd, 1374th, 1375th, 1376th, 1377th, 1378th, 1379th, 1380th, 1381st, 1382nd, 1383rd, 1384th, 1385th, 1386th, 1387th, 1388th, 1389th, 1390th, 1391st, 1392nd, 1393rd, 1394th, 1395th, 1396th, 1397th, 1398th, 1399th, 1400th, 1401st, 1402nd, 1403rd, 1404th, 1405th, 1406th, 1407th, 1408th, 1409th, 1410th, 1411st, 1412nd, 1413th, 1414th, 1415th, 1416th, 1417th, 1418th, 1419th, 1420th, 1421st, 1422nd, 1423rd, 1424th, 1425th, 1426th, 1427th, 1428th, 1429th, 1430th, 1431st, 1432nd, 1433rd, 1434th, 1435th, 1436th, 1437th, 1438th, 1439th, 1440th, 1441st, 1442nd, 1443rd, 1444th, 1445th, 1446th, 1447th, 1448th, 1449th, 1450th, 1451st, 1452nd, 1453rd, 1454th, 1455th, 1456th, 1457th, 1458th, 1459th, 1460th, 1461st, 1462nd, 1463rd, 1464th, 1465th, 1466th, 1467th, 1468th, 1469th, 1470th, 1471st, 1472nd, 1473rd, 1474th, 1475th, 1476th, 1477th, 1478th, 1479th, 1480th, 1481st, 1482nd, 1483rd, 1484th, 1485th, 1486th, 1487th, 1488th, 1489th, 1490th, 1491st, 1492nd, 1493rd, 1494th, 1495th, 1496th, 1497th, 1498th, 1499th, 1500th, 1501st, 1502nd, 1503rd, 1504th, 1505th, 1506th, 1507th, 1508th, 1509th, 1510th, 1511st, 1512nd, 1513th, 1514th, 1515th, 1516th, 1517th, 1518th, 1519th, 1520th, 1521st, 1522nd, 1523rd, 1524th, 1525th, 1526th, 1527th, 1528th, 1529th, 1530th, 1531st, 1532nd, 1533rd, 1534th, 1535th, 1536th, 1537th, 1538th, 1539th, 1540th, 1541st, 1542nd, 1543rd, 1544th, 1545th, 1546th, 1547th, 1548th, 1549th, 1550th, 1551st, 1552nd, 1553rd, 1554th, 1555th, 1556th, 1557th, 1558th, 1559th, 1560th, 1561st, 1562nd, 1563rd, 1564th, 1565th, 1566th, 1567th, 1568th, 1569th, 1570th, 1571st, 1572nd, 1573rd, 1574th, 1575th, 1576th, 1577th, 1578th, 1579th, 1580th, 1581st, 1582nd, 1583rd, 1584th, 1585th, 1586th, 1587th, 1588th, 1589th, 1590th, 1591st, 1592nd, 1593rd, 1594th, 1595th, 1596th, 1597th, 1598th, 1599th, 1600th, 1601st, 1602nd, 1603rd, 1604th, 1605th, 1606th, 1607th, 1608th, 1609th, 1610th, 1611st, 1612nd, 1613th, 1614th, 1615th, 1616th, 1617th, 1618th, 1619th, 1620th, 1621st, 1622nd, 1623rd, 1624th, 1625th, 1626th, 1627th, 1628th, 1629th, 1630th, 1631st, 1632nd, 1633rd, 1634th, 1635th, 1636th, 1637th, 1638th, 1639th, 1640th, 1641st, 1642nd, 1643rd, 1644th, 1645th, 1646th, 1647th, 1648th, 1649th, 1650th, 1651st, 1652nd, 1653rd, 1654th, 1655th, 1656th, 1657th, 1658th, 1659th, 1660th, 1661st, 1662nd, 1663rd, 1664th, 1665th, 1666th, 1667th, 1668th, 1669th, 1670th, 1671st, 1672nd, 1673rd, 1674th, 1675th, 1676th, 1677th, 1678th, 1679th, 1680th, 1681st, 1682nd, 1683rd, 1684th, 1685th, 1686th, 1687th, 1688th, 1689th, 1690th, 1691st, 1692nd, 1693rd, 1694th, 1695th, 1696th, 1697th, 1698th, 1699th, 1700th, 1701st, 1702nd, 1703rd, 1704th, 1705th, 1706th, 1707th, 1708th, 1709th, 1710th, 1711st, 1712nd, 1713th, 1714th, 1715th, 1716th, 1717th, 1718th, 1719th, 1720th, 1721st, 1722nd, 1723rd, 1724th, 1725th, 1726th, 1727th, 1728th, 1729th, 1730th, 1731st, 1732nd, 1733rd, 1734th, 1735th, 1736th, 1737th, 1738th, 1739th, 1740th, 1741st, 1742nd, 1743rd, 1744th, 1745th, 1746th, 1747th, 1748th, 1749th, 1750th, 1751st, 1752nd, 1753rd, 1754th, 1755th, 1756th, 1757th, 1758th, 1759th, 1760th, 1761st, 1762nd, 1763rd, 1764th, 1765th, 1766th, 1767th, 1768th, 1769th, 1770th, 1771st, 1772nd, 1773rd, 1774th, 1775th, 1776th, 1777th, 1778th, 1779th, 1780th, 1781st, 1782nd, 1783rd, 1784th, 1785th, 1786th, 1787th, 1788th, 1789th, 1790th, 1791st, 1792nd, 1793rd, 1794th, 1795th, 1796th, 1797th, 1798th, 1799th, 1800th, 1801st, 1802nd, 1803rd, 1804th, 1805th, 1806th, 1807th, 1808th, 1809th, 1810th, 1811st, 1812nd, 1813th, 1814th, 1815th, 1816th, 1817th, 1818th, 1819th, 1820th, 1821st, 1822nd, 1823rd, 1824th, 1825th, 1826th, 1827th, 1828th, 1829th, 1830th, 1831st, 1832nd, 1833rd, 1834th, 1835th, 1836th, 1837th, 1838th, 1839th, 1840th, 1841st, 1842nd, 1843rd, 1844th, 1845th, 1846th, 1847th, 1848th, 1849th, 1850th, 1851st, 1852nd, 1853rd, 1854th

नो नियमानुकूलं मारयति । यद्वा यत्र ब्रह्म
मृत्युं नेच्छति ततः पृथग्धावति न तं मार-
यितुं शक्तः ॥

भा०—यथोद्यतवज्रहस्तं स्वामिनमभि-
मुखोभूतमायान्तमालोकय । प्रेष्याः स्वस्वक-
र्मणि नियमेन धावन्ति तथैव तत्तदभिमा-
निजीवरूपेण सूर्यादाववस्थितस्यैकस्यैव वि-
भोश्चेतनस्य परब्रह्मणो भयादिव सूर्यचन्द्रन-
क्षत्रादिकमखिलं जगत्प्रतिक्षणमविश्रान्तं नि-
यमानुकूलं धावति तज्ज्ञानादेव मुक्तिर्भवितु-
मर्हति ॥ ३ ॥

भाषार्थः—भय का हेतु ब्रह्म कैसे है सो स्पष्ट कहते हैं
(अस्य) इस ब्रह्म के (भयात्) भय से (अग्निः) अग्नि
(तपति) प्रज्वलित होकर संसारका कार्य करता है [भयात्]
उसी के भय से [सूर्यः] सूर्य (तपति) ताप करता [भयात्]
उस के भय से (च) ही [इन्द्रः] विजुली का अभिमानी
इन्द्रदेव घमकता है । [च] और [वायुः] वायु उसी के भय
से चलता है तथा [पंचमः] पांचवां [मृत्युः] मृत्यु भी
[धावति] उसी के भय से इधर उधर भाग कर नियमानुकूल
प्राणियों को मारता है अथवा जिस का मरना ब्रह्म की
इच्छा से विपरीत है उस से पृथक् भागता है उसको मार
नहीं सकता ॥

भा०—जैसे हाथ में शस्त्र उठाये हुए स्वामी को सम्मुख

आते देखकर नौकर लोग अपने २ कान में नियम से भागते हैं वैसे ही उस २ के अभिमान की जीव रूप से उस २ सूर्य मण्डलादि में अवस्थित एक ही विभु चेतन स्वरूप परब्रह्म के भय से सूर्य चन्द्र और तारा आदि सृष्ट जगत्, मूर्तिवत्, विश्वास न लेता हुआ नियमानुकूल भागता है । उसी की ज्ञान के ही मुक्ति हो सकती है ॥ ३ ॥

Here it becomes known before of this body
इह चैदशकद बोद्धं प्राक् शरीरस्थ
it falls then to the creature to get body
विस्मयः । ततः सर्गेषु लोकेषु शरीरत्वाय
becomes possible
कल्पते ॥ ४ ॥ *it seems inconsistent with an usual doctrine that knowledge of the Atman*

अ०—(चैव) यदि मनुष्यः (शरीरस्थ) (विस्मयः) विध्वंसनात् (प्राक्) पूर्वमेव (इह) अस्मिन् जन्मनि लोके वा (बोद्धुम्) (अशक्य) यस्य ब्रह्मणो भयादेव सर्वं जगत्स्वस्वकर्मणि चेष्टते तमेव सर्वत्र सर्वात्मकत्वेन साक्षात् कुर्यात् तर्हि वर्त्तमाने जन्मन्येव कल्याणभाग भवति । चेद्यदि बोद्धुमिह न शक्नोति (ततः) तस्माद्बोधात् (सर्गेषु) सृज्यन्ते खण्डं योग्या मनुष्यादिप्राणिनः स्थावराश्च येषु तेषु (लोकेषु) पृथिव्यादिषु (शरीरत्वाय) शरीरभावाय शरीरमुपादातुम् (कल्पते) समर्थो भवति ॥

अ०—मनुष्येण शरीरपतनात्पूर्वमेवात्म-
ज्ञानाय प्रयत्नाऽनुष्ठेयः । यस्मादिहैव ब्रह्म-
ज्ञानप्रकाशेनाज्ञानान्धकारनिवृत्तौ सर्वोपद्रवा
निवर्त्तयन्' जन्मान्तरे पशुतिरश्चादियोनिषु
विहरन्कदा प्रसंगः स्यात् । नहि सदा मनु-
ष्योनावुत्तमविवेकिप्रसङ्गे च जन्म स्यादिति
सम्भवश्च ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(चेत्) यदि मनुष्य (शरीरस्य) शरीर के
(विस्मृतः) विध्वंस होने कूटने से (प्राक्) पहिले ही (इह)
इस जन्म वा लोकमें (बोद्धुम्) जाननेको (अशक्त) जिस
ब्रह्म के भय से ही सब जगत् अपने २ काम में चल रहा है
उसी को सब में सब रूप से साक्षात् करे तो इसी जन्म में
कल्याणभागी हो सकता है । और यदि नहीं जान सकता
तो (ततः) उस अज्ञान के होने से (सर्गेषु) रचना में आने
वाले मनुष्यादि चर प्राणी तथा अचर जिन में रहे जाते उन
(लोकेषु) पृथिव्यादि लोकों में [शरीरत्वाय] शरीर ग्रहण
करने के लिये [कल्पते] समर्थ होता है ॥

भा०—मनुष्य को योग्य है कि शरीर कूटने से पहिले
ही आत्मज्ञान के लिये प्रयत्न करे जिस से इसी जन्म में
ब्रह्मज्ञान रूप प्रकाश से अज्ञान रूप अन्धकार की निवृत्ति
होने पर सब उपद्रवशान्त होवें जिससे अन्त समय पश्चात्ताप
न करता पड़े कि हम ने कुछ न कर पाया जंजालमें ही जन्म
वीत गया । जन्मान्तर में पशु पक्षी आदि योनियोंमें अमता
हुआ जीव को कब मनुष्य योनिमें आने का अवसर मिलेगा
सदा मनुष्य योनि में और वहां भी उत्तम ज्ञानी लोगों में
जन्म हो यह सम्भव नहीं ॥ ४ ॥

as in the world of Brahman as in light
 Brahman is perceived differently in different
 7 conscious states as in the light
 as in the light as in the self as in dream

यथाऽऽदृशं तथाऽऽत्मनि यथा स्वप्न तथा
 पितृलोके । यथाप्सु परीव दृश्यं तथा
 गन्धर्वलोके छायातपयोरिव ब्रह्मलोके ॥५॥
 अ०-कथामह बाद शक्य आत्मेत्युच्यते
 (यथा) (आदर्श) दर्पणे स्वमुखादि दृश्यते

(तथा) तेनैव प्रकारेण (आत्मनि) शुद्धे
 निर्मले बुद्धिरूपेऽन्तःकरणे ध्यानयोगेनात्मतत्त्वं
 दृश्यते (यथा) (स्वप्ने) स्वप्नावस्थाया-
 मिन्द्रियार्थाभावेऽपि पदार्थाः प्रत्यक्षा इव
 दृश्यन्ते श्रूयन्ते च (तथा) (पितृलोके)
 पितृयोनस्थसर्वप्राणिनां स्वप्नवदविविक्तमा-
 त्मदर्शनं भवति (यथा) (अप्सु) उदके (परी-
 वददृश्ये) परिदृश्यत इवाविस्पष्टावयवं शरीरं
 दृश्यते (तथा) (गन्धर्वलोके) देवगन्धर्व-
 निवासे गन्धर्वयोनस्थसर्वप्राणिनामस्पष्ट-
 मात्मदर्शनं भवति (छायातपयोरिव) यथा
 छायातपयोः स्पष्टं भेदा लक्ष्यते तथा (ब्रह्म-
 लोके) सप्तमाकाशे सत्यलोके ये गच्छन्ति ते
 स्पष्टमेव साक्षादात्मानं पश्यन्ति ॥

भा०—अत्र स्वप्नोदकच्छायातपानां दृ-

*Separately produced - & originates separately from
Rising & setting - & the (959c) - process & in the
of the address, as explained in their working
state. The force of the epithet is that the sense*

पटान्तत्रय परीक्षाविषयमादशदृष्टान्त एकः
of their changeful nature can't stay well

प्रत्यक्षविषयकः । योगाभ्यासरीत्या बुद्धिः

संशोध्य तदा दर्पणवन्निर्मले स्वच्छे बुद्धिसत्त्वे

ध्यानेन साक्षादात्मतत्त्वं दृश्यते । अस्य प्रत्य-

क्षविषयस्य तथात्वे परीक्षस्यापि सत्यत्वं प्रत्ये-

तव्यम् ॥ ५ ॥

भाषार्थः—इसी जन्म में आत्मज्ञान कैसे हो सकता है
सो कहते हैं—(यथा) जैसे (आदर्श) दर्पण में अपना मुख
आदि दीखता है (तथा) वैसे ही (आत्मनि) शुद्ध निर्मल
बुद्धिरूप अन्तःकरण में ध्यानयोग से आत्मतत्त्व दीखता है
(यथा) जैसे (स्वप्ने) स्वप्नावस्थामें इन्द्रियों और वस्तु
का सम्बन्ध न होने पर भी पदार्थ प्रत्यक्ष जैसे दीखते वा
सुन पड़ते हैं (तथा) वैसे (पितृलोके) पितृयोनिमें उत्पन्न
होने वाले सब प्राणियोंकी स्वप्नके तुल्य विवेक रहित आत्म-
तत्त्व दीखा करता है (यथा) जैसे (अण्डु) जलमें [परीव-
ददृशे] सब ओरसे गोलाकार स्पष्ट अवयवोंकी प्रतीतिके
बिना शरीरकी छाया दीखती है [तथा] वैसे [गन्धर्व-
लोके] देव गन्धर्वयोनिमें प्राणियोंकी अविस्पष्ट आत्मज्ञान
स्वरूप हुआ करता है और [छायातपयोरिव] जैसे छाया
और घनमें स्पष्ट भेद प्रतीत होता वैसे [ब्रह्मलोके] अपने
पुण्यके प्रतापसे जो लोग सातवें सत्य लोकमें जाते हैं वे घन
छायाके तुल्य स्पष्टतया आत्माको भिन्न देखते हैं ॥ ५ ॥

Senses, separate, existing, rising & setting
इन्द्रियाणां पथगभावमुदयास्तमयो च

which are of separate origin, which rise & set
यत् । पथगुत्पद्यमानानां मत्वा धीर न

appearing not the self is it para
शोचति ॥ ६ ॥

अ०-(पृथगुत्पन्नमानानाम्) स्वस्वश-
ब्दादिविषयग्रहणप्रयोजनाय स्वस्वकारणादा-
काशादेः पृथक् पृथगुत्पन्नानाम् (इन्द्रिया-
णाम्) श्रोत्रादीनां नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभा-
वात्सच्चिदानन्दस्वरूपाज्जीवरूपेणावस्थिता-
त्परमात्मनः (पृथग्भावम्) (च) (यत्) यो
(उदयास्तमयौ) उत्पत्तिविनाशावाविर्भाव-
तिरोभावौ जीवनमरणे ते अपीन्द्रियाणां शरी-
रस्य वा स्तइति (मत्वा) ज्ञात्वा (धीरः)
धीमानविवेकी जनः (न, शोचति) न शोका-
कुलो भवति ॥

भा०—शरीरस्थोऽप्यात्मा शरीरेन्द्रियैः
कदाचिदपि न संयुज्यते अतोऽपृथक्त्वं प्राप्त-
स्यैव जीवात्मनइन्द्रियैर्भ्यः पृथग्भाव उच्यते ।
आविर्भावतिरोभावौ चेन्द्रियाणां शरीरस्य च
जन्ममरणप्राप्ती भवतो न त्वात्मनः । स तु
सदैकरसो नित्य एकः शुद्ध उत्पत्तिविनाशा-
दिधर्मैर्भ्यः पृथग्वर्त्तमानइति ज्ञात्वा ज्ञानी
शोकातिगो मोदते । अर्थाज्जन्ममरणादयो ये
दुःखहेतवः स्वस्मिन्ज्ञानिनारोपितास्तेषां वस्तु-
तोऽभावेप्रतीयमानेऽखिलं दुःखं निवर्त्तते ॥६॥

(Great Atman (see) Hiran-garhke)

भाषार्थः—(पृथगुत्पद्यमानानाम्) अपने २ शब्दादि विषयके ग्रहण करनेके लिये अपने २ आकाशादि कारणसे पृथक् २ उत्पन्न हुए (इन्द्रियाणाम्) ओन्नादि इन्द्रियां नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव सच्चिदानन्द स्वरूप जीव नाम रूपसे स्थित परमात्मासे (पृथग्भावम्) पृथक् हैं (च) और (यत्) जो (उदयास्तमयौ) उत्पत्ति विनाश वा जन्मरूपसे प्रकट होना तथा मरण रूपसे अप्रकट होना हैं वे भी इन्द्रियों तथा शरीरके ही धर्म हैं इस प्रकार सबसे पृथक् शुद्ध सनातन अपने को (मत्वा) जानके (धीरः) बुद्धिमान् सत् असत्का विवेक करने वाला पुरुष (न, शोचति) शोकयुक्त नहीं होता ॥

भा०—जीव रूपसे इसी शरीरमें रहता हुआ भी आत्मा शरीर और इन्द्रियोंके दोषोंसे कभी लिप्त नहीं होता । इस कारण इन्द्रिय दोषसे जिसका लिप्त होना प्राप्त है उस जीव का ही इन्द्रियोंसे पृथक् होना कहा है । प्रकट अप्रकट होने जन्म मरणकी प्राप्तिमें इन्द्रियों वा शरीरके होते हैं किन्तु आत्माके नहीं वह तो सदा एकरस, नित्य, एक, शुद्ध और सनातन उत्पत्ति विनाशसे सदा पृथक् है ऐसा जानकर ज्ञानी शोकसे रहित सदानन्द भोगता है अर्थात् दुःखोंके हेतु जन्म मरणादि भावोंको अज्ञानसे अपनेमें जान लेने पर सब दुःख होते हैं । और जब जन्म मरणादि वस्तुतः अपनेमें नहीं ऐसा निश्चय हो जाने पर सभी दुःख नष्ट हो जाते हैं ॥६॥

इन्द्रियेभ्यः परं मनो मनसः सत्त्वमु-
त्तमम् । सत्त्वादधि महानात्मा महतोऽन्य-
त्तमुत्तमम् ॥७॥

अ०—(इन्द्रियेभ्यः) ग्राहकाणीन्द्र-

याणि ग्राह्या विषयास्तद्द्वयमपीन्द्रियशब्देन
 गृह्यते विषयेन्द्रिभ्यः (मनः) (परम्)
 सूक्ष्मम् (मनसः) (सत्त्वम्) सत्त्वगुणा-
 त्तिका बुद्धिः (उत्तमम्) शुद्धा सूक्ष्मा च
 (सत्त्वात्) (अधि) उपरि शुद्धं सूक्ष्मम्
 (महान्, आत्मा) महत्तत्त्वमुत्तमम् (महतः)
 महत्तत्त्वात् (अव्यक्तम्) प्रकृतिनामकं कार-
 णम् (उत्तमम्) ॥

भा०—इन्द्रियादिभ्यः परेषां शुद्धत्वमु-
 त्तमत्वं सूक्ष्मत्वं च प्रत्यगात्मवृत्तिकरणाय
 प्रतिपाद्यते ॥ ७ ॥

भा०—(इन्द्रियेभ्यः) इन्द्रिय और उनके शब्दादि
 विषयोसे (मनः) मन (परम्) सूक्ष्म और निर्मल (मनसः)
 मनसे (सत्त्वम्) सत्त्वगुण रूप बुद्धि (उत्तमम्) उत्तम निर्मल
 वा सूक्ष्म (सत्त्वात्) बुद्धिसे (अधि) ऊपर शुद्ध सूक्ष्म (महान्,
 आत्मा) महत्तत्त्व, उत्तम (महतः) महत्तत्त्वसे (अव्यक्तम्)
 प्रकृति नामी कारण (उत्तमम्) उत्तम वा सूक्ष्म निर्मल है ।

भा०—इन्द्रियादिसे पर २ मन आदिका शुद्ध उत्तम और
 सूक्ष्म होना सूक्ष्मसे सूक्ष्म अन्तरात्मा में चित्त ठहरानेके लिये
 कहा गया है ॥ ७ ॥

अव्यक्तत्वे परःपुरुषा व्यापकाऽलिङ्ग-
 एव च । यज्ज्ञात्वा मुच्यते जन्तुरमृतत्व-
 च गच्छति ॥ ८ ॥

अ०—(अव्यक्तात्) सर्वोपादानकारणात् (पुरुषः) पुरि ब्रह्माण्डे शयानः (व्यापकः) (च) (अलिङ्गः) बुद्ध्यादिलिङ्गानि यस्य न सन्ति (एव) प्रत्यगात्मा (परः) सूक्ष्मः शुद्धश्च (यत्) यम् (ज्ञात्वा) (जन्तुः) मनुष्यः (मुच्यते) दुःखादिति शेषः (च) (अमृतत्वम्) मुक्तिभावम् (गच्छति) प्राप्नोति ।

भा०—यः सर्वस्मात्सूक्ष्मः शुद्धोऽकृतचिन्हसंकेतः सर्वत्र चराचरे जगति व्याप्तः प्रत्यगात्मरूपेणावस्थितः परमात्मास्ति तमेव धीरो विज्ञाय मुक्तिसुखाधिकारी भवति ॥ ८ ॥

भाषार्थः—(अव्यक्तात्) सब वस्तुके उपादान कारण प्रकृतिसे (पुरुषः) सब ब्रह्माण्डमें शान्ति पूर्वक स्थित (व्यापकः) व्यापक (च) और (अलिङ्गः) बुद्धि आदि चिन्ह जिसके नहीं हैं जो सब संसारके धर्मोंसे वर्जित है (परः) सूक्ष्म तथा शुद्ध (एव) ही है (यत्) जिसको शास्त्र प्रमाणसे तथा आचार्योंके उपदेशसे (ज्ञात्वा) जानके (जन्तुः) मनुष्य दुःख से (मुच्यते) छूट जाता है (च) और (अमृतत्वम्) मुक्ति सुखको (गच्छति) प्राप्त होता है ॥

भा०—जो सबसे सूक्ष्म वा शुद्ध जिसमें किसी प्रकारका अन्तःकरणादिका चिन्ह नहीं जो सब चराचर जगत्में व्याप्त अन्तरात्मा रूपसे अवस्थित परमात्मा है उसीको जानके विद्वान् पुरुष मुक्ति सुखका अधिकारी होता है अर्थात् मैं शरीर

वा इन्द्रियादिके सब विकारों तथा दोषोंसे युक्त हूं ऐसा जानने पर युक्त हो सकता है ॥ ८ ॥

न सन्दृशेतिष्ठति रूपमस्य न चक्षु-
षा पश्यात कश्चननम् । हृदा मनीषा मन-
सा भिक्लृप्ता य एताद्वदुर्मृतास्त भवन्ति ॥ ९ ॥

अ०—यद्यलिङ्गस्तर्हि कथं दर्पणे मुख-
मिव दृष्टौ दृश्यत इत्युच्यते (अस्य) अचि-
न्त्याव्यक्तरूपस्य (सन्दृशे) समक्षे किमपि
(रूपम्) (न, तिष्ठति) (एनम्) प्रत्य-
गात्मनम् (चक्षुषा) नेत्रेणापि—उपलक्ष-
णमेतदिन्द्रियमात्रस्य सर्वेन्द्रियैरपि (कश्च-
न, न, पश्यति) न विजानाति कथं तर्हि विजा-
नाति (हृदा) हृत्स्थेन (मनीषा) संकल्प-
विकल्पात्मकवृत्तिमनस्तस्याभिभावकेन निश्च-
यात्मकबुद्धिरूपेण (मनसा) मननसामर्थ्येन
(अभिक्लृप्तः) अभितः प्रकाशितो दृष्टोऽन्तरा-
त्मा ज्ञातुं शक्यः (ये) विद्वांसः (एतत्)
जीवरूपेणावस्थितं शरीरं ब्रह्म (विदुः) (ते)
(अमृताः) जन्ममरणरहिता मुक्ताः (भवन्ति) ।

भा०—यद्यप्यस्य प्रत्यगात्मन इन्द्रिय-
ग्राह्यं किमपि स्वरूपं न विद्यते तथापि प्रत्य-

गात्मविचारे प्रवृत्तया व्यवसायात्मिकसूक्ष्म-
प्रज्ञया प्रकाशितो द्रष्टुं शक्यः । एवं ज्ञानेक-
तश्चमा जना मुक्ता भवन्ति ॥ ९ ॥

भाषार्थः—यदि उसमें कोई चिन्ह नहीं है तो दर्पण-
में मुखके तुल्य शुद्ध बुद्धिमें कैसे देखा जा सकता है सो कहते
हैं—(अस्य) इस अचिन्त्य और अव्यक्त स्वरूप परमेश्वरका
(सन्दृष्टे) सामने (रूपम्) कोई रूप (न, तिष्ठति) स्थित
नहीं है (एनम्) इस अन्तरात्माको (कथन) कोई (चक्षुषा)
आंख आदि इन्द्रियसे (न, पश्यति) देख वा जान नहीं
सकता तो कैसे जान सकता है सो कहते हैं—(हृदा) हृदयस्थ
(मनोपा) मनकी संकल्प विकल्प करना रूप वृत्तिकी दृष्टाने
वाले निश्चयात्मक बुद्धिरूप (मनसा) मनन सामर्थ्यसे (अभि-
कलूषः) सब ओरसे प्रकाशित वा प्रत्यक्ष हुआ अन्तरात्मा
जाना जा सकता है (ये) जो विद्वान् लोग (एतत्) इस
जीव रूपसे अवस्थित शरीरस्थ ब्रह्मको (विदुः) जानते हैं
(ते) वे (अमृताः) जन्म मरण रहित हुए मुक्त (भवन्ति)
होते हैं ।

भा०—यद्यपि इस अन्तरात्माका इन्द्रियोंसे ग्रहण करने
योग्य कुछ स्वरूप नहीं है तो भी भीतरी विचारमें प्रवृत्त हुई
निश्चयात्मक सूक्ष्म बुद्धिसे प्रकाशित हुआ देखने वा जानने
योग्य होता है इस प्रकार ज्ञानमें परिश्रम करने वाले मनुष्य
मुक्त होते हैं ॥ ९ ॥

यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा
सह । बुद्धिश्च न विचिष्टत तामाहुः पर-
मा गतिम् ॥ १० ॥

अ०—पुनः कथमात्मतत्त्वं ज्ञायतइत्यु-
च्यते (यदा) (पञ्च) (ज्ञानानि) योगा-
भ्यासेन स्वस्वविषयान्निवर्तितानि श्रोता-
दीनि ज्ञानेन्द्रियाणि (मनसा, सह) (अव-
तिष्ठन्ते) यदा (च) (बुद्धिः) सत्त्वगुणानुरक्ता
सती (न, विचेष्टते) राजसतामस कार्येषु वि-
रुद्धा न प्रवर्तते (ताम्) तादृशीं शान्तावस्थां
विद्वांसः (परमाम्) सर्वोत्तमाम् (गतिम्)
जीवन्मुक्तिदशाम् (आहुः) कथयन्ति ॥

भा०—यदा मनुष्यस्येन्द्रियछिद्रद्वारा-
निःसरणशीला बाह्याऽभ्यन्तरस्था बुद्धिरूपा च
वृत्तिः शान्ता निरुपद्रवा तिष्ठति कथमपि
स्वभावाद्विरुद्धा न भवति तदा जीवन्मुक्ति-
दशमापन्नस्य तस्य ज्ञानिनो मुक्तिद्वारमपा-
वृतं विज्ञेयम् ॥ १० ॥

भाषार्थः—फिर किस प्रकार आत्मतत्त्व जाना जाता
है सो कहते हैं—(यदा) जब (पञ्च) पांच (ज्ञानानि)
योगाभ्यास द्वारा अपने २ विषयोंसे हटाये गये श्रोत्र आदि
ज्ञानेन्द्रिय (मनसा, सह) मनके साथ (अवतिष्ठन्ते) चंचलता
रहित स्थित हो जाते हैं (च) और जब (बुद्धिः) सत्त्वगुणमें
रंगी हुई बुद्धि (न, विचेष्टते) कार्योंमें विरुद्ध नहीं चलती
अर्थात् विषय वासना से दूषित नहीं होती विद्वान् लोग (ताम्)

उत्त शान्त स्थिर (परमाम्) सर्वोत्तम (गतिम्) अवस्थाको
जीवन्मुक्तदशा (आहुः) कहते हैं।

भा०—जब मनुष्यके इन्द्रिय रूप छिद्रों द्वारा निकलने वाली बाह्य वृत्ति और भीतर अन्तःकरणमें ठहरने वाली बुद्धिरूप वृत्ति सब उपद्रवोंसे रहित शान्त स्थित हो जाती है किसी प्रकार अपने नियत स्वभावमें विचलित नहीं होती तब जीवन्मुक्त दशाको प्राप्त हुए जानी मनुष्यके लिये मुक्ति का द्वार खला समझना चाहिये ॥ १० ॥

तां योगामति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रियधारणाम् । अप्रमत्तस्तदा भवति योगी हि प्रभवाप्ययौ ॥ ११ ॥

अ०—(ताम्) (स्थिराम्) अचलाम् (इन्द्रियधारणाम्) (योगम्, इति) योग-सिद्धियोगफलमिदमेवास्तीति ज्ञानिनः (मन्यन्ते) (तदा) योगी (अप्रमत्तः) प्रमादरहित-उदासीनो निर्विण्णः (भवति) (हि) यतः कारणात् (योगः) योगसिद्धौ सत्याम् (प्रभवा-प्ययौ) आद्यदुष्टसंस्काराणां विनाशः शुद्धनूतनसत्त्वगुणवर्द्धककल्याणकारिसंस्काराणामुत्पत्तिर्भवति ॥

भा०—यदा योगाभ्यासेन सर्वेन्द्रियाणि दृढत्वेन स्थिराणि जितानि भवन्ति तदा योगः सिद्धो भविष्यतीत्यनुमीयते । योगे प्रवृत्ते

being beyond all the senses & mind can rest
 him self except without being troubled by a man
 no. One has to give up his worldly attachments in
 a firm that there is no more attachment to his
 लवोनशुद्धसंस्काराणामालम्बः पूर्वेण दुष्ट-

संस्काराणां च तिरोभावो जायते तदा स्व-
 पेक्षस्थितौ द्रष्टा प्रमादरहितो विज्ञानात्मा
 याथातथ्येन सर्वं विजानाति ॥ ११ ॥

भाषार्थः—(ताम्) उत्त (स्थिराम्) अचल (इन्द्रिय-
धारणाम्) इन्द्रियोंकी धारणा रूप दशाको ज्ञानी लोग
(योगम्, इति) योगसिद्धि वा योगका फल है ऐसा (भन्यन्ते)
मानते हैं (तदा) तब योगी (अग्रन्तः) प्रसाद रहित
उदासीन (भवति) होता है (हि) किस कारण (योगः)
योगसिद्धि होने पर (प्रभवाप्ययौ) पहिले दुष्ट संस्कारोंका
विनाश और सत्वगुणको बढ़ाने वाले कल्याणकारी विगुह
नवीन संस्कारोंकी उत्पत्ति होती है ॥

भा०-जब योगाभ्यासे सब इन्द्रिय दृढरूपसे स्थिर
हुए जीत लिये जाते हैं तब योगसिद्धि होनेका अनुमान
निश्चित हो जाता है । योगकी प्रवृत्तिमें नवीन शुद्ध संस्कारों
की प्रकटता और पहिले दुष्ट संस्कारोंका अन्तर्धान होजाता
है तब स्वरूपमें स्थित प्रसाद रहित द्रष्टा अन्तरात्मा यद्यपि
रूपसे सबको जानता है ॥ ११ ॥

नव वाचा न मनसा प्राप्त शक्या
न चक्षुषा । अस्तीति ब्रवतीत्यत्र कथं
तदुपलभ्यते ॥ १२ ॥

अ०—केनापीन्द्रियेण यन्तोपलभ्यते त-
न्नास्तीति प्राप्त इदमुच्यते (नैव, वाचा, न,
मनसा, न, चक्षुषा) न चान्यैरिन्द्रियैरपि

प्रत्यगात्मा (प्राप्तुम्, शक्यः) किन्तु (अस्तीति) (ब्रूयतः) पुरुषात् (अन्यत्र) नास्तिकवादिनि पुरुषे (तत्) (कथम्, उपलभ्यते) न कथमपीत्यर्थः । अर्थात् मनुष्यदेहादिकार्याणि स्वस्वकारणे लीयमानानि कारणात्मना तेषामस्तित्वं प्रत्याययन्ति । तेन सर्वं चराचरं यत्कारणसत्तया सदिति मन्यन्ते तदेवास्ति ततोऽन्यत्र नास्तिकवादिनि न कथमप्युपलभ्यते ॥

भा०—प्रसिद्धं संसारे सत्तासामान्यं नातः परं सामान्यमन्यदस्ति तस्माद्यत्सर्वस्मिन्सदात्मकं तदस्तीत्येव प्रतीयते । अतएव नास्तिकमते तस्य प्रतिपादनं नास्ति । कारणात्मनाऽस्तित्वं च युक्तिसिद्धमते नास्तिकवादः प्रत्यक्षानुमानाभ्यामपि निराकर्तुं शक्य इति १२

भाषार्थः—किसी भी इन्द्रिय द्वारा जो नहीं जाना जाता उस ब्रह्मका अभाव प्राप्त होने पर समाधान कहते हैं कि यद्यपि (नैव, वाचा) न तो वाणीसे (न, मनसा) न मन से (न, श्रुत्या) न आंखसे तथा न अन्य इन्द्रियोंसे ब्रह्म (प्राप्तम्) प्राप्त (शक्यः) हो सकता है किन्तु (अस्तीति) ब्रह्म है ऐसा (ब्रूयतः) कहते हुएसे (अन्यत्र) अन्य नास्तिकवादी पुरुषमें (तत्) वह (कथम्) किस प्रकार (उपलभ्यते) प्राप्त होता है ? अर्थात् किसी प्रकार नहीं । अर्थात् मनुष्यके शरीरादिकार्य अपने २ कारणमें लीन होते हुए

2. The 2 Concepts Being & Non-being.
 It is more 2 impressions rather than 1, it is less absolute still (2+). 5 manifestation is not absolute but belongs to the same nature.
 Absolute & the manifestation in the world is the same.
 कारण रूपसे उन कार्यों को अस्तित्व सिद्ध करते हैं। इससे सभी चराचर जिसको सत्तासे है ऐसा माना जाता है वही उसका होना है। उससे भिन्न नास्तिक वादमें किसी प्रकार प्राप्त नहीं हो सकता ॥

भा०—ससारमें सत्ता सामान्य प्रसिद्ध है, इस सत्तासे भिन्न अन्य कोई बड़ा सामान्य नहीं है, इससे जो सबमें सारूपसे विद्यमान है वही अस्तित्वप्रतीत होता है, इसीसे नास्तिक मतमें उसका प्रतिपादन नहीं हो सकता और कारण रूपसे उसका अस्तित्व युक्तियोंसे भी सिद्ध है। इसी कारण नास्तिक वाद प्रत्यक्ष और अनुमान प्रमाणोंसे भी खण्डित हो सकता है ॥ १२ ॥

अस्तीत्यवोपलब्धव्यस्तत्त्वभावेन
 चोभयोः । अस्तीत्यवोपलब्धस्य तत्त्वभावः
 प्रसादाति ॥ १३ ॥

अ०—(उभयोः) अस्तित्वास्तित्येतयोर्बन्धये (तत्त्वभावेन) आकाशादिपञ्चतत्त्वानां सत्तया (च) सत्त्वगुणात्मिकया सूक्ष्मप्रज्ञया चास्य सर्वस्य नियन्ता परीक्षः कश्चित् (अस्ति) इत्येव (उपलब्धव्यः) यदि न स्यात्तर्हि तत्त्वानि नियन्तारमन्तरेण कथं निरवलम्बानि भवतान्यवतिष्ठेरन् (अस्तीत्येव, उपलब्धव्यस्य) अस्तीति विश्वासद्वयानेनोपलब्धस्य पुरुषस्य (तत्त्वभावः) सात्मकः शरी-

रेन्द्रियसमुदायः (प्रसीदति) प्रसन्नः शोक-
मोहादिगहितो भवति ।

भा०—आस्तिकस्य परमात्मध्याननिष्ठ-
स्यैव पुरुषस्य चेतः प्रसीदति—

प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते ।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठत इति भग-
वद्भगीतासु । एवं सति सुखमेवोपलभ्यते न
हीदृशं सुखं नास्तिकेन प्राप्तुं शक्यमत उभयो-
र्मध्येऽस्तीत्येव मन्यमानः श्रेयोभागभवति ॥ १३ ॥

भाषार्थः—(उभयोः) होने न होने दोनोंमें से (तत्त्व-
भावेन) आकाशादि पंचतत्त्व सम्बन्धी कार्य वस्तुओंकी
विद्यमानता (च) और सत्त्वगुणरूप सूक्ष्म बुद्धिसे इस सबका
नियन्ता परोक्ष कोई ईश्वर (अस्ति) है (इत्येव) इसी प्रकार
(उपलब्धस्य) प्राप्त होने योग्य है यदि न हो-तो पंचतत्त्व
किसी नियन्ताके बिना निरालम्ब नियम पूर्वक कैसे ठहरे ?
(अस्तीत्येव) है ऐसे ही विश्वाससे (उपलब्धस्य) ध्यानसे
प्राप्त होने वाले मनुष्यका (तत्त्वभावः) चेतन शरीर इन्द्रियों
का समुदाय (प्रसीदति) शोक मोह रहित प्रसन्न होता है ।

भा०—परमात्माके ध्यानमें निष्ठ आस्तिक पुरुषका ही
चित्त प्रसन्न होता है । भगवद्भगीतामें कहा है कि चित्तके
शुद्ध प्रसन्न होनेसे सब दुःखोंकी हानि होजाती और जिसका
चित्त प्रसन्न वा निर्मल निष्कलंक है उसकी बुद्धि शीघ्र स्थिर
हो जाती है । ऐसा होनेसे नास्तिकको कुछ कदापि नहीं
मिल सकता इससे अस्ति नास्ति दोनोंमेंसे अस्तिको भानता
हुआ ही कल्याणका भागी होता है ॥ १३ ॥

Des 2004

^{when all are destroyed desires}
यदा सर्वं प्रसुच्यन्ते कामा येऽस्य ^{the}
^{in the heart dwelling} हृदि श्रिताः । ^{then the heart becomes free} अथ मर्त्याऽमृता भवत्यत्र
^{in the world becomes free} ब्रह्म समश्नुते ॥ १४ ॥
(14 + 15)

अ०—(ये) (अस्य) प्राणिनः (हृदि)
अन्तःकरणे (श्रिताः) वासनावासिताः (कामाः)
प्रसदासङ्गादिजन्यविषयभोगाभिलाषाः (सर्वे)
ते (यदा) (प्रसुच्यन्ते) परवैराग्याभ्यास-
सेवनेन दूरीभवन्ति (अथ) तदा नोम् (मर्त्याः)
(अमृतः) मुक्तः (भवति) (अत्र) मुक्त-
दशायाम् (ब्रह्म) (समश्नुते) सम्यगाप्नोति ॥

भा०—यावद्विषयभोगेषु रागस्तद्विरुद्धेषु
द्वेषश्च न निवर्तते तावन्मुक्तिर्भवेदितुमशक्या ।
यदाऽनादिकालसंचितविषयभोगोत्कण्ठा योगा-
भ्यासेन हृदयाद्दूरीभवति तदा विवेकी जन्म-
मरणप्रवाहग्राह्याद्विमुक्तो ब्रह्मी भवति ॥ १४ ॥

भाषार्थः—(ये) जो (अस्य) इस प्राणीके (हृदि)
अन्तःकरणमें (श्रिताः) वासनाओंसे बसाई हुई (कामाः)
स्त्री प्रसंगादिसे होने वाली विषय भोगोंकी अभिलाषाएँ
(सर्वे) सब हैं वे (यदा) जब (प्रसुच्यन्ते) पर वैराग्यके
सेवनसे दूर हो जाती हैं (अथ) तब (मर्त्याः) मनुष्य
(अमृतः) मुक्त (भवति) होता और (अत्र) इस मुक्ति-
दशामें (ब्रह्म) ब्रह्मकी (समश्नुते) सम्यक् प्राप्त हो जाता
है अधुना जो ब्रह्म समश्नुते जाता है ॥

Knows - The 1st example + 1st instruction :- 509
Instruction :- 509

भा०—जब तक विषय भोगोंमें रम्य और उससे विरुद्धोंमें द्वेषकी निवृत्ति नहीं होती तब तक मुक्ति नहीं हो सकती । जब अनदि कालसे संचित विषय भोगकी उत्कण्ठता योगाभ्यास द्वारा हृदयसे दूर हो जाती है तब विवेकी पुरुष जन्म मरणके प्रवाह रूप धाहसे छटा ब्रह्म भावको प्राप्त होता है ॥१४॥

when all are free from the bondage of the senses, then the heart is free from the bondage of the senses.
यदा सर्वे प्रमथन्ते हृदयस्य ह ग्रन्थयः । अथ मत्यास्मता भवत्यतविदनुशासनम् ॥ १५ ॥
Knows - Then the heart is free from the bondage of the senses.
be infirmation (instruction)

अ०—तदेव द्रढयति- (यदा) (इह) अस्मिन्नगति (हृदयस्य) अन्तःकरणस्य (सर्वे) (ग्रन्थयः) अहं वालो युवा वृद्धः काणः खञ्जः पुरुषः स्त्री क्लोवो वास्मि जातोऽहं मरिष्यामि हनिष्यामीत्यादिवासनारूपपरश्चिभिर्बुद्धबन्धनानि सन्ति तानि (प्रमथन्ते) ध्वस्तानि भवन्ति । शरीरस्येमे धर्मा अहं प्रत्यगात्मा शुद्धो नित्यश्चास्मि नाहं स्वरूपतो विकारापन्ना इति ज्ञानं ग्रन्थिनिर्माकः (अथ) तदा (मर्त्यः) (अमृतः) मुक्तः (भवति) (एतावत्) (अनुशासनम्) शास्त्रोपदेशः । एवं कृत्वैवेष्टमाप्नोत्यनिष्टं च जहाति ॥

भा०—यदा मनुष्यस्य हृदयबन्धनानि मुच्यन्ते तदा स मुक्तो भवति ।

... his etc. The Sushrama of the ...
 ... lead etc. - it when the ... departs with the ...
 ... it is - in ... into this world after ...
 ... according to Karma & desire.

करणस्य बन्धनानां निमोके परमः प्रयत्ना
 विधेयो नातः परं कर्त्तव्यमुपदेशो वास्ति ॥१५॥

भाषार्थ—फिर उसी बातको बृद्ध करते हैं—(यदा) जब
 (इह) इसी जन्ममें (हृदयस्य) अन्तःकरणकी (सर्वे) सब
 (ग्रन्थयः) गांठें [कि मैं बालक, जवान, बृद्ध, काणा, खंजा,
 स्त्री, पुरुष वा नपुंसक हूं मैं उत्पन्न हुआ भ्रूंगा वा किसी
 की नार डालूंगा इत्यादि वासना रूप रश्मियोंमें बृद्धता
 पूर्वक लगी हुई] (प्रमिद्यन्ते) छूट जाती हैं तो विचारता
 है कि ये बाल्यादि शरीरके धर्म हैं मैं अन्तरात्मा सच्चिदा-
 नन्द स्वरूप शुद्ध नित्य ब्रह्म हूं मैं स्वरूपसे विकारी नहीं
 होता ऐसा ज्ञान गांठोंका छूटना है (अथ) तब (मर्त्यः)
 मनुष्य (अमृतः) मुक्त (भवति) हो जाता है (एतावत्)
 इतना ही (अनुशासनम्) शास्त्रकी शिक्षा वा उपदेश है
 ऐसा करनेसे ही मनुष्य अनिष्टको छोड़ इष्टको प्राप्त हो
 जाता है ॥

Departure from the body 16 + 17

भा०—जब मनुष्यके हृदयके बन्धन छूट जाते हैं तब
 वह मुक्त होता इससे हृदयके बन्धन छूटनेके लिये मनुष्यको
 बड़ा प्रयत्न करना चाहिये इससे परे ज्ञानीको कुछ कर्त्तव्य वा
 उपदेश नहीं है ॥१५॥

ज्ञातं चेका च हृदयस्य नाड्यस्तासां
 मंडानमभिनिःसृतका । तया ध्वमयिन्नमतत्व-
 मिति विष्वङ्गन्या उत्क्रमण भवन्ति ॥१६॥

अ०—प्रयाणकाले योगो किं कुर्यादि-
 त्युच्यते—(हृदयस्य) हृदयसम्बन्धिन्योऽन्तः

करणस्थाः (शतम्) (च, एका, च) (नाड्यः)
 सन्ति (तासाम्) मध्ये (एका) सुषुम्णा
 नाडी हृदयात् (मूर्ध्नि) (अभिनिःसृता)
 (तथा) नाड्या (ऊर्ध्वम्) उक्तब्रह्माण्डछिद्रद्वारा
 (आयन्) निस्सरन् म्रियमाणो देही (अमृ-
 तत्वम्) अमरणधर्मतां सापेक्षां ब्रह्मलोकप्राप्ति-
 रूपाम् (एति) प्राप्नोति । तामेकां विहाय
 (अन्याः) शतं नाड्यः (उत्क्रमेण) पृथक्
 क्रमेण (भवन्ति) अर्थादन्यनाडीद्वारा म्रिय-
 माणः संसारप्रवाहमेवावाप्नोति ॥

भा०—स्वस्य मरणावसरं योगी पूर्वत-
 एव जानाति । शरीराद्वहिर्निस्सरणकालात्पू-
 र्वमेव योगी स्वात्मानं वशीकृत्य सुषुम्णया
 सार्द्धं योजयेत् । तथा नाड्या शरीराज्निस्सरन्
 ब्रह्मलोक प्राप्तिरूपां सापेक्षां मुक्तिमाप्नोति
 सर्वे नाडीभिर्निस्सरन्ति । अविद्याग्रस्ता नहि
 जानन्ति के वयं कदा कथं निस्सरामः । अकृ-
 तयोगाभ्यासः पुरुषः प्रयाणकाले यथेष्टं नि-
 स्सर्त्तुं नार्हति । अतः प्रयाणकालात्पूर्वमेव
 योगाभ्यासः कार्यः ॥१६॥

भा०—सरण समय योगी क्या करे सो कहते हैं—(हृद-
यस्य) हृदयमें ठहरने वाली (शतम्) सौ (च) और (एका)
एक (नाड्यः) नाड़ी हैं (तासाम्) उनके बीच (एका)
सुषुम्णा नाड़ी हृदयसे चलके (मूर्ध्नाम्) मस्तकमें (अभिनि-
स्तृता) जा निकली है (तथा) उस नाड़ीके साथ- (ऊर्ध्वम्)
ग्यारह द्वारोंमें जो ब्रह्माण्डका छिद्र कहा है उसके द्वारा
(आयन्) शरीरसे निकलता—सरता हुआ प्राणी (असृत-
त्वम्) ब्रह्मलोककी प्राप्ति रूप सापेक्ष मुक्तिकी (एति) प्राप्त
होता है । उस नाड़ीको छोड़ (अन्यः) अन्य सौ नाड़ों
(उत्क्रमेण) विपरीत फल देने वाली (भवन्ति) होती हैं
अर्थात् अन्य नाड़ी द्वारा नरा हुआ प्राणी संसारके प्रवाह
को प्राप्त होता है ॥

भा०—अपने सरणका समय योगी पूर्वसे ही जानता
है । शरीरसे निकलनेका समय आनेसे पूर्व ही योगी अपने
आत्माको वशमें करके सुषुम्णा नाड़ीके साथ युक्त करे उस
नाड़ी द्वारा शरीरसे निकलता हुआ जीवात्मा ब्रह्मलोककी
प्राप्ति रूप सापेक्ष मुक्तिकी प्राप्त हो जाता है । नाड़ियोंके द्वारा
ही प्राण निकलते हैं । अविद्यामें फंसे होनेसे प्राणी नहीं
जानते कि इन कौन हैं कब और कैसे निकल जाते हैं ।
जिसने योगाभ्यास नहीं किया वह सरण समय ब्रह्माण्ड द्वारा
नहीं सर सकता इस लिये पहिलेसे ही योगाभ्यास करना
चाहिये ॥ १६ ॥

the sign for the soul always is
अङ्गमात्रः पुरुषोऽन्तरात्मा सदा ज-
in heart something like his own body
नानां हृदय सन्निविष्टः । तं स्वाच्छरीरात्प-

बृहेन्मुञ्जादिवैषाकां धैर्येण । तं विद्याच्छुक्र-
ममृतं तं विद्याच्छुक्रममृतमिति ॥ १७ ॥

अ०—यः (अङ्गुष्ठमात्रः) उक्तप्रकारे-
णाङ्गुष्ठमात्रस्थानीयः (जनानाम्) उत्पन्नानां
प्राणिनां सम्बन्धिनि (हृदये) (सदा) (सन्नि-
विष्टः) अवस्थितः (अन्तरात्मा) (पुरुषः) शरी-
रेन्द्रियसंघातस्य पालकोऽन्तरात्मास्ति (तम्)
(मुञ्जादिव) (इषीकाम्) (धैर्येण) प्रमादं विहाय
शनैः शनैः (प्रवृहेत्) पृथक् कुर्यात् (तम्) वा-
स्तवस्वरूपेण (अमृतम्) अमरणधर्मकम् ।
स्वभावाद्भागद्वेषादिदोषरहितम् (शुक्रम्) शुद्धं
पवित्रं निर्मलम् (विद्यात्) जानीयात् । द्विर्व-
चनं ग्रन्थसमाप्तिद्योतिनार्थम् ॥

भा०—जीवात्मनः सर्वस्मादधिकप्रियं
स्वस्यैव शरीरमनादिकालात्तस्मिन्सुखानि भु-
ङ्क्ते चातस्तस्मिन्रागः । इदमेव बन्धनमय-
मेव ग्रन्थिः । अविद्याग्रस्तोऽयं शरीरान्ति-
स्सर्तुनेच्छति निस्सरणमवशं भविष्यतीति
ज्ञात्वा महत्कष्टं मनुते । तमेवभूतं हृदया-
न्तर्वर्त्ति न्यङ्गुष्ठमात्रस्थानेवस्थितं चिन्मात्र-

from it, so also will attain any one who works
 this the inner self (206)

मात्मानं योगाभ्यासादिसाधनैः शरीरबन्धना-
 न्मोचयेत् । येन पुनः शरीरधारणं न स्यात् । इय-
 सुपनिषदत्रैव समाप्तेति द्विर्वचनेन सूच्यते ॥१७॥

भाषार्थः—जो (अङ्गुष्ठमात्रः) उक्त प्रकारसे अङ्गु-
 ष्ठमात्र स्थानमें ठहरने वाला (जनानाम्) प्राणियोंके (हृदये)
 हृदयमें (तदा) तदा (सन्निविष्टः) अवस्थित (पुरुषः)
 शरीर इन्द्रियोंके समुदायका रक्षक (अन्तरात्मा) चेतनात्मा
 है (तम्) उसको (मुञ्चादिव) मुँजसे जैसे (इपीकाम्)
 सींक वा सिरकीको खींच लेते हैं वैसे (धैर्येण) प्रमाद रहित
 होके धीरे २ (प्रयत्नेत्) प्रयत्न करे (तम्) उस चिदात्माको
 वास्तव स्वरूपसे (असृतम्) अविनाशी स्वभावसे राग
 द्वेषादि दीष रहित (शुक्रम्) पवित्र निर्मल (विद्यात्) जाने
 यहां दो बार पाठ ग्रन्थ समाप्तिके लिये है ॥

भा०—जीवात्माको सबसे अधिक प्रिय अपना ही शरीर
 है अनादि कालसे उस शरीरमें सुख भोगे और भोगता है
 इससे उसमें राग है यही बन्धन और यही ग्रन्थि है । अविद्या
 में फंसा यह प्राणी शरीरसे पृथक् होना नहीं चाहता । और
 शरीर वेवश छोड़ना ही पड़ेगा ऐसा जानके बड़ा कष्ट मानता
 है उस ऐसे हृदयान्तर्वर्ती अङ्गुष्ठमात्र स्थानमें स्थित अन्तरात्मा
 को योगाभ्यासादि साधनों करके शरीरके बन्धनोंसे लुड़ावे
 जिससे फिर शरीर धारण न करना पड़े । यह उपनिषद् यहीं
 समाप्त हो गई सो दो बार पढ़नेसे सूचित होता है ॥१७॥

कृत्युप्राप्तां नचिकेतांश्च लब्ध्वा वि-
 द्यामतां योगविधिञ्च कृत्स्नम् । ब्रह्म-प्राप्तां

(२०९)

विरजोऽभूद्विमृत्युरन्योऽप्येवं यो विदध्या-
त्ममेव ॥ १८ ॥

अ०—(अथ) एतदुपनिषत्प्रतिपादि-
ताया ब्रह्मविद्यायाः फलमाह (मृत्युप्रोक्ताम्)
मृत्युना यमाचार्येण प्रतिपादिताम् (एताम्,
विद्याम्) (कृत्स्नम्) (योगविधिम्) (च) मृत्यु-
प्रोक्तमेव (नचिकेताः) (लब्ध्वा) (ब्रह्म, प्राप्तः)
(विरजः) विरक्तः (विमृत्युः) विगतो मृत्युरस्य
सः (अभूत्) (अन्यः, अपि) (यः, एवंविद्)
(अध्यात्ममेव) प्राप्तः स्यात्स विरजो विमृ-
त्युश्च भवितुमर्हति ॥

भा०—नचिकेतसा गुरूपदेशाद् ब्रह्म-
विद्या योगाभ्यासविधानं च सकलं सफलं
प्राप्तम् । अन्योपि यो ब्रह्मज्ञानमिच्छेत्तेन
गुरुशुश्रूषयाऽन्यैश्च यथोक्तसाधनैर्ब्रह्मज्ञानं
प्राप्य सर्वबाधाभ्यो विमुक्तेन भवितव्यम् ॥ १८ ॥

भाषार्थः—(अथ) अब इस उपनिषद्में कही ब्रह्मविद्या
का फल कहते हैं—(मृत्युप्रोक्ताम्) यमाचार्यने कही (एताम्)
इस (विद्याम्) ब्रह्मविद्या (य) और (कृत्स्नम्) सम्पूर्ण
साङ्गोपाङ्ग (योगविधिम्) योगके विधानको (नचिकेताः)
नचिकेता (लब्ध्वा) आचार्य से प्राप्त करके (ब्रह्म, प्राप्तः)
ब्रह्मको प्राप्त हुआ (विरजः) विरक्त और (विमृत्युः) मृत्यु

रहित जीवनमुक्त (अमृत) होगया (अन्य!) अन्य (अपि) भी (यः, एवंवित्) जो इस उक्त प्रकार गुरुकी सेवासे विद्वान् (अध्यात्ममेव) अध्यात्मविद्याको ही प्राप्त अर्थात् उक्त प्रकार इन्द्रियोंकी बाह्यशक्तिको रोकके भीतरी ध्यानमें ही प्रवृत्त हो वह भी विरक्त हुआ मुक्त होने योग्य है ॥

भा०—नचिकेता गुरुके उपदेशसे ब्रह्मविद्या और कल सहित सम्पूर्ण योगाभ्यासके विधानकी प्राप्त हुआ । अन्य भी जो ब्रह्मज्ञानकी इच्छा करे उसको चाहिये कि गुरुकी श्रुतपासे और अन्य यथोक्त साधनोंसे ब्रह्मज्ञानकी प्राप्त होके सब दुःखोंसे छूटे ॥ १८ ॥

सह नाववतु सह नौ भुनक्तु सह
वीर्यं करवावहै । तेजस्वि नावधीतमस्तु
मा विद्विषावहै ॥

ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥ १९ ॥

अ०—अथान्ते प्रार्थनाशान्तिश्चाभिधी-
यते (नौ) आवाम् (सह) सहैव परमेश्वरः
(अवतु) तर्पयतु (नौ) (सह) (भुनक्तु) पाल-
यतु । आवाम् (वीर्यम्) ब्रह्मविद्यातो निष्पन्नं
सामर्थ्यम् (सह) (करवावहै) साधयावहै (नौ)
आवयोः शिष्याचार्ययोः (अधीतम्) अध्यय-
नमध्यापनं च (तेजस्वि) ब्रह्मतेजाऽन्वितमस्तु

शिष्याचार्यावावाम् (माविद्विषावहै) द्वेष मा
कुर्याव । ओ३म्, शान्तिः ३। त्रिविधशान्ति-
विधानेन तापत्रयं शान्तं भवतु ॥

भा०—सर्वस्मिन्कर्मणि परमेश्वर आदावन्ते
च प्रार्थनीयः । उपद्रवा दुःखानि च न भवे-
युरेतदर्थं शान्तिश्चाभिधेया । गुरुशिष्ययो-
र्लेशमात्रोऽपि भेदो न भवेत् । द्वयोरन्तःकरणं
शुद्धं सेव्यसेवकप्रीतिवर्द्धकं प्रार्थनातत्परं मृदु
भवेत्तदा विद्या सफला भवति । येनाध्यात्मि-
कादैविकाधिभौतिकदुःखानां शान्तिः स्यात् ।
अत्र द्विर्वचन निर्देशाच्छिष्याचार्याभ्यां स्त्रीपुं-
साभ्यां वा प्रार्थना शान्तिश्च वक्तव्या ॥ १९ ॥

भाषार्थः—अब समाप्तिमें प्रार्थना और शान्ति कहते हैं
(नौ) हम दोनों [गुरुशिष्यों] को (सह) साथ ही परमेश्वर
(अबतु) दृष्टाको छुड़ाके उस संतुष्ट करे (नौ) हम दोनों
को (सह) साथ (भुनक्तु) खा करे । हे परमेश्वर । आपकी
कृपासे हम दोनों (वीर्यम्) ब्रह्मविद्याके अभ्याससे हुए दुःख
दुःखादि द्वन्द्वसहनादि रूप सामर्थ्यको (सह) साथ (कर-
वावहै) सिद्ध करें (नौ) हम दोनोंका (अधीतम्) पढ़ना
पढ़ाना (तेजस्वि) ब्रह्मके तेजसे युक्त हो । हम दोनों
(मा, विद्विषावहै) आपसमें कभी द्वेष न करें (ओ३म्)
हे परमात्मन् । आप ऐसी कृपा करें जिससे हमारे आध्या-

त्मिक—मानस, आधिदैविक—वाचिक वा शाब्दिकादि तथा
आधिभौतिक—शारीरिक उपद्रव वा दुःख शान्त होजावें ॥

भा०—सब कर्मोंके आदि अन्तमें परमेश्वरकी प्रार्थना
और उपद्रव वा दुःखोंके हटानेके लिये शान्ति कहनी चाहिये
जब गुरु शिष्यके अन्तःकरणमें लेशमात्र भी भेद न हो किन्तु
दोनोंका अन्तःकरण शुद्ध परस्पर प्रीति बढ़ाने वाला प्रार्थना
में रंगा कोमल हो तब विद्या सफल होती है जिससे आध्या-
त्मिक आधिभौतिक आधिदैविक दुःखोंकी शान्ति हो सकती
है । इस चक्रमें कर्ता क्रिया के द्विवचन पढ़ने से गुरु शिष्य वा
स्त्री पुरुषादि दो २ को मिलके ईश्वर की प्रार्थना और
शान्ति कहनी चाहिये ॥ १९ ॥

इति ब्राह्मणसर्वस्वमासिकपत्रसम्पादकेन
वेदव्याख्यात्रा भीमसेनशर्म्मेणा
निर्मितं कठोपनिषद् भाष्यं

* समाप्तम् *





* पुस्तकोंका सूचीपत्र *



१-ब्राह्मणसर्वस्व मासिकपत्र पिछले भाग, (तीसरे भागले १४ वें भाग तक के सेट मौजूद हैं) प्रति भागका १॥ एकसाथ सब भाग लेने पर १२) अष्टादश स्मृति हिन्दी भाषा टीका सहित ३) भगवद्-गीता भा० टी० २॥) याज्ञवल्क्यस्मृति सटीक १) ईशोपनिषद् सभाष्य ३) केनोपनिषद् सभाष्य ३) कठोपनिषद् सभाष्य ॥१) प्रश्नोपनिषद् सभाष्य ॥२) श्वेताश्वतरोपनिषद् सभाष्य ॥३) उपनिषदोंका उपदेश (प्रथम खण्ड) १॥ द्वितीय खण्ड १) सतीधर्म संग्रह १) पतिव्रता-माहात्म्य ३॥ भर्तृहरि नीतिशतक भा० टी० ३) भर्तृहरि वैराग्य-शतक ३) भर्तृहरि शृङ्गारशतक ३) इष्टिसंग्रह ॥२) मानवगृह्यसूत्र ॥ आपस्तम्बगृह्यसूत्र १) बह्वर्परिभाषासूत्रसंग्रह ॥ पञ्चमहायज्ञविधि ३) भोजनविधि ॥ सन्ध्योपासनाविधि ॥ काशीयतर्पणप्रयोग ॥ नित्य-द्वयनविधि ॥ वेदसार शिष्यस्तोत्र ॥ सनातनहिन्दुधर्म व्याख्यान-दर्पण पूर्वाङ्क २) दयानन्दमतविद्वाचण १) आदर्शमतनिराकरणप्र-श्नावली ३) आश्वमेधिकमन्त्रमीमांसा ३) सत्यार्थप्रकाशसमीक्षा ३) पञ्चकन्याचरित्र १) विधवाविवाहमीमांसा ३) मूर्त्तपूजा मण्डन १) ठनठन बाबू ३) दयानन्दकी विहृत्ता ॥ नगरस्ते मीमांसा ॥ सनात-नधर्मप्रश्नोत्तरावली ॥ रममाण्डकसम्बाद सचित्र ३) पुराणकत्तमी-मांसा ॥ जैनास्तिकत्वविचार ॥ गीतासंग्रह ३) विधवाविवाहनि-षेध ॥ सुमनपाटिका ३) रामगीता ३) रामहृदय ३) आदर्शरमणी ३) अंगरेजी हिन्दी व्यापारिक कोष १॥ हनुमानचालीसा ॥ रामचा-लीसा ॥ उपदेशरत्ननाभा ॥ धर्मरक्षा और भारतविनय ॥ शिवाजी और मराठाजानि ३) शुष्कगोविन्दसिंह ३) अभिमन्युपथ ३) यूनान की कहानियाँ १) आर्यपवित्रिजान १) भारतीय आख्यान १) हिन्दुओं का सामाजिक आदर्श १) अष्टाध्यायी ३) भारतवर्षका इतिहास १) अथर्ववेदालोचन ॥ दिशाभूल उपन्यास ३) स्वप्नवासवदत्त ३) शरणवत्सलहस्मीर ३)



नैनेजर प्रेसमेस इटावा ।



